प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर

शाखा कार्यालय

नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)

©: (01462) 251216, 257699, 250328

प्रज्ञापना सूत्र

भाग-३

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का १०३ वाँ रत्न

प्रज्ञापना सूत्र

भाग-३

(पद १३-२१)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया
पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

[redacted]

(०१४६२) २५१२१६, २५७६९९, फेक्स नं. २५०३२८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ सिटी पुलिस, **जोधपुर** © 2626145

२. **शाखा** – श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ,नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर**

३. **महाराष्ट्र शाखा** – माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेडकर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**

४. **कर्नाटक शाखा** – श्री सुधर्म जैन पौषधशाला भवन, ३८ अप्पुराव रोड़ छठा मेन रोड़ चामराजपेट, **बैंगलोर**- १८ © : 25928439

५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो. बॉ. नं. २२१७, **बम्बई-२**

६. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊसिंग कॉ० सोसायटी ब्लॉक नं. १० स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)**

७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६**

८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद**

९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा (महा.)**

१०. प्रकाश पुस्तक मंदिर, रायजी मोंढा की गली, पुरानी धानमंडी, **भीलवाड़ा** © 327788

११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**

१२. श्री विद्या प्रकाशन मंदिर, विद्या लोक ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)

१३. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** © : 25357775

१४. श्री संतोषकुमारजी जैन वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शापिंग सेन्टर, **कोटा** © : 2360950

मूल्य : ४०-००

तृतीय आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३४
विक्रम संवत् २०६५
मई २००८

मुद्रक – स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

यह संसार अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा इसीलिए संसार को अनादि अनंत कहा जाता है। इसी प्रकार जैन धर्म के संबंध में भी समझना चाहिए। जैन धर्म भी अनादि काल से है और अनंत काल तक रहेगा। हाँ भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में काल का परिवर्तन होता रहता है, अतएव इन क्षेत्रों में समय समय पर धर्म का विच्छेद हो जाता है, पर महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा जैन धर्म लोक की भांति अनादि अनंत एवं शाश्वत है। भरत क्षेत्र ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर भगवंतों के लिए विशेषण आता है, **"आइच्चेसु अहियं पयासयरा"** यानी सूर्य की भांति उनका व्यक्तित्व तेजस्वी होता है वे अपनी ज्ञान रश्मियों से विश्व की आत्माओं को अलौकिक करते हैं। वे साक्षात् ज्ञाता द्रष्टा होते हैं।

प्रत्येक तीर्थंकर केवलज्ञान केवलदर्शन होने के बाद चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं और वाणी की वागरणा करते हैं। उनकी प्रथम देशना में ही जितने गणधर होने होते हैं उतने हो जाते हैं। तीर्थंकर प्रभु द्वारा बरसाई गई कुसुम रूप वाणी को गणधर भगवंत सूत्र रूप में गुंथित करते हैं जो द्वादशांगी के रूप में पाट परंपरा से आगे से आगे प्रवाहित होती रहती है।

जैन आगम साहित्य जो वर्तमान में उपलब्ध है, उसके वर्गीकरण पर यदि विचार किया जाय तो वह चार रूप में विद्यमान है - अंग सूत्र, उपांग सूत्र, मूल सूत्र और छेद सूत्र। अंग सूत्र जिसमें दृष्टिवाद जो कि दो पाट तक ही चलता है उसके बाद उसका विच्छेद हो जाता है, इसको छोड़ कर शेष ग्यारह आगमों का (१. आचारांग २. सूत्रकृतांग ३. स्थानाङ्ग ४. समवायाङ्ग ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति ६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ७. उपासकदशाङ्ग ८. अन्तकृतदशाङ्ग ९. अणुत्तरौपपातिकदशा १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक सूत्र) अंग सूत्रों में समावेश माना गया है। इनके रचयिता गणधर भगवंत ही होते हैं। इसके अलावा बारह उपांग (१. औपपातिक २. राजप्रश्नीय ३. जीवाभिगम ४. प्रज्ञापना ५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ६. चन्द्र प्रज्ञप्ति ७. सूर्य प्रज्ञप्ति ८. निरयावलिका ९. कल्पावतंसिया १०. पुष्पिका ११. पुष्प चूलिका १२. वण्हिदशा) चार मूल (१. उत्तराध्ययन २. दशवैकालिक ३. नंदी सूत्र ४. अनुयोग द्वार) चार छेद (१. दशाश्रुतस्कन्ध २. बृहत्कल्प ३. व्यवहार सूत्र ४. निशीथ सूत्र) और आवश्यक सूत्र। जिनके रचयिता दस पूर्व या इनसे अधिक के ज्ञाता विभिन्न स्थविर भगवंत हैं।

प्रस्तुत पन्नवणा यानी प्रज्ञापना सूत्र जैन आगम साहित्य का चौथा उपांग है। संपूर्ण आगम साहित्य में भगवती और प्रज्ञापना सूत्र का विशेष स्थान है। अंग शास्त्रों में जो स्थान पंचम अंग भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) सूत्र का है वही स्थान उपांग सूत्रों में प्रज्ञापना सूत्र का है। जिस प्रकार पंचम अंग शास्त्र व्याख्याप्रज्ञप्ति के लिए भगवती विशेषण प्रयुक्त हुआ है उसी प्रकार पन्नवणा उपांग सूत्र के लिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक पद की समाप्ति पर '**पण्णवणाए भगवईए**' कह कर पन्नवणा के लिए "**भगवती**" विशेषण प्रयुक्त किया गया है। यह विशेषण इस शास्त्र की महत्ता का सूचक है। इतना ही नहीं अनेक आगम पाठों को "**जाव**" आदि शब्दों से संक्षिप्त कर पन्नवणा देखने का संकेत किया है। समवायांग सूत्र के जीव अजीव राशि विभाग में प्रज्ञापना के पहले, छठे, सतरहवें, इक्कीसवें, अट्ठाइसवें, तेतीसवें और पैतीसवें पद देखने की भलावण दी है तो भगवती सूत्र में पन्नवणा सूत्र के मात्र सत्ताईसवें और इकतीसवें पदों को छोड़ कर शेष ३४ पदों की स्थान-स्थान पर विषयपूर्ति कर लेने की भलामण दी गई है। जीवाभिगम सूत्र में प्रथम प्रज्ञापना, दूसरा स्थान, चौथा स्थिति, छठा व्युत्क्रांति तथा अठारहवें कायस्थिति पद की भलावण दी है। विभिन्न आगम साहित्य में पाठों को संक्षिप्त कर इसकी भलावण देने का मुख्य कारण यह है कि प्रज्ञापना सूत्र में जिन विषयों की चर्चा की गयी है उन विषयों का इसमें विस्तृत एवं सांगोपांग वर्णन है। इस सूत्र में मुख्यता द्रव्यानुयोग की है। कुछ गणितानुयोग व प्रसंगोपात इतिहास आदि के विषय भी इसमें सम्मिलित है।

'प्रज्ञा' शब्द का प्रयोग विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न स्थलों पर हुआ है। जहाँ इसका अर्थ प्रसंगोपात किया गया है। कोषकारों ने प्रज्ञा को बुद्धि कहा है और इसे बुद्धि का पर्यायवाची माना है जबकि आगमकार महर्षि बहिरंग ज्ञान के अर्थ में बुद्धि का प्रयोग करते हैं एवं अंतरंग चेतना शक्ति को जागृत करने वाले ज्ञान को "प्रज्ञा" के अंतर्गत लिया है। वास्तव में यही अर्थ प्रासंगिक एवं सार्थक है। क्योंकि इसमें समाहित सभी विषय जीव की आन्तरिक और बाह्य प्रज्ञा को सूचित करने वाले हैं।

चूंकि प्रज्ञापना सूत्र में जीव अजीव आदि का स्वरूप, इनके रहने के स्थान आदि का व्यवस्थित क्रम से सविस्तार वर्णन है एवं इसके प्रथम पद का नाम प्रज्ञापना होने से इसका नाम '**प्रज्ञापना सूत्र**' उपर्युक्त एवं सार्थक है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया कि इस सूत्र में प्रधानता द्रव्यानुयोग की है और द्रव्यानुयोग का विषय अन्य अनुयोगों की अपेक्षा काफी कठिन, गहन एवं दुरुह है इसलिए इस सूत्र की सम्यक् जानकारी विशेष प्रज्ञा संपन्न व्यक्तित्व के गुरु भगवन्तों के सान्निध्य से ही संभव है।

प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता कालकाचार्य (श्यामाचार्य) माने जाते हैं। इतिहास में तीन कालकाचार्य प्रसिद्ध हैं - १. प्रथम कालकाचार्य जो निगोद व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध है जिनका जन्म वीर नि० सं० २८० दीक्षा वीर निवार्ण सं० ३०० युग प्रधान आचार्य के रूप में वीर नि० सं० ३३५ एवं कालधर्म वीर नि० सं० ३७६ में होने का उल्लेख मिलता है। दूसरे गर्दभिल्लोच्छेदक कालकाचार्य का समय वीर नि० सं० ४५३ के आसपास का है एवं तीसरे कालकाचार्य जिन्होंने संवत्सरी पंचमी के स्थान पर चतुर्थी को मनायी उनका समय वीर निवार्ण सं० ९९३ के आसपास है। तीनों कालकाचार्यों में प्रथम कालकाचार्य जो श्यामाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं अपने युग के महान् प्रभावक आचार्य हुए। वे ही प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता होने चाहिए। इसके आधार से प्रज्ञापना सूत्र का रचना काल वीर नि० सं० ३३५ से ३७६ के बीच का ठहरता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानकवासी परंपस में उन्हीं शास्त्रों को आगम रूप में मान्य किया है जो लगभग दस पूर्वी या उससे ऊपर वालों की रचना हो। नंदी सूत्र में वर्णित अंग बाह्य कालिक और उत्कालिक सूत्रों का जो क्रम दिया गया है उसका आधार यदि रचनाकाल माना जाय तो प्रज्ञापना सूत्र की रचना दशवैकालिक, औपपातिक, रायपसेणइ तथा जीवाभिगम सूत्र के बाद एवं नंदी, अनुयोग द्वार के पूर्व हुई है। अनुयोगद्वार के कर्त्ता आर्यरक्षित थे। उनके पूर्व का काल आर्य स्थूलिभद्र तक का काल दश पूर्वधरों का काल रहा है। यह बात इतिहास से सिद्ध है। आर्य श्यामाचार्य इसके मध्य होने वाले युगप्रधान आचार्य हुए। इससे निश्चित हो जाता है कि प्रज्ञापना दशपूर्वधर आर्य श्यामाचार्य की रचना है।

प्रज्ञापना सूत्र उपांग सूत्रों में सबसे बड़ा उत्कालिक सूत्र है। इसकी विषय सामग्री ३६ प्रकरणों में विभक्त है जिन्हें **'पद'** के नाम से संबोधित किया गया है। वे इस प्रकार हैं – १. प्रज्ञापना पद २. स्थान पद ३. अल्पाबहुत्व ४. स्थिति पद ५. पर्याय पद ६. व्युत्क्रांति पद ७. उच्छ्वास पद ८. संज्ञा पद ९. योनि पद १०. चरम पद ११. भाषा पद १२. शरीर पद १३. परिणाम पद १४. कषाय पद १५. इन्द्रिय पद १६. प्रयोग पद १७. लेश्या पद १८. कायस्थिति पद १९. सम्यक्त्व पद २०. अंतक्रिया पद २१. अवगाहना संस्थान-पद २२. क्रिया पद २३. कर्मप्रकृति पद २४. कर्मबंध पद २५. कर्म वेद पद २६. कर्मवेद बंध पद २७. कर्मवेद वेद पद २८. आहार पद २९. उपयोग पद ३०. पश्यत्ता पद ३१. संज्ञी पद ३२. संयत पद ३३. अवधि पद ३४. परिचारणा पद ३५. वेदना पद ३६. समुद्घात पद।

आदरणीय रतनलालजी सा. डोशी के समय से ही इस विशिष्ट सूत्रराज के निकालने की संघ की योजना थी, पर किसी न किसी कठिनाई के उपस्थित होते रहने पर इस सूत्रराज का प्रकाशन न हो सका। चिरकाल के बाद अब इसका प्रकाशन संभव हुआ है। संघ का यह नूतन प्रकाशन है। इसके हिन्दी अनुवाद का प्रमुख आधार आचार्यमलयगिरि की संस्कृत टीका एवं मूल पाठ के लिए संघ द्वारा प्रकाशित सुत्तागमे एवं जंबूविजय जी की प्रति का सहारा लिया गया है। टीका का हिन्दी अनुवाद श्रीमान् पारसमलजी चण्डालिया ने किया। इसके बाद उस अनुवाद को मैंने देखा। तत्पश्चात् श्रीमान् हीराचन्द जी पींचा, इसे पंडित रत्न श्री घेवरचन्दजी म. सा. "वीरपुत्र" को पन्द्रहवें पद तक ही सुना पाये कि पं. र. श्री वीरपुत्र जी म. सा. का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद हमारे अनुनय विनय पर पूज्य श्रुतधर जी म. सा. ने पूज्य पंडित रत्न श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. को सुनने की आज्ञा फरमाई तदनुसार सेवाभावी श्रावक रत्न श्री प्रकाशचन्दजी सा. चपलोत सनवाड़ निवासी ने सनवाड़ चातुर्मास में म. सा. को सुनाया। पूज्य गुरु भगवन्तों ने जहाँ भी आवश्यकता समझी संशोधन कराने की महती कृपा की। अतएव संघ पूज्य गुरु भगवन्तों एवं श्रीमान् हीराचन्दजी पींचा तथा श्रावक रत्न श्री प्रकाशचन्दजी चपलोत का हृदय से आभार व्यक्त करता है।

अवलोकित प्रति का पुनः प्रेस कॉपी तैयार करने से पूर्व हमारे द्वारा अवलोकन किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र के प्रकाशन में हमारे द्वारा पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी बरती गयी फिर भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम अनुवाद का विशेष अनुभव नहीं होने से भूलों का रहना स्वाभाविक है। अतएव तत्त्वज्ञ मनीषियों से निवेदन है कि इस प्रकाशन में यदि कोई भी त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करने की महती कृपा करावें। प्रस्तुत सूत्र पर विवेचन एवं व्याख्या बहुत विस्तृत होने से इसका कलेवर इतना बढ़ गया कि सामग्री लगभग १६०० पृष्ठ तक पहुँच गयी। पाठक बंधु इस विशद सूत्र का सुगमता से अध्ययन कर सके इसके लिए इस सूत्रराज को चार भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम भाग में १ से ३ पद का, दूसरे भाग में ४ से १२ पद का, तीसरे भाग में १३ से २१ पद का और चौथे भाग में २२ से ३६ पद का समावेश है।

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन में आदरणीय **श्री जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** निवासी का मुख्य सहयोग रहा है। आप एवं आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबेन शाह** की सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार में गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा प्रकाशित सभी आगम **अर्द्ध मूल्य** में पाठकों को उपलब्ध हो तदनुसार आप इस योजना के अन्तर्गत सहयोग प्रदान करते रहे हैं। अतः संघ आपका आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपके पुत्र रत्न **मयंकभाई शाह** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

प्रज्ञापना सूत्र की प्रथम आवृत्ति का जून २००२ एवं द्वितीय आवृत्ति सितम्बर २००६ में प्रकाशन किया गया जो अल्प समय में ही अप्राप्य हो गयी। अब इसकी तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन किया जा रहा है। आए दिन कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस आवृत्ति में जो कागज काम में लिया गया वह उत्तम किस्म का मेपलिथो है। बाईडिंग पक्की तथा सेक्शन है। बावजूद इसके आदरणीय शाह परिवार के आर्थिक सहयोग के कारण इसके प्रत्येक भाग का **मूल्य मात्र ४०)** ही रखा गया है, जो अन्यत्र से प्रकाशित आगमों से बहुत अल्प है। सुज्ञ पाठक बंधु संघ के इस नूतन आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.) — **संघ सेवक**

दिनांक: २५-५-२००८ — **नेमीचन्द बांठिया**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	काल मर्यादा
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह ✻	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

✻ आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नयां राजा घोषित न हो
१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

❀ ❀ ❀ ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

प्रज्ञापना सूत्र भाग ३

पद १३-२१

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
तेरहवां परिणाम पद		**१-१७**
१.	उक्खेवो (उत्क्षेप-उत्थानिका)	१
२.	परिणाम के भेद	२
३.	जीव परिणाम प्रज्ञापना	२
४.	नैरयिकों में परिणाम	७
५.	भवनवासी देवों में परिणाम	८
६.	पांच स्थावरों में परिणाम	९
७.	तीन विकलेन्द्रियों में परिणाम	१०
८.	तिर्यंच पंचेन्द्रियों में परिणाम	१०
९.	मनुष्यों में परिणाम	११
१०.	वाणव्यंतर आदि में परिणाम	१२
११.	जीव परिणाम प्रज्ञापना	१२
चौदहवां कषाय पद		**१८-२६**
१.	उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका)	१८
२.	कषाय के भेद	१९
३.	नैरयिक आदि में कषाय	२०
४.	कषायों के प्रतिष्ठान	२०
५.	कषायों के उत्पत्ति के कारण	२१
६.	कषायों के भेद-प्रभेद	२२
७.	आठ कर्म प्रकृतियों का चय आदि	२३
पन्द्रहवां इन्द्रिय पद		
	प्रथम उद्देशक	**२७-५८**
१.	उक्खेवो (उत्क्षेप-उत्थानिका)	२७
२.	चौबीस द्वार	२८
३.	इन्द्रिय भेद	२८
४.	संठाण द्वार	२९
५.	बाहल्य द्वार	३०
६.	पृथुत्व द्वार	३०
७.	कति प्रदेश द्वार	३१
८.	अवगाढ़ द्वार	३१
९.	अल्पबहुत्व द्वार	३२
१०.	चौबीस दण्डकों में संस्थान आदि की प्ररूपणा	३५
११.	स्पृष्ट-प्रविष्ट द्वार	४१
१२.	विषय द्वार	४३
१३.	अनगार द्वार	४५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१४.	आहार द्वार	४८
१५.	आदर्श आदि द्वार	५१
१६.	कंबल द्वार	५२
१७.	स्थूणा द्वार	५२
१८.	आकाश थिग्गल द्वार	५३
१९.	द्वीप और उदधि द्वार	५४
	द्वितीय उद्देशक द्वार	**५९-१०६**
२०.	बारह द्वार	५९
२१.	इन्द्रियोपचय द्वार	५९
२२.	निर्वर्त्तना द्वार	६०
२३.	लब्धि द्वार	६१
२४.	उपयोग द्वार	६१
२५.	उपयोग काल द्वार	६२
२६.	इन्द्रिय अवग्रह द्वार	६३
२७.	इन्द्रिय अवाय द्वार	६४
२८.	ईहा द्वार	६४
२९.	अवग्रह द्वार	६५
३०.	द्रव्येन्द्रिय द्वार	६८
३१.	एक जीव की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां	७३
३२.	अनेक जीवों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां	७४
३३.	भावेन्द्रिय द्वार	९७
३४.	एक जीव में परस्पर की अपेक्षा	१०२
३५.	अनेक जीवों में परस्पर की अपेक्षा	१०४
	सोलहवां प्रयोग पद	**१०७-१४३**
१.	प्रयोग के भेद	१०७
२.	समुच्चय जीव और चौबीस दण्डकों में प्रयोग	१०९
३.	समुच्चय जीवों में विभाग से प्रयोग प्ररूपणा	११२
४.	गति प्रपात के भेद-प्रभेद	१२७
	१. प्रयोग गति	१२८
	२. तत गति	१२९
	३. बन्धन छेदन गति	१२९
	४. उपपात गति	१३०
	५. क्षेत्रोपपात गति	१३०
	६. भवोपपात गति	१३४
	७. नो भवोपपात गति	१३४
	८. विहायोगति व उसके सतरह भेद	१३७
	सत्तरहवां लेश्या पद	
	प्रथम उद्देशक	**१४४-१६४**
१.	उत्थानिका	१४४
२.	सप्त द्वार	१४५
३.	नैरयिक आदि में सप्त द्वार	
	१. प्रथम द्वार	१४५
	२. दूसरा द्वार	१४७
	३. तीसरा-चौथा द्वार	१४७
	४. पांचवां द्वार	१४९
	५. छठा द्वार	१५०
	६. सातवां द्वार	१५१
४.	भवनवासी देवों में सप्त द्वार की प्ररूपणा	१५२
५.	पृथ्वीकायिक आदि में सप्त द्वार	१५४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
६.	मनुष्य में सप्त द्वारों की प्ररूपणा	१५७
७.	वाणव्यंतर आदि देवों में सप्त द्वार	१५९
८.	सलेशी चौबीस दण्डकों में सप्त द्वार	१६०
	द्वितीय उद्देशक	**१६५-१८९**
९.	चौबीस दण्डकों में लेश्याएं	१६५
१०.	सलेशी-अलेशी जीवों का अल्पबहुत्व	१६९
११.	विविध लेश्या वाले चौबीस दण्डक के जीवों का अल्पबहुत्व	१७०
१२.	सलेशी ऋद्धिक जीवों का अल्पबहुत्व	१८७
	तृतीय उद्देशक	**१९०-२०४**
१३.	चौबीस दण्डक के जीवों में उत्पाद	१९०
१४.	चौबीस दण्डक के जीवों में उद्वर्त्तन	१९०
१५.	सलेशी जीवों में उत्पाद-उद्वर्त्तन	१९१
१६.	कृष्ण आदि लेश्या वाले नैरयिकों में अवधिज्ञान-दर्शन की क्षमता	१९९
१७.	कृष्ण आदि लेश्या वाले जीवो में ज्ञान प्ररूपणा	२०३
	चतुर्थ उद्देशक	**२०५-२२६**
१८.	परिणाम द्वार	२०५
१९.	वर्ण द्वार	२०९
२०.	रस द्वार	२१४
२१.	गंध द्वार	२१८
२२.	शुद्ध-प्रशस्त-संक्लिष्ट-उष्ण गति द्वार	२१९
२३.	परिणाम द्वार	२२०
२४.	प्रदेश द्वार	२२०
२५.	अवगाढ़ द्वार	२२१
२६.	वर्गणा द्वार	२२१
२७.	लेश्या स्थान द्वार	२२१
२८.	अल्पबहुत्व द्वार	२२२
	पांचवां उद्देशक	**२२७-२३१**
२९.	लेश्याओं के भेद	२२७
३०.	लेश्याओं के परिणाम भाव	२२७
	छठा उद्देशक	**२३२-२३६**
३१.	लेश्या भेद	२३२
३२.	मनुष्यों में लेश्याएं	२३२
३३.	लेश्या की अपेक्षा गर्भोत्पत्ति	२३४
	अठारहवां कायस्थिति पद	**२३७-२९१**
३४.	कायस्थिति पद के २२ द्वार	२३७-२९१
	१. जीव द्वार	२३८
	२. गति द्वार	२३८
	३. इन्द्रिय द्वार	२४३
	४. काय द्वार	२४८
	५. योग द्वार	२५७
	६. वेद द्वार	२५८
	७. कषाय द्वार	२६४
	८. लेश्या द्वार	२६६
	९. सम्यक्त्व द्वार	२६९
	१०. ज्ञान द्वार	२७१
	११. दर्शन द्वार	२७४
	१२. संयत द्वार	२७६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१३.	उपयोग द्वार	२७७
१४.	आहारक द्वार	२७८
१५.	भाषक द्वार	२८२
१६.	परित्त द्वार	२८४
१७.	पर्याप्त द्वार	२८६
१८.	सूक्ष्म द्वार	२८८
१९.	संज्ञी द्वार	२८८
२०.	भवसिद्धिक द्वार	२८९
२१.	अस्तिकाय द्वार	२९०
२२.	चरम द्वार	२९१

उन्नीसवां सम्यक्त्व पद २९२-२९४

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	तीन दृष्टियाँ	२९२

बीसवां अन्तक्रिया पद २९५-३२८

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	अंतक्रिया द्वार	२९५
२.	अनन्तर द्वार	२९७
३.	एक समय द्वार	२९८
४.	उद्वर्त्तन द्वार	३००
५.	तीर्थंकर द्वार	३११
६.	चक्रवर्ती द्वार	३१६
७.	बलदेव द्वार	३१८
८.	वासुदेव द्वार	३१८
९.	मांडलिक द्वार	३१८
१०.	रत्न द्वार	३१९
११.	भव्यद्रव्य देव उपपात प्ररूपणा	३२०
१२.	असंज्ञी आयुष्य प्ररूपणा	३२६

इक्कीसवां अवगाहना-संस्थान पद ३२९-३९६

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सात द्वार गाथा	३२९
२.	विधि द्वार	३३०
३.	संस्थान द्वार	३३८
४.	प्रमाण द्वार	३४६
५.	पुद्गल चय द्वार	३८७
६.	शरीर संयोग द्वार	३८९
७.	द्रव्य प्रदेश अल्प बहुत्व द्वार	३९१
८.	शरीरावगाहना अल्पबहुत्व द्वार	३९४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

卐 णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

श्रीमदार्यश्यामाचार्य विरचित

प्रज्ञापना सूत्र

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन सहित)

भाग - ३

तेरसमं परिणामपयं

तेरहवाँ परिणाम पद

उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका) - अवतरणिका - तेरहवाँ 'परिणाम पद' है। परिणाम शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए टीकाकार ने लिखा है -

"परि समन्तात नमनं परिणामः"। **अथवा परिणमनं परिणामः कथञ्चित अवस्थितस्य वस्तुनः पूर्व अवस्था परित्यागेन उत्तरावस्थागमनम्, परिणामो हि अर्थान्तर-गमनं न च सर्वथा व्यवस्थानम्। न च सर्वथा विनाशः, परिणामस्तद्विदामिष्टः॥**

अर्थ - परिणाम शब्द में 'परि' 'उपसर्ग' है और 'नम्' धातु है। इससे 'परिणाम' शब्द बनता है। जिसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है-अवस्थित वस्तु का पूर्व अवस्था को छोड़ कर दूसरी अवस्था को धारण कर लेना परिणाम कहलाता है। यही बात टीकाकार ने श्लोक रूप में कही है यथा कि पूर्व अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था को धारण कर लेना परिणाम है किन्तु वस्तु का सर्वथा विनाश हो जाना परिणाम नहीं है।

'परिणाम' शब्द के यहाँ दो अर्थ अभिप्रेत है - १. किसी भी द्रव्य का सर्वथा विनाश या सर्वथा अवस्थान न होकर एक पर्याय से दूसरे पर्याय (अवस्था) में जाना 'परिणाम' है अथवा २. पूर्ववर्ती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्पर्याय की अपेक्षा से विनाश और उत्तरवर्ती असत्पर्याय की अपेक्षा से प्रादुर्भाव होना परिणाम है। प्रस्तुत पद में जीव और अजीव दोनों के परिणामों का विचार किया गया है।

प्रस्तुत पद में इसी परिणामिनित्यता का अनुसरण करते हुए सर्व प्रथम जीव के परिणामों के भेद-प्रभेद बताए गये हैं, तत्पश्चात् नरक आदि चौबीस दण्डकों में उनका विचार किया गया है।

किसी भी वस्तु का सर्वथा विनाश नहीं हो जाता, किन्तु उसका रूपान्तर या अवस्थान्तर होता है। पूर्व रूप का नाश होता है, तो उत्तर रूप का उत्पाद होता है, यही परिणामवाद का मूल आधार है। इसीलिए जैन दर्शन के प्रधान ग्रन्थ 'तत्त्वार्थ सूत्र' में बताया गया है कि - '**तद्भावः परिणामः**' अर्थात् उसका होना, यानी स्वरूप में स्थित रहते हुए उत्पन्न या नष्ट होना परिणाम है। इस दृष्टि से मनुष्य आदि गति, इन्द्रिय, योग, लेश्या, कषाय, आदि विभिन्न अपेक्षाओं से जीव चाहे जिस रूप में या अवस्था या पर्याय में उत्पन्न या विनष्ट होता हो उसमें आत्मत्व अर्थात् मूल जीव द्रव्यत्व ध्रुव रहते हुए विभिन्न रूपान्तरों या अवस्थान्तरों में परिणमन होना परिणाम कहलाता है।

परिणाम वैसे तो अनेक प्रकार के होते हैं, किन्तु मुख्यतया दो द्रव्यों का आधार लेकर परिणाम होते हैं, इसलिए शास्त्रकार ने परिणाम के दो मुख्य प्रकार बताए हैं - जीव परिणाम और अजीव परिणाम। जीवों के गति आदि की पर्याय के परिवर्तन से होने वाली अवस्था जीव परिणाम है।

प्रज्ञापना सूत्र के बारहवें पद में औदारिक आदि शरीर के भेद बताये गये हैं। ये शरीर के भेद बिना परिणाम के संभव नहीं है। अतः सूत्रकार इस तेरहवें पद में परिणाम का स्वरूप फरमाते हैं जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

परिणाम के भेद

कइविहे णं भंते! परिणामे पण्णत्ते?

गोयमा! परिणामे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - जीव परिणामे य अजीव परिणामे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! परिणाम कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! परिणाम दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. जीव परिणाम और २. अजीव परिणाम।

जीव परिणाम प्रज्ञापना

जीव परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दसविहे पण्णत्ते। तंजहा - गइ परिणामे १, इंदिय परिणामे २, कसाय परिणामे ३, लेसा परिणामे ४, जोग परिणामे ५, उवओग परिणामे ६, णाण परिणामे ७, दंसण परिणामे ८, चरित्त परिणामे ९, वेय परिणामे १०॥ ४१४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जीव परिणाम दस प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. गति परिणाम २. इन्द्रिय परिणाम ३. कषाय परिणाम ४. लेश्या परिणाम ५. योग परिणाम ६. उपयोग परिणाम ७. ज्ञान परिणाम ८. दर्शन परिणाम ९. चारित्र परिणाम और १० वेद परिणाम।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में परिणाम का वर्णन किया गया है। परिणमन-एक रूप से अन्य रूप में परिवर्तित होना परिणाम है। द्रव्यास्तिक और पर्यायास्तिक नय की अपेक्षा परिणाम का स्वरूप इस प्रकार है। द्रव्यास्तिक नय की अपेक्षा अपना अस्तित्व रखते हुए उत्तर पर्याय प्राप्त करना परिणाम है। इसमें एकान्त रूप से पूर्व पर्याय न कायम ही रहती है, न उसका नाश ही होता है। पर्यायास्तिक नय की अपेक्षा विद्यमान पूर्व पर्याय का नाश होना और अविद्यमान उत्तर पर्याय का प्रकट होना परिणाम है। परिणाम के दो प्रकार हैं - जीव परिणाम और अजीव परिणाम।

जीव परिणाम के दस भेद हैं - १. गति परिणाम २. इन्द्रिय परिणाम ३. कषाय परिणाम ४. लेश्या परिणाम ५. योग परिणाम ६. उपयोग परिणाम ७. ज्ञान परिणाम ८. दर्शन परिणाम ९. चारित्र परिणाम और १०. वेद परिणाम।

गइ परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णिरय गइ परिणामे, तिरिय गइ परिणामे, मणुय गइ परिणामे, देव गइ परिणामे १।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गति परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गति परिणाम चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार हैं - १. नरक गति परिणाम २. तिर्यंच गति परिणाम ३. मनुष्य गति परिणाम ४. देव गति परिणाम।

विवेचन - नरक आदि गति नाम कर्म के उदय से जिसकी प्राप्ति हो उसे गति कहते हैं। नरक आदि गति रूप परिणाम अर्थात् नारकत्व आदि पर्याय परिणति जीव का गति परिणाम है।

इंदिय परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - सोइंदिय परिणामे, चक्खिंदिय परिणामे घाणिंदिय परिणामे, जिब्भिंदिय परिणामे, फासिंदिय परिणामे २।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रिय परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रिय परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. श्रोत्रेन्द्रिय परिणाम २. चक्षुइन्द्रिय परिणाम ३. घ्राणेन्द्रिय परिणाम ४. जिह्वेन्द्रिय परिणाम और ५. स्पर्शनेन्द्रिय परिणाम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - "**इदि परमैश्वर्य्ये इति, इन्द्रते इति इन्द्रः।**" संस्कृत में 'इदि परमैश्वर्य्ये' धातु है जिसका अर्थ है, जो परम ऐश्वर्य को भोगे। इस धातु से इन्द्र शब्द बना है जो परम-उत्कृष्ट ऐश्वर्य सुख सम्पत्ति को भोगता है उसको इन्द्र कहते हैं। यह द्रव्य इन्द्र कहलाता है। ज्ञान रूप परम ऐश्वर्य को आत्मा भोगता है इसलिए आत्मा को भाव इन्द्र कहते हैं। जो इन्द्र का लिंग-साधन हो, वह इन्द्रिय है। इसका फलितार्थ यह हुआ कि इन्द्र आत्मा का जो मुख्य साधन हो वह इन्द्रिय है। इन्द्रिय रूप परिणाम इन्द्रिय परिणाम कहलाता है।

कसाय परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - कोह कसाय परिणामे, माण कसाय परिणामे, माया कसाय परिणामे, लोभ कसाय परिणामे ३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कषाय परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! कषाय परिणाम चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. क्रोध कषाय परिणाम २. मान कषाय परिणाम ३. माया कषाय परिणाम और ४. लोभ कषाय परिणाम।

विवेचन - जिसमें प्राणी परस्पर एक दूसरे का कर्षण - हिंसा (घात) करते हैं उसे 'कष' कहते हैं या जो कष अर्थात् संसार को प्राप्त कराते हैं, वे कषाय हैं। जीव की कषाय रूप गति को कषाय परिणाम कहते हैं।

लेस्सा परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - कण्ह लेसा परिणामे, णील लेसा परिणामे, काउ लेसा परिणामे, तेउ लेसा परिणामे, पम्ह लेसा परिणामे, सुक्क लेसा परिणामे ४।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लेश्या परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! लेश्या परिणाम छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. कृष्ण लेश्या परिणाम २. नील लेश्या परिणाम ३. कापोत लेश्या परिणाम ४. तेजो लेश्या परिणाम ५. पद्म लेश्या परिणाम ६. शुक्ल लेश्या परिणाम।

विवेचन - लेश्या रूप परिणमन को लेश्या परिणाम कहते हैं।

जोग परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - मण जोग परिणामे, वइ जोग परिणामे, काय जोग परिणामे ५।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! योग परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! योग परिणाम तीन प्रकार का कहा गया है - १. मन योग परिणाम २. वचन योग परिणाम ३. काय योग परिणाम।

विवेचन - मन, वचन और काया के व्यापार (प्रवृत्ति) को योग कहते हैं। योग रूप परिणमन योग परिणाम है।

उवओग परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सागारोवओग परिणामे, अणागारोवओग परिणामे य ६।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपयोग परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! उपयोग परिणाम दो प्रकार का कहा गया है - १. साकारोपयोग परिणाम और २. अनाकारोपयोग परिणाम।

विवेचन - चेतना शक्ति के व्यापार रूप परिणाम को उपयोग परिणाम कहते हैं। साकारोपयोग ज्ञान रूप होता है एवं अनाकारोपयोग दर्शन रूप होता है।

णाण परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - आभिणिबोहिय णाण परिणामे, सुयणाण परिणामे, ओहिणाण परिणामे, मणपज्जवणाण परिणामे, केवलणाण परिणामे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्ञान परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञान परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान परिणाम २. श्रुतज्ञान परिणाम ३. अवधिज्ञान परिणाम ४. मनःपर्यवज्ञान परिणाम और ५. केवलज्ञान परिणाम।

विवेचन - मतिज्ञान आदि रूप परिणाम को ज्ञान परिणाम कहते हैं।

अण्णाण परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - मइ अण्णाण परिणामे, सुय अण्णाण परिणामे, विभंग णाण परिणामे ७।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अज्ञान परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अज्ञान परिणाम तीन प्रकार का कहा गया है - १. मति अज्ञान परिणाम २. श्रुत अज्ञान परिणाम और ३. विभंग ज्ञान परिणाम (अवधि अज्ञान परिणाम)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दंसणपरिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - सम्मद्दंसण परिणामे, मिच्छा दंसण परिणामे, सम्मामिच्छा दंसण परिणामे ८।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दर्शन परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! दर्शन परिणाम तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. सम्यग्-दर्शन परिणाम २. मिथ्यादर्शन परिणाम और ३. सम्यग्-मिथ्या दर्शन परिणाम।

विवेचन - सम्यग्दर्शन आदि रूप परिणाम दर्शन परिणाम है।

चरित्त परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - सामाइय चरित्त परिणामे, छेओवट्ठावणिय चरित्त परिणामे, परिहार विसुद्धिय चरित्त परिणामे, सुहुमसंपराय चरित्त परिणामे, अहक्खाय चरित्त परिणामे ९।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चारित्र परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! चारित्र परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. सामायिक चारित्र परिणाम २. छेदोपस्थापनीय चारित्र परिणाम ३. परिहार विशुद्धि चारित्र परिणाम ४. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र परिणाम और ५. यथाख्यात चारित्र परिणाम।

विवेचन - जीव का सामायिक आदि चारित्र रूप परिणाम चारित्र परिणाम कहलाता है।

वेय परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - इत्थि वेय परिणामे, पुरिस वेय परिणामे, णपुंसग वेय परिणामे १०॥ ४१५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वेद परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वेद परिणाम तीन प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. स्त्री वेद परिणाम २. पुरुषवेद परिणाम और ३. नपुंसक वेद परिणाम।

विवेचन - स्त्रीवेद आदि के रूप में जीव का परिणाम वेद परिणाम कहलाता है।

शंका - दश प्रकार के जीव परिणामों का क्रम इस प्रकार क्यों रखा गया है?

समाधान - १. औदयिक आदि भाव के आश्रित सभी भाव बिना गति परिणाम के प्रकट नहीं होते हैं अतः सर्व प्रथम गति परिणाम कहा गया है २. गति परिणाम होने से इन्द्रिय परिणाम अवश्य होता है अतः गति परिणाम के बाद इन्द्रिय परिणाम कहा गया है ३. इन्द्रिय परिणाम होने से इष्ट और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनिष्ट विषय के संबंध से राग द्वेष के परिणाम होते हैं अतः इन्द्रिय परिणाम के बाद कषाय परिणाम का कथन किया गया है ४. जहाँ कषाय परिणाम होता है वहाँ लेश्या परिणाम अवश्य होता है और लेश्या परिणाम कषाय परिणाम के बिना भी होता है अतः कषाय परिणाम के बाद लेश्या परिणाम कहा गया है किन्तु लेश्या परिणाम के पश्चात् कषाय परिणाम नहीं कहा है ५. लेश्या परिणाम योग के परिणाम रूप है क्योंकि **'योग परिणामो लेश्या'** - ऐसा शास्त्र वचन है अतः लेश्या परिणाम का कथन करने के बाद योग परिणाम कहा है ६. संसारी जीवों में योग का परिणाम होने के बाद उपयोग का परिणाम होता है अतः योग परिणाम के बाद उपयोग परिणाम का कथन किया गया है ७. उपयोग परिणाम होने से ज्ञान परिणाम होता है अतः उसके बाद ज्ञान परिणाम कहा गया है ८. ज्ञान परिणाम दो प्रकार का है - सम्यग्-ज्ञान परिणाम और मिथ्या-ज्ञान परिणाम। दोनों प्रकार के ज्ञान परिणाम सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन के बिना नहीं होते अतः ज्ञान परिणाम के बाद दर्शन परिणाम कहा गया है ९. सम्यग्-दर्शन परिणाम होने से जीवों को जिन-वीतराग वचन श्रवण द्वारा नया नया संवेग (मोक्ष की तीव्र अभिलाषा) उत्पन्न होता है। संवेग होने से चारित्रावरण कर्म का क्षयोपशम होने से चारित्र परिणाम होता है, अतः दर्शन परिणाम के बाद चारित्र परिणाम कहा गया है १०. चारित्र परिणाम से महा सत्त्व वाली आत्मा वेद परिणाम का नाश करती है अतः चारित्र परिणाम के बाद वेद परिणाम कहा गया है।

नैरयिकों में परिणाम

णेरइया गइ परिणामेणं णिरय गइया, इंदिय परिणामेणं पंचिंदिया, कसाय परिणामेणं कोह कसाई वि जाव लोभ कसाई वि, लेस्सा परिणामेणं कण्हलेसा वि णील लेसा वि काउलेसा वि, जोग परिणामेणं मणजोगी वि वइजोगी वि कायजोगी वि, उवओग परिणामेणं सागारोवउत्ता वि अणागारोवउत्ता वि, णाण परिणामेणं आभिणिबोहिय णाणी वि, सुयणाणी वि, ओहिणाणी वि, अण्णाण परिणामेणं मइअण्णाणी वि सुयअण्णाणी वि विभंगणाणी वि, दंसणपरिणामेणं सम्मादिट्ठी वि मिच्छादिट्ठी वि सम्मामिच्छादिट्ठी वि, चरित्तपरिणामेणं णो चरित्ती, णो चरित्ताचरित्ती, अचरित्ती, वेयपरिणामेणं णो इत्थिवेयगा, णो पुरिसवेयगा, णपुंसगवेयगा।

भावार्थ - नैरयिक गति परिणाम से नरक गति वाले, इन्द्रिय परिणाम से पंचेन्द्रिय, कषाय परिणाम से क्रोध कषाय वाले यावत् लोभ कषाय वाले, लेश्या परिणाम से कृष्ण लेश्या वाले नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले, योग परिणाम से मनयोग वाले, वचनयोग वाले और काययोग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले, उपयोग परिणाम से साकार उपयोग वाले और निराकार उपयोग वाले, ज्ञान परिणाम से आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी, अज्ञान परिणाम से मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी और विभंग ज्ञानी (अवधि अज्ञानी), दर्शन परिणाम से सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि होते हैं। चारित्र परिणाम से वे न तो चारित्री हैं, न चारित्राचारित्री हैं किन्तु अचारित्री हैं। वेद परिणाम से स्त्रीवेदी भी नहीं, पुरुषवेदी भी नहीं किन्तु नपुंसक वेदी होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक जीवों में दस परिणामों में से कौन-कौन से परिणाम पाये जाते हैं। इसकी प्ररूपणा की गयी है।

नैरयिकों में कृष्ण, नील और कापोत-ये तीन लेश्याएं ही होती है। इनका क्रम इस प्रकार है - प्रथम की दो नरक पृथ्वियों में कापोत लेश्या, तीसरी नरक पृथ्वी में कापोत और नील लेश्या, चौथी नरक पृथ्वी में नील लेश्या, पांचवीं नरक पृथ्वी में नीललेश्या और कृष्णलेश्या तथा छठी और सातवीं नरक पृथ्वी में कृष्ण लेश्या ही होती है इसलिए कहा है कि - **'कण्हलेसावि णीललेसावि काउलेसावि'**- नैरयिकों में कृष्णलेश्या भी होती है, नीललेश्या भी होती है और कापोत लेश्या भी होती है। थोकड़ों की पुस्तकों में सातवीं नरक में महाकृष्ण लेश्या भी लिखी है।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य के अलावा अन्य जीवों में भव स्वभाव के कारण से ही चारित्र परिणाम नहीं होता है अतः यहाँ चारित्र परिणाम का निषेध किया गया है।

वेद परिणाम के कथन में कहा है कि नैरयिक नपुंसक वेदी ही होते हैं, स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी नहीं होते। क्योंकि तत्त्वार्थ सूत्र (अ. २ सूत्र ५०) में कहा है - **"नारक सम्मूर्छिनो नपुंसकानि"** - नैरयिक और सम्मूर्च्छिम नपुंसक ही होते हैं।

इस प्रकार नैरयिक जीवों में ५० बोलों में से २९ बोल पाये जाते हैं - गति १, इन्द्रिय ५, कषाय ४, लेश्या ३, योग ३, उपयोग २, ज्ञान ३, अज्ञान ३, दर्शन २, चारित्र १ (अचारित्री) वेद १ (नपुंसक)=२९।

भवनवासी देवों में परिणाम

असुरकुमारा वि एवं चेव, णवरं देव गइया, कण्ह लेसा वि जाव तेउ लेसा वि, वेयपरिणामेणं इत्थिवेयगा वि, पुरिसवेयगा वि, णो णपुंसगवेयगा, सेसं तं चेव। एवं जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - असुरकुमारों में भी इसी प्रकार समझना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि वे देवगति वाले, कृष्ण लेश्या वाले यावत् तेजोलेश्या वाले, वेद परिणाम से वे स्त्रीवेद वाले पुरुषवेद वाले होते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु नपुंसक वेद वाले नहीं होते हैं। शेष सारा वर्णन नैरयिकों की तरह समझना चाहिये। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक प्ररूपणा करनी चाहिये।

विवेचन - असुरकुमारों के परिणाम सम्बन्धी वक्तव्यता भी नैरयिकों के समान ही जाननी चाहिये परन्तु वे गति परिणाम की अपेक्षा देव गति वाले हैं और उनमें जो महान् ऋद्धि वाले (महर्द्धिक) हैं उनमें तेजोलेश्या भी होती है इसलिए कहा है **'तेउलेस्सा वि'** - तेजोलेश्या वाले भी होते हैं। वेद परिणाम की अपेक्षा वे पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी होते हैं किन्तु नपुंसक वेदी नहीं होते क्योंकि देवों में नपुंसक वेद नहीं होता है।

पांच स्थावरों में परिणाम

पुढवीकाइया गइ परिणामेणं तिरिय गइया, इंदिय परिणामेणं एगिंदिया, सेसं जहा णेरइयाणं, णवरं लेसापरिणामेणं तेउलेसा वि, जोग परिणामेणं कायजोगी, णाण परिणामो णत्थि, अण्णाण परिणामेणं मइ अण्णाणी, सुय अण्णाणी, दंसण परिणामेणं मिच्छादिट्ठी, सेसं तं चेव।

एवं आउ वणस्सइ काइया वि। तेऊ, वाऊ एवं चेव, णवरं लेसा परिणामेणं जहा णेरइया।

भावार्थ - पृथ्वीकायिक जीव गति परिणाम से तिर्यंच गति वाले, इन्द्रिय परिणाम से एकेन्द्रिय होते हैं। शेष सारा वर्णन नैरयिकों के समान समझना चाहिये। विशेषता यह है कि लेश्या परिणाम से ये तेजोलेश्या वाले भी होते हैं। योग परिणाम से काययोगी होते हैं। इनमें ज्ञान परिणाम नहीं होता है। अज्ञान परिणाम से ये मति अज्ञानी, श्रुतअज्ञानी होते किन्तु विभंग ज्ञानी नहीं होते। दर्शन परिणाम से मिथ्या दृष्टि होते हैं। शेष सारा वर्णन पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये।

इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के विषय में भी समझना चाहिये। तेजस्कायिक जीवों और वायुकायिक जीवों का वर्णन भी इसी प्रकार है किन्तु लेश्या परिणाम से नैरयिक जीवों के समान तीन लेश्याएं समझनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पांच स्थावर जीवों की परिणाम संबंधी प्ररूपणा की गई है। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय जीवों में तेजोलेश्या भी संभव है क्योंकि इन तीनों में सौधर्म (पहला) और ईशान (दूसरा) देवलोक तक के देव आकर उत्पन्न होते हैं। इसलिए कहा है कि **'तेउलेस्सा वि'**- तेजोलेश्या वाले भी होते हैं। पांच स्थावर जीवों में सास्वादन सम्यक्त्व भी नहीं होती अतः उनमें ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और सम्यक्त्व का निषेध किया है। मिश्र दृष्टि का परिणाम संज्ञी पंचेन्द्रियों में ही होता है शेष जीवों में नहीं। अतः उसका भी यहाँ निषेध किया गया है।

तीन विकलेन्द्रियों में परिणाम

बेइंदिया गइ परिणामेणं तिरियगइया, इंदिय परिणामेणं बेइंदिया, सेसं जहा णेरइयाणं। णवरं जोग परिणामेणं वइ जोगी, काय जोगी, णाण परिणामेणं आभिणिबोहियणाणी वि, सुयणाणी वि, अण्णाण परिणामेणं मइ अण्णाणी वि, सुय अण्णाणी वि, णो विभंगणाणी, दंसण परिणामेणं सम्मदिट्ठी वि, मिच्छादिट्ठी वि, णो सम्मामिच्छादिट्ठी, सेसं तं चेव। एवं जाव चउरिंदिया, णवरं इंदिय परिवुड्डी कायव्वा।

भावार्थ - बेइन्द्रिय जीव गति परिणाम से तिर्यँच गति वाले, इन्द्रिय परिणाम से दो इन्द्रियों वाले होते हैं। शेष सारा वर्णन नैरयिकों की तरह समझना चाहिये। विशेषता यह है कि वे योग परिणाम से वचनयोगी भी होते हैं काय योगी भी होते हैं। ज्ञान परिणाम से आभिनिबोधिक ज्ञानी भी होते हैं और श्रुतज्ञानी भी होते हैं। अज्ञान परिणाम से मति अज्ञानी भी होते हैं और श्रुतअज्ञानी भी होते हैं किन्तु विभंगज्ञानी नहीं होते। दर्शन परिणाम से सम्यग्दृष्टि भी होते हैं मिथ्यादृष्टि भी होते हैं किन्तु मिश्र दृष्टि (सम्यग्-मिथ्यादृष्टि) नहीं होते। शेष सब वर्णन नैरयिक जीवों की तरह समझना चाहिये।

इसी प्रकार चउरिन्द्रिय जीवों तक समझ लेना चाहिये। विशेषता यह है कि तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय में उत्तरोत्तर एक-एक इन्द्रिय की वृद्धि कर लेनी चाहिये। अर्थात् तेइन्द्रिय में स्पर्शनेन्द्रिय रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय तथा चउरिन्द्रिय में स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुन्द्रिय ये चार इन्द्रियाँ होती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीन विकलेन्द्रिय जीवों की परिणाम संबंधी प्ररूपणा की गई है। कितनेक बेइन्द्रिय आदि जीवों को करण अपर्याप्तक अवस्था में सास्वादन सम्यक्त्व होता है अतः उन्हें ज्ञान परिणाम वाले और सम्यग्दृष्टि भी कहा गया है।

तिर्यंच पंचेन्द्रियों में परिणाम

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया गइ परिणामेणं तिरिय गइया, सेसं जहा णेरइयाणं, णवरं लेसापरिणामेणं जाव सुक्कलेसा वि। चरित्त परिणामेणं णो चरित्ती, अचरित्ती वि, चरित्ताचरित्ती वि, वेय परिणामेणं इत्थि वेयगा वि, पुरिस वेयगा वि, णपुंसगवेयगा वि।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव गति परिणाम से तिर्यंच गति वाले हैं। शेष सारा वर्णन नैरयिक जीवों की तरह समझना चाहिये। विशेषता यह है कि लेश्या परिणाम से वे कृष्णलेशी यावत् शुक्ल लेशी भी होते हैं। चारित्र परिणाम से वे चारित्री भी नहीं होते, अचारित्री भी नहीं होते किन्तु चारित्राचारित्री होते हैं। वेद परिणाम से वे स्त्रीवेदी भी होते हैं, पुरुषवेदी भी होते हैं और नपुंसकवेदी भी होते हैं।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों में छहों लेश्याएं संभव हैं। अतः सूत्र में कहा है कि **"जाव सुक्कलेसा वि"** - यावत् शुक्ल लेश्या वाले भी होते हैं अर्थात् तथा उनमें देश विरति के परिणाम भी होते हैं, अतः कहा है - **'चरित्ताचरित्ती वि'** - चारित्राचारित्री - देशविरति वाले भी होते हैं।

मनुष्यों में परिणाम

मणुस्सा गइ परिणामेणं मणुस्स गइया, इंदिय परिणामेणं पंचिंदिया, अणिंदिया वि, कसाय परिणामेणं कोह कसाई वि जाव अकसाई वि, लेसा परिणामेणं कण्ह लेसा वि जाव अलेसा वि, जोग परिणामेणं मण जोगी वि जाव अजोगी वि, उवओग परिणामेणं जहा णेरइया, णाण परिणामेणं आभिणिबोहिय णाणी वि जाव केवल णाणी वि, अण्णाणपरिणामेणं तिण्णि वि अण्णाणा, दंसण परिणामेणं तिण्णि वि दंसणा, चरित्त परि गामेणं चरित्ती वि अचरित्ती वि चरित्ताचरित्ती वि, वेय परिणामेणं इत्थीवेयगा वि पुरिस वेयगा वि णपुंसगवेयगा वि अवेयगा वि।

भावार्थ - मनुष्य गति के जीव परिणाम से मनुष्य गति वाले, इन्द्रिय परिणाम से पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय भी होते हैं। कषाय परिणाम से क्रोध कषायी यावत् अकषायी भी होते हैं। लेश्या परिणाम से कृष्णलेशी यावत् अलेशी (लेश्या रहित) होते हैं। योग परिणाम से मनोयोगी यावत् अयोगी (योग रहित) होते हैं। उपयोग परिणाम से नैरयिक जीवों के समान होते हैं। ज्ञान परिणाम से आभिनिबोधिक ज्ञानी यावत् केवलज्ञानी भी होते हैं। अज्ञान परिणाम से तीनों ही अज्ञान वाले, दर्शन परिणाम से तीनों ही दर्शन वाले और चारित्र परिणाम से चारित्री भी होते हैं, अचारित्री भी होते हैं और चारित्राचारित्री भी होते हैं। वेद परिणाम से स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी तथा अवेदी (वेद रहित) भी होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्यों में दस परिणामों की अपेक्षा कथन किया गया है। सयोगी केवली और अयोगी केवली की अपेक्षा मनुष्यों को अनिन्द्रिय कहा है क्योंकि केवली भगवान् इन्द्रियों का उपयोग नहीं करते। यद्यपि केवली भगवान् के द्रव्य मन का उपयोग होता है परन्तु भाव मन नहीं होता है तथा अयोगी तो द्रव्य मन और भाव मन दोनों से रहित होते हैं अतः अनिन्द्रिय कहलाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाणव्यंतर आदि में परिणाम

वाणमंतरा गइ परिणामेणं देव गइया, जहा असुरकुमारा एवं जोइसिया वि, णवरं लेसा परिणामेणं तेउ लेस्सा। वेमाणिया वि एवं चेव णवरं लेसा परिणामेणं तेउ लेसा वि पम्ह लेसा वि सुक्क लेसा वि, से तं जीव परिणामे॥ ४१६॥

भावार्थ - वाणव्यंतर देव गति परिणाम से देव गति वाले हैं। शेष सारा वर्णन असुरकुमारों की तरह समझना चाहिये। इसी प्रकार ज्योतिषी देवों में भी समझना चाहिये। विशेषता यह है कि लेश्या परिणाम से वे केवल तेजोलेश्या वाले ही होते हैं। वैमानिक देव के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिये। विशेषता यह है कि लेश्या परिणाम से वे तेजोलेश्या वाले भी होते हैं, पद्मलेश्या वाले भी होते हैं और शुक्ल लेश्या वाले भी होते हैं। इस प्रकार जीव परिणाम कहा गया है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की परिणाम संबंधी प्ररूपणा की गयी है। ज्योतिषी देवों में एक तेजोलेश्या ही होती है जबकि वैमानिक देवों में तीनों शुभ लेश्याएं (तेजोलेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या) होती है।

अजीव परिणाम प्रज्ञापना

अजीव परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दसविहे पण्णत्ते। तंजहा - बंधण परिणामे १, गइ परिणामे २, संठाण परिणामे ३, भेय परिणामे ४. वण्ण परिणामे ५, गंध परिणामे ६, रस परिणामे ७, फास परिणामे ८, अगुरुयलहुय परिणामे ९, सद्द परिणामे १०॥ ४१७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अजीव परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अजीव परिणाम दस प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. बन्धन परिणाम २. गति परिणाम ३. संस्थान परिणाम ४. भेद परिणाम ५. वर्ण परिणाम ६. गन्ध परिणाम ७. रस परिणाम ८. स्पर्श परिणाम ९. अगुरुलघु परिणाम और १०. शब्द परिणाम।

विवेचन - अजीव अर्थात् जीव रहित वस्तुओं के परिवर्तन से होने वाली उनकी विविध अवस्थाओं को अजीव परिणाम कहते हैं।

बंधण परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तंजहा - णिद्ध बंधण परिणामे, लुक्ख बंधण परिणामे य।

समणिद्धयाए बंधो ण होइ, समलुक्खयाए वि ण होइ।

वेमाय णिद्ध लुक्खत्तणेण बंधो उ खंधाणं॥ १॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिएणं, लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिएणं।

णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ बंधो, जहण्णवज्जो विसमो समो वा॥ २॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बन्धनपरिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बन्धनपरिणाम दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. स्निग्ध बन्धन परिणाम २. रूक्ष बन्धन परिणाम।

गाथाओं का अर्थ - सम (समान) गुण स्निग्धता होने से बन्ध नहीं होता है और सम (समान गुण) रूक्षता होने से भी बन्ध नहीं होता है। विमात्रा (विषम मात्रा) वाले स्निग्धता और रूक्षता के होने पर स्कन्धों का बन्ध होता है॥ १॥

दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध का तथा दो गुण अधिक रूक्ष के साथ रूक्ष का एवं स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध होता है, किन्तु जघन्यगुण को छोड़ कर चाहे वह सम हो अथवा विषम हो॥ २॥

विवेचन - बंध परिणाम दो प्रकार का कहा गया है - स्निग्ध बंध परिणाम और रूक्ष बंध परिणाम। सम स्निग्ध और सम रूक्ष होने पर परस्पर बंध नहीं होता है किन्तु यदि परस्पर स्निग्धता और रूक्षता की विषम मात्रा होती है तब स्कन्ध का बंध होता है। आशय यह है कि समगुण स्निग्ध परमाणु आदि का, समगुण स्निग्ध परमाणु आदि के साथ बंध नहीं होता और इसी तरह समगुण रूक्ष परमाणु आदि का समगुण रूक्ष परमाणु आदि के साथ बंध नहीं होता किन्तु यदि स्निग्ध स्निग्ध के साथ और रूक्ष रूक्ष के साथ विषम गुण वाला होता है तो विषम मात्रा होने से परस्पर बंध हो जाता है। यह विषम मात्रा एक गुण अधिक न होकर दो गुण अधिक, तीन गुण अधिक आदि होनी चाहिये। एक गुण स्निग्ध और एक गुण स्निग्ध का बंध नहीं होता, एक गुण स्निग्ध और दो गुण स्निग्ध का बंध नहीं होता, दो गुण स्निग्ध का बंध नहीं होता किन्तु दो गुण स्निग्ध और चार गुण स्निग्ध का बंध हो जाता है। स्निग्ध और रूक्ष का आपस में बंध तभी होता है जब दोनों जघन्य गुण न हों। जघन्य गुण से अधिक होने पर सम मात्रा में या विषम मात्रा में बंध हो सकता है जैसे दो गुण स्निग्ध और दो गुण रूक्ष का बंध होता है, दो गुण स्निग्ध और तीन गुण रूक्ष का बंध होता है।

यहाँ पर टीकाकार जघन्य गुण का किसी के साथ भी बंध नहीं मानते हैं किन्तु एक गुण स्निग्ध, २ गुण रूक्ष आदि में तो बन्ध हो सकता है दोनों तरफ जघन्य गुण होने पर बन्ध नहीं होता है। एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरफ जघन्य गुण हो दूसरी तरफ उससे एकाधिक गुण हो तो स्निग्ध एवं रूक्ष का बंध हो सकता है। बन्ध प्रायोग्य स्कन्धों में स्निग्ध या रूक्ष गुण हों तभी बंध होता है, अन्यथा नहीं।

स्निग्ध व रूक्ष का बंध (तालिका)

		दिगम्बर मान्यता		श्वेताम्बर मान्यता	
क्रं०		सदृश	असदृश	सदृश	असदृश
१.	जघन्य जघन्य	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं
२.	जघन्य एकाधिक	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध है
३.	जघन्य द्वयाधिक	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध है	बन्ध है
४.	जघन्य त्र्याधिक	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध है	बन्ध है
५.	जघन्येतर सम जघन्येतर	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध है
६.	जघन्येतर एकाधिक	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध है
७.	जघन्येतर द्वयाधिक	बन्ध है	बन्ध है	बन्ध है	बन्ध है
८.	जघन्येतर त्र्याधिक	बन्ध नहीं	बन्ध नहीं	बन्ध है	बन्ध है

गइ परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - फुसमाण गइ परिणामे य अफुसमाण गइ परिणामे य अहवा दीह गइ परिणामे य हस्स गइ परिणामे य २।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गति परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गति परिणाम दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. स्पृशद् गति परिणाम और २. अस्पृशद् गति परिणाम अथवा १. दीर्घ गति परिणाम और २. ह्रस्व गति परिणाम।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में गति परिणाम दो प्रकार का कहा गया है - स्पृशद् गति परिणाम (फुसमाण गति परिणाम) और अस्पृशद् गति परिणाम (अफुसमाण गई परिणाम)। दूसरी वस्तु को स्पर्श करते हुए जो गति परिणाम होता है वह स्पृशद् गति परिणाम कहलाता है जैसे प्रयत्न पूर्वक जल पर फैंकी हुई ठीकरी जल का स्पर्श करती हुई जाती है। जो वस्तु गति करते हुए बीच में किसी के साथ स्पृष्ट नहीं होती वह अस्पृशद् गति परिणाम है जैसे आकाश में उड़ता हुआ पक्षी, उड़ते हुए किसी का स्पर्श नहीं करता। अथवा गति परिणाम के दो भेद - १. दीर्घ गति परिणाम और २. ह्रस्व गति परिणाम। दूर के देशान्तर की प्राप्ति का परिणाम दीर्घ गति परिणाम है। इसके विपरीत समीप के देशान्तर की प्राप्ति का परिणाम ह्रस्व गति परिणाम है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ पर स्पृशद गति का आशय 'आकाश प्रदेशों पर रुक कर गति करना' समझना चाहिये। बिना रुके आकाश प्रदेशों का स्पर्श नहीं गिना गया है। अतः परमाणु एक समय में जो लोकान्त तक जाता है वह उन-उन आकाश प्रदेशों की श्रेणी को पार करते हुए भी बीच में नहीं रुकने से उसकी अस्पृशद गति गिनी गई है क्योंकि रुकने में कम से कम एक समय तो लगता है एक ही समय में लोकान्त तक जाने पर बीच में रुकना नहीं गिना जाता है क्योंकि समय काल का सूक्ष्मतम अंश है। उसके फिर दो विभाग नहीं हो सकते हैं अतः अविग्रह (ऋजु) गति से जाने वाले जीवों की एवं प्रथम समय के सिद्धों की अस्पृशद गति होती है।

संठाण परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - परिमंडल संठाण परिणामे जाव आयय संठाण परिणामे ३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संस्थान परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! संस्थान परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. परिमण्डल संस्थान परिणाम २. वृत्त संस्थान परिणाम ३. त्र्यस्र संस्थान परिणाम ४. चतुरस्र संस्थान परिणाम और ५. आयत संस्थान परिणाम।

विवेचन - पुद्गलों के अलग-अलग आकार विशेष में परिणत होने को संस्थान परिणाम कहते हैं। परिमंडल संस्थान, वृत्त (वट्ट-गोलाकार) संस्थान, त्र्यस्र (तंस-त्रिकोण) संस्थान, चतुरस्र (चउरंस-चतुष्कोण) संस्थान, आयत (लंबा) संस्थान के भेद से संस्थान परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है।

भेय परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - खंडाभेय परिणामे जाव उक्करियाभेय परिणामे ४।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भेद परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! भेद परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. खण्डभेद परिणाम २. प्रतरभेद परिणाम ३. चूर्णिका (चूर्ण) भेदपरिणाम ४. अनुतटिकाभेद परिणाम और ५. उत्कटिका (उत्करिका) भेद परिणाम।

विवेचन - खंड भेद परिणाम, प्रतर भेद परिणाम, चूर्णिका भेद परिणाम, अनुतरिका भेद परिणाम और उत्करिका भेद परिणाम। ग्यारहवें भाषा पद में इनका स्वरूप बताया जा चुका है।

वण्ण परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - काल वण्ण परिणामे जाव सुक्किल्ल वण्ण परिणामे ५।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वर्ण परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वर्ण परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. कृष्ण वर्ण परिणाम २. नील वर्ण परिणाम ३. रक्त वर्ण परिणाम ४. पीत वर्ण परिणाम और ५. शुक्ल (श्वेत) वर्ण परिणाम।

गंध परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुब्भिगंध परिणामे य दुब्भिगंध परिणामे य ६।

भावार्थ - हे भगवन्! गन्ध परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गन्ध परिणाम दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - सुगन्ध परिणाम और दुर्गन्ध परिणाम।

रस परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजा - तित्त रस परिणामे जाव महुर रस परिणामे ७।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रस परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रस परिणाम पांच प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. तिक्त (तीखा) रस परिणाम २. कटु (कड़वा) रस परिणाम ३. कषाय (कषैला) रस परिणाम ४. अम्ल (खट्टा) रस परिणाम और ५. मधुर (मीठा) रसपरिणाम।

फास परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते ?

गोयमा! अट्ठविहे पण्णत्ते। तंजहा - कक्खड फास परिणामे य जाव लुक्ख फास परिणामे य ८।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्पर्श परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! स्पर्श परिणाम आठ प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. कर्कश (कठोर) स्पर्श परिणाम २. मृदु (कोमल) स्पर्श परिणाम ३. गुरु (भारी) स्पर्श परिणाम ४. लघु (हलका) स्पर्श परिणाम ५. उष्ण (गरम) स्पर्श परिणाम ६. शीत(ठण्डा) स्पर्श परिणाम ७. स्निग्ध (चीकणा) स्पर्श परिणाम और ८. रूक्ष (लूखा) स्पर्श परिणाम।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अगुरुय लहुय परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! एगागारे पण्णत्ते ९।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अगुरुलघु परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अगुरुलघु परिणाम एक ही प्रकार का कहा गया है।

विवेचन - अगुरु लघु परिणाम (न हल्का न भारी) - चार स्पर्श वाले कर्म, मन और भाषा के द्रव्य तथा अमूर्त आकाश आदि अगुरु लघु परिणाम वाले हैं। किन्तु अष्ट स्पर्शी औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस गुरु लघु परिणाम वाले होते हैं। अभिप्राय यह है कि अमूर्त द्रव्य और चार स्पर्श वाले अगुरु लघु कहलाते हैं और आठ स्पर्श वाले गुरु लघु परिणाम वाले कहलाते हैं।

सद्द परिणामे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुब्भिसद्द परिणामे य दुब्भिसद्द परिणामे य १०। से तं अजीव परिणामे॥ ४१८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शब्द परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! शब्द परिणाम दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - सुरभि (शुभ-मनोज्ञ) शब्द परिणाम और दुरभि (अशुभ-अमनोज्ञ) शब्द परिणाम। इस प्रकार अजीव परिणाम का वर्णन हुआ।

विवेचन - शब्द परिणाम दो प्रकार का कहा है सुरभि शब्द अर्थात् शुभ शब्द और दुरभि शब्द अर्थात् अशुभ शब्द।

॥ पण्णवणाए भगवईए तेरसमं परिणामपयं समत्तं॥

॥ प्रज्ञापना भगवती का तेरहवाँ परिणाम पद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चोद्दसमं कसायपयं

चौदहवाँ कषाय पद

उक्खेओ (उत्क्षेप उत्थानिका - अवतरणिका) - इस चौदहवें पद का नाम "कषाय पद" है। इसमें दो शब्द है 'कष' और 'आय'। 'कष' धातु से 'कष' शब्द बना है। जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है-"**कष्यन्ते, पीड्यन्ते प्राणिनः अस्मिन् इति कषः संसारः।**" आय शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है - '**अय गतौ**' धातु से आय शब्द बना है - "**आ समन्तात अयन्ते गच्छन्ति असुभन्तः प्राणिनः इति आय**" अर्थात् जिसमें प्राणी आते हैं उसे आय कहते हैं। इस तरह से कष और आय ये दोनों शब्द मिलकर "कषाय" शब्द बना है-जिसका अर्थ होता है प्राणी जहाँ आकर अपने किये हुए कर्मों का सुख दुःख रूप फल भोगते हैं उसे कषाय कहते हैं। संसार परिभ्रमण का मुख्य कारण कषाय है। कषाय से सर्वथा छुटकारा पा लेना इसी का नाम मोक्ष है। प्राणी का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है।

कषाय के सम्बन्ध में दशवैकालिक सूत्र में भी फरमाया है -

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्ढमाणा।

चत्तारि एए कसिणा कसाया, सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स॥ ४०॥ (अ० ८)

अर्थात् - क्रोध और मान ये दोनों क्षमा और विनय से शान्त न किये हों और माया, लोभ ये दोनों, सरलता और सन्तोष रूपी सद्गुणों को धारण न करने से बढ़ रहे हों तो आत्मा को मलिन बनाने वाले, ये चारों कषाय पुनर्जन्म रूपी वृक्ष की जड़ों को सींचते हैं अर्थात् ये चारों कषाय जन्म मरण रूपी संसार को बढाते हैं तथा शुद्ध स्वभाव युक्त आत्मा को क्रोध आदि विकारों से मलिन करने वाले हैं तथा अष्टविध कर्मों के चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना आदि के कारणभूत हैं। जीव के आत्मप्रदेशों के साथ सम्बन्ध होने से इनका विचार करना अति आवश्यक है। इसी कारण कषाय पद की रचना हुई है।

तेरहवें पद में सामान्य रूप से गति आदि रूप जीव के परिणाम कहे गये हैं। सामान्य विशेष को आश्रित रहा हुआ है इसलिए वे ही परिणाम किसी स्थान पर विशेष रूप से प्रतिपादित किये जाते हैं। एकेन्द्रिय जीवों में भी कषाय होने से और '**सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते**' (तत्त्वार्थ सूत्र अ. ९ सूत्र २) कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है। तत्त्वार्थ सूत्र के इस वचन से कषाय बन्ध का प्रधान कारण होने से इस चौदहवें पद में कषाय परिणाम का विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषाय के भेद

कइ णं भंते! कसाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि कसाया पण्णत्ता। तंजहा - कोह कसाए, माण कसाए, माया कसाए, लोभ (लोह) कसाए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कषाय कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! कषाय चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं- १. क्रोध कषाय, २. मान कषाय ३. माया कषाय और ४. लोभ कषाय।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कषाय के चार भेद कहे गये हैं। कषाय शब्द के तीन व्युत्पत्ति परक अर्थ इस प्रकार हैं - १. "**कषः संसारः तस्य आयः लाभः कषायः**" - कष अर्थात् संसार उसका आय-लाभ जिससे हो, वह कषाय है अर्थात् संसार परिभ्रमण का मूल कारण कषाय है।

२. 'कृष' धातु विलेखन अर्थ में आती है, उससे भी कृष को कष आदेश हो कर 'आय' प्रत्यय लगने से कषाय शब्द बनता है। जिसका अर्थ होता है -

'**कृषन्ति विलिखंति कर्मरूपं क्षेत्रं सुख दुःख शस्य उत्पादयन्ति इति कषायाः**'

- जो कर्म रूपी खेत को सुख दुःख रूपी धान्य की उपज के लिए विलेखन (कर्षण) करते हैं - जोतते हैं वे कषाय कहलाते हैं अर्थात् सुख दुःख भोगने के स्थान को 'कषाय' कहते हैं।

३. 'कलुष' धातु को 'कष' आदेश हो कर भी कषाय शब्द बनता है - "**कलुषयन्ति शुद्ध स्वभावं संतं कर्ममलिनं कुर्वन्ति जीवमिति कषायाः**" अर्थात् - स्वभाव से शुद्ध जीव को जो कलुषित अर्थात् कर्ममलिन करते हैं उन्हें कषाय कहते हैं। चारों कषायों का स्वरूप इस प्रकार है - कषाय मोहनीय कर्म के उदय से होने वाले क्रोध, मान, माया और लोभ रूप आत्मा के परिणाम विशेष जो सम्यक्त्व, देशविरति, सर्वविरति और यथाख्यात चारित्र का घात करते हैं वे कषाय कहलाते हैं।

क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों मोहनीय कर्म की प्रकृतियाँ हैं। 'क्रुध' धातु क्रोध करने अर्थ में आती है। "माङ्" धातु से मान और माया ये दोनों शब्द बने हैं तथा 'लुभ' धातु गिद्धि भाव अर्थ में आती है उससे लोभ शब्द बनता है। इन चारों का स्वरूप आगे बताया जाता है। कषाय के चार भेद इस प्रकार हैं -

१. क्रोध - क्रोध मोहनीय के उदय से होने वाला, कृत्य (करने योग्य) और अकृत्य (नहीं करने योग्य) के विवेक को हटाने वाला, प्रज्वलन स्वरूप आत्मा के परिणाम को क्रोध कहते हैं। क्रोधवश जीव किसी की बात सहन नहीं करता और बिना विचारे अपने और पराए अनिष्ट के लिए हृदय में और बाहर जलता रहता है। इसलिए क्रोध ज्वलन स्वरूप है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. मान - मान मोहनीय कर्म के उदय से जाति आदि गुणों में अहंकार बुद्धि रूप आत्मा के परिणाम को मान कहते हैं। मान वश जीव में छोटे बड़े के प्रति उचित नम्र भाव नहीं रहता है। मानी जीव अपने को बड़ा समझता है और दूसरों को तुच्छ समझता हुआ उनकी अवहेलना करता है। गर्व वश वह दूसरे के गुणों को सहन नहीं कर सकता।

३. माया - माया मोहनीय कर्म के उदय से मन, वचन, काया की कुटिलता द्वारा परवञ्चना अर्थात् दूसरे के साथ कपटाई, ठगाई, दगारूप आत्मा के परिणाम विशेष को माया कहते हैं।

४. लोभ - लोभ मोहनीय कर्म के उदय से द्रव्यादि विषयक इच्छा, मूर्च्छा, ममत्व भाव एवं तृष्णा अर्थात् असन्तोष रूप आत्मा के परिणाम विशेष को लोभ कहते हैं।

नैरयिक आदि में कषाय

णेरइयाणं भंते! कइ कसाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि कसाया पण्णत्ता। तंजहा - कोह कसाए, माण कसाए, माया कसाए, लोभ कसाए। एवं जाव वेमाणियाणं॥ ४१९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीवों में कितने कषाय होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीवों में चारों कषाय होते हैं। वे इस प्रकार हैं - क्रोध कषाय, मान कषाय, माया कषाय और लोभ कषाय। इसी प्रकार वैमानिक देवों तक चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में चारों कषाय पाए जाते हैं।

विवेचन - समुच्चय जीव और चौबीस दंडक में चारों कषाय-क्रोध, मान, माया और लोभ पाए जाते हैं।

कषायों के प्रतिष्ठान

कइ पइट्ठिए णं भंते! कोहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउ पइट्ठिए कोहे पण्णत्ते। तंजहा - आय पइट्ठिए, पर पइट्ठिए, तदुभय पइट्ठिए, अप्पइट्ठिए। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं दंडओ। एवं माणेणं दंडओ, मायाए दंडओ, लोभेणं दंडओ॥ ४२०॥

कठिन शब्दार्थ - पइट्ठिए - प्रतिष्ठित (आश्रित रहा हुआ)

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्रोध कितनों पर प्रतिष्ठित (आश्रित) है? अर्थात् किस-किस आधार पर रहा हुआ है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! क्रोध को चार पर प्रतिष्ठित कहा गया है। वह इस प्रकार हैं - १. आत्म प्रतिष्ठित २. पर प्रतिष्ठित ३. उभय-प्रतिष्ठित और ४. अ-प्रतिष्ठित। इसी प्रकार नैरयिक जीवों से लेकर वैमानिक देवों तक चौवीस ही दण्डकवर्ती जीवों के विषय में दण्डक (आलापक) कह देना चाहिये। क्रोध की तरह मान की अपेक्षा से, माया की अपेक्षा से और लोभ की अपेक्षा से भी प्रत्येक का एक-एक दण्डक कह देना चाहिये। अर्थात् क्रोध पर चौबीस, मान पर चौबीस, माया पर चौबीस और लोभ पर चौबीस, इस प्रकार प्रत्येक कषाय पर चौबीस-चौबीस दण्डक कह देने चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चार कषायों को चार-चार स्थानों पर प्रतिष्ठित (आधारित) कहा गया है। वे इस प्रकार हैं - **१. आत्म प्रतिष्ठित** - अपने आचरण का ऐहिक कुफल जानकर अपनी आत्मा पर क्रोध करना। **२. पर प्रतिष्ठित** - किसी के गाली देने पर उस पर क्रोध करना। **३. तदुभय प्रतिष्ठित**- दोनों यानी अपनी आत्मा पर और दूसरे पर क्रोध करना। **४. अप्रतिष्ठित** - क्रोध वेदनीय कर्म के उदय होने पर निष्कारण क्रोध करना। इस प्रकार अधिकरण के भेद से क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। अब कारण के भेद से क्रोध के भेद बताते हैं -

कषायों के उत्पत्ति के कारण

कइहिं णं भंते! ठाणेहिं कोहुप्पत्ती भवइ?

गोयमा! चउहिं ठाणेहिं कोहुप्पत्ती भवइ, तंजहा - खेत्तं पडुच्च, वत्थुं पडुच्च, सरीरं पडुच्च, उवहिं पडुच्च। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। एवं माणेण वि मायाए वि, लोभेण वि, एवं एए वि चत्तारि दंडगा॥ ४२१ ॥

कठिन शब्दार्थ - **कोहुप्पत्ती** - क्रोधोत्पत्ति, **पडुच्च** - प्रतीत्य-अपेक्षा से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कितने स्थानों (कारणों) से क्रोध की उत्पत्ति होती है?

उत्तर - हे गौतम! चार स्थानों (कारणों) से क्रोध की उत्पत्ति होती है, वे इस प्रकार हैं - १. क्षेत्र - खेत या खुली जमीन को लेकर २. वास्तु - मकान आदि को लेकर ३. शरीर के निमित्त से और ४. उपधि उपकरणों-साधनसामग्री के निमित्त से। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक क्रोधोत्पत्ति के विषय में प्ररूपणा करनी चाहिये। क्रोधोत्पत्ति के विषय में जैसा कहा है, उसी प्रकार मान, माया और लोभ की उत्पत्ति के विषय में भी उपर्युक्त चार कारण कहने चाहिये। इस प्रकार ये चार दण्डक होते हैं।

विवेचन - चार कारणों से क्रोध आदि उत्पन्न होते हैं - क्षेत्र, वास्तु, शरीर और उपधि। क्षेत्र यानी खेत कुआ आदि खुली जमीन। वास्तु यानी हाट हवेली आदि ढकी जमीन। शरीर यानी दास दासी आदि। उपधि-भण्डोपकरण, आभूषण, वस्त्र आदि। इन चार बोलों से क्रोध आदि की उत्पत्ति होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब सम्यग्दर्शन आदि गुण के घाती होने से कषायों के भेद कहे जाते हैं -

कषायों के भेद-प्रभेद

कइविहे णं भंते! कोहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे कोहे पण्णत्ते। तंजहा - अणंताणुबंधी कोहे, अपच्चक्खाणे कोहे, पच्चक्खाणावरणे कोहे, संजलणे कोहे। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। एवं माणेणं मायाए लोभेणं, एए वि चत्तारि दंडगा॥ ४२२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्रोध कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. अनन्तानुबन्धी क्रोध २. अप्रत्याख्यान क्रोध ३. प्रत्याख्यानावरण क्रोध और ४. संज्वलन क्रोध। इसी प्रकार नैरयिक जीवों से लेकर वैमानिक देवों तक चौवीस ही दण्डकवर्ती जीवों में क्रोध के इन चारों प्रकारों की प्ररूपणा समझनी चाहिए। इसी प्रकार मान की अपेक्षा से, माया की अपेक्षा से और लोभ की अपेक्षा से, इन चार-चार भेदों का तथा नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक में इनके पाए जाने का कथन कर देना चाहिये। ये भी चार दण्डक होते हैं। अर्थात् प्रत्येक के ऊपर चौबीस-चौबीस दण्डक होने से इन के चार विभाग हो जाते हैं।

विवेचन - क्रोध चार प्रकार का होता है - अनन्तानुबंधी क्रोध, अप्रत्याख्यानी क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध और संज्वलन क्रोध। अनन्तानुबन्धी क्रोध सम्यक्त्व का घात करता है। अप्रत्याख्यानी क्रोध देश विरति का घात करता है। प्रत्याख्यानावरण क्रोध सर्व विरति का घात करता है। संज्वलन क्रोध यथाख्यात चारित्र का घात करता है। क्रोध की तरह ही मान, माया और लोभ चार-चार प्रकार का होता है ।

इस प्रकार क्रोध, मान, माया और लोभ इन प्रत्येक पर चौबीस चौबीस दण्डक कह देने चाहिए। शास्त्रकार ने यहाँ चौबीस दण्डक को एक दण्डक गिना है। अब क्रोध आदि की उत्पत्ति के भेद से और अवस्था के भेद से भेद बताते हैं -

कइविहे णं भंते! कोहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे कोहे पण्णत्ते। तंजहा - आभोग णिव्वत्तिए, अणाभोग णिव्वत्तिए, उवसंते, अणुवसंते। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं। एवं माणेण वि, मायाए वि, लोभेण वि चत्तारि दंडगा॥ ४२३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्रोध कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! क्रोध चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. आभोग निर्वर्तित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अनाभोग निर्वर्तित ३. उपशान्त और ४. अनुपशान्त। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक में चार प्रकार के क्रोध का कथन कर देना चाहिये। क्रोध के समान ही मान के, माया के और लोभ के आभोग निर्वर्तित आदि चार-चार भेद होते हैं तथा नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक में मान, माया और लोभ के भी ये ही चार-चार भेद दण्डक समझने चाहिये।

विवेचन - क्रोध के चार प्रकार हैं - **१. आभोग निर्वर्तित क्रोध** - क्रोध का कारण और क्रोध का फल जानकर क्रोध करना। **२. अनाभोग निर्वर्तित क्रोध** - गुण दोष जाने बिना परवश होकर क्रोध करना। **३. उपशांत क्रोध** - जो क्रोध अन्दर हो पर ऊपर से शांत दिखाई दे, उदय में नहीं आया हुआ है। **४. अनुपशान्त क्रोध** - उदय में आया हुआ क्रोध। इसी तरह मान, माया और लोभ के स्थान (कारण) और प्रकार कह देना चाहिए।

उपशांत क्रोध आदि का भेद जीवों में उस समय पाता है कि जब वह क्रोध कषाय में नहीं वर्तता हो किन्तु मान आदि अन्य कषायों में वर्तता हो। अथवा विशिष्ट उदय के अभाव में भी उपशांत क्रोध कह सकते हैं। ये भेद सकषायी जीवों के होने से ११ वें गुणस्थान वालों के नहीं समझना चाहिये। उनमें तो पूर्ण रूप से कषाय उपशांत होते हैं।

अब फल के भेद से त्रिकालवर्ती जीवों के भेद बतलाये जाते हैं -

जीवा णं भंते! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु?

गोयमा! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिंसु, तंजहा-कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं।

कठिन शब्दार्थ - चिणिंसु - चय किया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीवों ने कितने स्थानों (कारणों) से आठ कर्म प्रकृतियों का चय किया हैं (यह भूतकाल सम्बन्धी प्रश्न है)?

उत्तर - हे गौतम! चार कारणों से जीवों ने आठ कर्म प्रकृतियों का चय किया है, वे इस प्रकार हैं-१. क्रोध से २. मान से ३. माया से और ४. लोभ से। इसी प्रकार की प्ररूपणा नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक के विषय में समझ लेनी चाहिये।

आठ कर्म प्रकृतियों का चय आदि

जीवा णं भंते! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणंति?

गोयमा! चउहिं ठाणेहिं, तंजहा - कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं। एवं णेरइया जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव कितने कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का चय करते हैं? (यह वर्तमान काल सम्बन्धी प्रश्न है)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! चार कारणों से जीव आठ कर्म प्रकृतियों का चय करते हैं, वे इस प्रकार हैं - १. क्रोध से २. मान से ३. माया से और ४. लोभ से। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिक देवों तक के विषय में प्ररूपणा करनी चाहिये।

जीवा णं भंते! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिस्संति?

गोयमा! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ चिणिस्संति, तंजहा - कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं। एवं णेरइया जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव कितने कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का चय करेंगे? (यह भविष्य काल सम्बन्धी प्रश्न है)

उत्तर - हे गौतम! चार कारणों से जीव आठ कर्म प्रकृतियों का चय करेंगे, वे इस प्रकार हैं - १. क्रोध से २. मान से ३. माया से और ४. लोभ से। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के विषय में प्ररूपणा कर देनी चाहिये।

जीवा णं भंते! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिंसु?

गोयमा! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणिंसु, तंजहा - कोहेणं, माणेणं, मायाए, लोभेणं। एवं णेरइया जाव वेमाणिया।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! जीवों ने कितने कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय किया है?

उत्तर - हे गौतम! जीवों ने चार कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय किया है, वे इस प्रकार हैं - १. क्रोध से २. मान से ३. माया से और ४. लोभ से। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों तक के विषय में समझना चाहिये।

जीवा णं भंते! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणंति?

गोयमा! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ उवचिणंति कोहेणं जाव लोभेणं, एवं णेरइया जाव वेमाणिया। एवं उवचिणिस्संति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव कितने कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! चार कारणों से जीव आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय करते हैं, वे इस प्रकार हैं - १. क्रोध से २. मान से ३. माया से और ४. लोभ से। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों तक चौबीस ही दण्डक के विषय में कहना चाहिए। इसी प्रकार पूर्वोक्त चार कारणों से जीव आठ कर्म प्रकृतियों का उपचय करेंगे, यह कहना चाहिए।

जीवा णं भंते! कइहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ बंधिंसु?

गोयमा! चउहिं ठाणेहिं अट्ठ कम्मपगडीओ बंधिंसु, तंजहा - कोहेणं, माणेणं मायाए लोभेणं, एवं णेरइया जाव वेमाणिया, बंधिंसु, बंधंति, बंधिस्संति, उदीरेंसु,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदीरेंति, उदीरिस्संति, वेदिंसु, वेदेंति, वेदइस्संति, णिज्जरिंसु, णिज्जरेंति, णिज्जरिस्संति, एवं एए जीवाइया वेमाणिय पज्जवसाणा अट्ठारस दंडगा जाव वेमाणिया णिज्जरिंसु णिज्जरेंति णिज्जरिस्संति।

आय पइट्ठिय खेत्तं पडुच्च अणंताणुबंधि आभोगे।
चिण उवचिण बंध उदीर वेय तह णिज्जरा चेव॥ १॥ ॥४२४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीवों ने कितने कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों को बांधा है?, बांधते हैं और बांधेंगे?

उत्तर - हे गौतम! चार कारणों से जीवों ने आठ कर्म प्रकृतियों को बांधा है, बांधते हैं और बांधेंगे, वे इस प्रकार हैं - क्रोध से यावत् लोभ से। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के जीवों ने पूर्वोक्त चार कारणों से आठ कर्म प्रकृतियों को बांधा है, बांधते हैं और बांधेंगे, उदीरणा की है, उदीरणा करते हैं और उदीरणा करेंगे तथा वेदन किया है, वेदन करते हैं और वेदन करेंगे, इसी प्रकार निर्जरा की है, निर्जरा करते हैं और निर्जरा करेंगे।

इस प्रकार समुच्चय जीवों तथा नैरयिकों से लेकर वैमानिकों पर्यन्त आठ कर्म प्रकृतियों के चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदन एवं निर्जरा की अपेक्षा से छह, तीनों (भूत, वर्तमान एवं भविष्य) काल के तीन-तीन भेद के कुल अठारह दण्डक यावत् वैमानिकों ने निर्जरा की, निर्जरा करते हैं तथा निर्जरा करेंगे तक कह देना चाहिये।

गाथा का अर्थ - प्रस्तुत प्रकरण में आत्म प्रतिष्ठित क्षेत्र की अपेक्षा से, अनन्तानुबंधी, आभोग, आठ कर्म प्रकृतियों के चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना तथा निर्जरा का कथन किया गया है।

विवेचन - चार स्थान क्रोध, मान, माया और लोभ के वश होकर जीव ने भूत काल में आठ कर्मों का चय किया है, उपचय किया है, आठ कर्म बांधे हैं, आठ कर्मों की उदीरणा की है, आठ कर्म वेदे हैं और आठ कर्म की निर्जरा की है। वर्तमान में भी आठ कर्मों का चय, उपचय, बंध, उदीरणा, वेदन और निर्जरा करता है और भविष्य में भी करेगा।

१. चय - कषाय परिणत आत्मा का कर्म पुद्गल ग्रहण करना। **२. उपचय** - अबाधा काल समाप्त हो जाने पर ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों का निषेक ✿ करना। **३. बंध** - निकाचित बंध करना। **४. उदीरणा** - उदय में नहीं आये हुए कर्मों का तप आदि प्रयत्न द्वारा उदयावलिका में प्रवेश करना।

✿ कर्म विशेष का अबाधा काल समाप्त होने पर प्रथम समय में बहुत प्रदेशों का उदय में आना और दूसरे तीसरे आदि समयों में हीन हीनतर प्रदेशों का उदय में आना 'निषेक' कहलाता है। असत् कल्पना से २५ समय की स्थिति वाले कर्म विशेष के १०५० परमाणु बांधे। पांच समय का अबाधा काल समाप्त होने पर छठे समय में १००, सातवें समय में ९५ आठवें समय में ९० यावत् पच्चीसवें समय में पांच कर्म परमाणु उदय आकर यह कर्म निःशेष हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. वेदन - अबाधाकाल के पश्चात् उदय प्राप्त तथा उदीरणा द्वारा उदयावलिका में आये हुए कर्मों का फल भोग करना। **६. निर्जरा** - कर्मों का फल भोगकर उन्हें अकर्म रूप करना यानी पूर्वकृत कर्मों का फल भोगकर उन्हें नाश करना अर्थात् क्षय करना।

चय, उपचय आदि को समझाने के लिए स्थूल दृष्टि से कंडों (छाणा) का दृष्टान्त दिया जाता है जैसे - **१. चय** - कंडों या ईंटों को एक स्थान पर रखना **२. उपचय** - कंडों या ईंटों को व्यवस्थित रूप से चुन (जमा) देना **३. बंध** - कंडों या ईंटों को गोबर या मिट्टी आदि के द्वारा चिपका देना **४. उदीरणा** - गोबर आदि के लेप को हटाकर कंड़े आदि को वहाँ से शीघ्र हटाने के योग्य बना देना **५. वेदन**- चुने हुए कंडों को उठाकर आग में डाल देना, ईंट आदि को वहाँ से हटाकर अन्यत्र डालने के लिए रख देना **६. निर्जरा** - कंडों को जलाकर राख कर देना तथा ईंटों को अन्यत्र फेंक देना।

चय आदि ५ बोल अचलित (आत्म प्रदेशों से संबद्ध) कर्मों में होते हैं। निर्जरा चलित (आत्म प्रदेशों से पृथक् हुए) कर्मों की होती है।

इस पद में कषायों सम्बन्धी कुल ३४०० आलापक बताये हैं वे इस प्रकार हैं - सर्व प्रथम कषायों के भेद पूछे हैं तथा बाद में २४ ही दण्डकों में उन भेदों के अस्तित्व की पृच्छा की है। जिसमें क्रोध आदि प्रत्येक कषाय के १६-१६ भेद बताये हैं। बाद में २४ ही दण्डकों में रहे हुए जीवों के क्रोध आदि के १६-१६ भेद किये हैं इस प्रकार पहले समुच्चय क्रोध के १६ भेद तथा बाद में २४ दण्डकों के क्रोध के १६-१६ भेद होने से ४०० प्रश्नोत्तर हो जाते हैं। जिन्हें थोकड़ों वालों ने आलापक कहा है। इस तरह यहाँ समुच्चय जीव नहीं समझ कर समुच्चय क्रोध आदि समझना चाहिये। इस प्रकार समुच्चय कषाय एवं २४ दण्डकों के कषाय के १६०० भेद कर देने के बाद 'जीव कर्मों का चय आदि किससे करता था' इस प्रकट कर्म चय आदि के निमित्तभूत कषायों के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर है तथा बाद में २४ दण्डकों के लिए भी प्रश्न पूछे हैं। इस प्रकार चय आदि छह बोलों को ३ काल से गुणा करने पर १८ हो जाते हैं। समुच्चय जीव व २४ दण्डक इस प्रकार २५ से गुणा करने पर ४५० भेद क्रोध के बनते हैं। चारों कषायों के ४५०-४५० भेद मिलकर १८०० भेद हो जाते हैं। इस प्रकार १६००+१८००=कुल ३४०० आलापक हुए। एकवचन बहुवचन के भेद नहीं होने से ५२०० भेद नहीं बनते हैं। यद्यपि समुच्चय जीव में २४ दण्डक आ गये हैं, तथापि जैसे समुच्चय जीव में १४ गुणस्थान होते हुए भी २४ ही दण्डकों में १४-१४ गुणस्थान नहीं मिलते हैं। अतः उनके पृथक्-पृथक् प्रश्नोत्तर किये हैं। ऊपर वाले ४०० भेद कषायों के होने से उसमें २४ दण्डक से भिन्न समुच्चय जीव नहीं होने से उनमें समुच्चय जीव नहीं बताया गया है। अर्थात् १६०० भेद कषायों के तथा १८०० भेद कषाय सहित जीवों के हैं अतः ३४०० आलापक कहना ही उचित प्रतीत होता है।

॥ पण्णवणाए भगवईए चोद्दसमं कसायपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती का चौदहवां कषाय पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णरसमं इंदियपयं-पढमो उद्देसो

पन्द्रहवां इन्द्रिय पद-प्रथम उद्देशक

उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका)-अवतरणिका - इस पन्द्रहवें पद का नाम 'इन्द्रिय पद' है। इन्द्रिय शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है - संस्कृत में '**इदि परमैश्वर्ये**' धातु है। इससे इन्द्रिय शब्द बनता है।

'इन्दती परमैश्वर्यम् भुनत्ति इति इन्द्रः'

अर्थ - जो परम ऐश्वर्य को भोगता है उसको इन्द्र कहते हैं। इन्द्र के चिह्न से जो युक्त है उसे इन्द्रिय कहते हैं।

इन्द्रिय संसारी आत्मा को पहचानने के लिए लिंग है, इसी से संसारी आत्मा की प्रतीति होती है। इस पद में इन्द्रियों के सम्बन्ध में सभी पहलुओं से विश्लेषण किया गया है। इसके दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक में प्रारम्भ में निरूपणीय २४ द्वारों का कथन किया गया है। द्वितीय उद्देशक में १२ द्वारों के माध्यम से इन्द्रियों की प्ररूपणा की गयी है।

यदि किसी विषय का विशेष लम्बा वर्णन होता है तो शास्त्रकार अलग-अलग विभाग करके कथन करते हैं। उस विभाग की शास्त्रीय भाषा में 'उद्देशक' कहते हैं। इस पन्द्रहवें पद में इन्द्रियों का कुछ विस्तृत वर्णन होने से इसके दो उद्देशक (विभाग) कहे गये हैं।

चौदहवें कषाय पद में बन्ध का प्रधान कारण होने से विशेष रूप से कषाय परिणाम का प्रतिपादन किया गया और इसके बाद इन्द्रिय वाले को ही लेश्यादि परिणाम का सद्भाव होता है। अतः विशेष रूप से इन्द्रिय परिणाम का निरूपण करने के लिए इस पद का प्रारम्भ किया जाता है। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

चौबीस द्वार

संठाणं बाहल्लं पोहत्तं (पुहुत्तं) कइपएस ओगाढे।
अप्पाबहु पुट्ठ पविट्ठ विसय अणगार आहारे॥ १॥
अद्दाय असी य मणी उडुपाणे * तेल्ल फाणिय वसा य।
कंबल थूणा थिग्गल दीवोदहि लोगालोगे य॥ २॥

---

* पाठान्तर - **कुण्ड पाणे** (अर्थ - कुण्ड में रहा हुआ पानी।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - १. संस्थान २. बाहल्य (जाडाई-स्थूलता), ३. पृथुत्व (विस्तार) ४. कति-प्रदेश (कितने प्रदेश वाला) ५. अवगाढ ६. अल्पबहुत्व ७. स्पृष्ट ८. प्रविष्ट ९. विषय १०. अनगार ११. आहार १२. आदर्श (दर्पण) १३. असि (तलवार), १४. मणि १५. गहरा पानी १६. तैल १७. फाणित (गीला गुड़) १८. वसा (चर्बी) १९. कम्बल २०. स्थूणा (स्तूप या ठूंठ) २१. थिग्गल (आकाश थिग्गल-पैबन्द) २२. द्वीप और उदधि २३. लोक और २४. अलोक। इन चौबीस द्वारों के माध्यम से इन्द्रिय-सम्बन्धी प्ररूपणा की जाएगी।

विवेचन - प्रस्तुत दो गाथाओं में इन्द्रिय पद के प्रथम उद्देशक में वर्णित २४ द्वारों का नामोल्लेख किया गया है।

इन्द्रिय-भेद

कइ णं भंते! इंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच इंदिया पण्णत्ता। तंजहा-सोइंदिए, चक्खिंदिए, घाणिंदिए, जिब्भिंदिए, फासिंदिए॥ ४२५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रियाँ कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रियाँ पांच कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - १. श्रोत्रेन्द्रिय २. चक्षुरिन्द्रिय ३. घ्राणेन्द्रिय ४. जिह्वेन्द्रिय और ५. स्पर्शनेन्द्रिय।

विवेचन - पांचों इन्द्रियों को दो विभागों में विभक्त किया गया है - १. द्रव्येन्द्रिय और २. भावेन्द्रिय। इसमें द्रव्येन्द्रिय के निर्वृत्ति और उपकरण ये दो भेद होते हैं और भावेन्द्रिय के लब्धि और उपयोग ये दो भेद होते हैं। यही बात उमास्वाति कृत तत्त्वार्थ सूत्र में कही गयी है यथा - "**निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्, लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्**" (अध्याय २ सूत्र १७-१८)

प्रत्येक इन्द्रिय के विशिष्ट और विभिन्न संस्थान विशेष (रचना विशेष) को निर्वृत्ति कहते हैं। वह निर्वृत्ति दो प्रकार की होती है - बाह्य निर्वृत्ति और आभ्यन्तर निर्वृत्ति। बाह्य निर्वृत्ति पपड़ी आदि जो विविध-विचित्र प्रकार की होती है अतः उसको प्रतिनियत रूप से नहीं कहा जा सकता। जैसे कि मनुष्य के कान दोनों नेत्रों के बगल में होते हैं उसकी भौहें कान के ऊपर के भाग की अपेक्षा सम रेखा में होती हैं किन्तु घोड़े के कान नेत्रों के ऊपर होते हैं और उनके अग्रभाग तीक्ष्ण होते हैं इत्यादि। जाति भेद से अनेक प्रकार की बाह्य निर्वृत्ति होती है किन्तु आभ्यन्तर निर्वृत्ति सभी प्राणियों के समान ही होती है। आभ्यंतर निर्वृत्ति की अपेक्षा ही संस्थान आदि की प्ररूपणा आगे के सूत्रों में की गई है। केवल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्शनेन्द्रिय निर्वृत्ति के बाह्य और आभ्यंतर भेद नहीं होते हैं। क्योंकि स्पर्शनेन्द्रिय निर्वृत्ति सब प्राणियों के एक सरीखी नहीं होती है।

१. संठाण द्वार

सोइंदिए णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! कलंबुया पुप्फ संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय किस आकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय कदम्ब (सरसों) पुष्प के आकार की कही गई है।

चक्खिदिए णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! मसूर चंद संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चक्षुरिन्द्रिय किस आकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चक्षुरिन्द्रिय मसूर (मसूर की दाल) चन्द्र के आकार की कही गई है।

घाणिंदिए णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! अइमुत्तग चंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! घ्राणेन्द्रिय का आकार किस प्रकार का कहा है?

उत्तर - हे गौतम! घ्राणेन्द्रिय अतिमुक्तक (ताल वृक्ष) का पुष्प के आकार की कही गयी है।

जिब्भिंदिए णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! खुरप्प संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिह्वेन्द्रिय किस आकार की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! जिह्वेन्द्रिय खुरपे (घांस काटने का एक औजार) के आकार की कही गयी है।

फासिंदिए णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! णाणा संठाणसंठिए पण्णत्ते १॥ ४२६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्पर्शनेन्द्रिय का आकार किस प्रकार का है?

उत्तर - हे गौतम! स्पर्शनेन्द्रिय नाना प्रकार के आकार की कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रथम संस्थान द्वार का निरूपण किया गया है। जिसमें पांचों इन्द्रियों के आकार का कथन किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. बाहल्य द्वार

सोइंदिए णं भंते! केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! अंगुलस्स असंखिज्जइभागं बाहल्लेणं पण्णत्ते। एवं जाव फासिंदिए २।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय का बाहल्य (जाडाई-मोटाई) कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय का बाहल्य अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण कहा गया है। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय से लेकर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय के बाहल्य के विषय में समझना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रियों के बाहल्य (जाडाई) का निरूपण किया गया है। सभी इन्द्रियों का बाहल्य अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण है। जैसा कि कहा गया है - "**बाहल्लओ य सव्वाइं अंगुल असंखभागं**" अर्थात् सभी इन्द्रियों का बाहल्य (जाडाई-मोटापन) अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण होता है।

शंका - यदि स्पर्शनेन्द्रिय की जाडाई अंगुल के असंख्यातवें भाग हो तो तलवार छुरी आदि का आघात लगने पर वेदना का अनुभव क्यों होता है?

समाधान - जैसे चक्षुरिन्द्रिय का विषय रूप है, घ्राणेन्द्रिय का विषय गंध है वैसे ही स्पर्शनेन्द्रिय का विषय शीत आदि स्पर्श है। जब तलवार, छुरी आदि का आघात लगता है तब शरीर में शीत आदि स्पर्श का अनुभव नहीं होता अपितु पीड़ा का अनुभव (वेदन) होता है और इस दुःख रूप वेदना को आत्मा सम्पूर्ण शरीर से अनुभव करती है केवल स्पर्शनेन्द्रिय से नहीं। जैसे ज्वर आदि की वेदना सम्पूर्ण शरीर से अनुभव की जाती है। शीतल पेय-ठण्डे शर्बत आदि पीने से शरीर के भीतर में शीतलता का अनुभव होता है इसका कारण यह है कि त्वचा सर्वप्रदेश पर्यन्तवर्ती होने से और शरीर के अन्दर तथा खाली जगह के ऊपर भी स्पर्शनेन्द्रिय का सद्भाव होने से शरीर के भीतर शीत आदि स्पर्शन का अनुभव होना युक्ति संगत है।

३. पृथुत्व द्वार

सोइंदिए णं भंते! केवइयं पोहत्तेणं (पुहुत्तेणं) पण्णत्ते?

गोयमा! अंगुलस्स असंखिज्जइभागं पोहत्तेणं पण्णत्ते। एवं चक्खिंदिए वि घाणिंदिए वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय कितनी पृथु=विशाल (विस्तार वाली) कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण विस्तार वाली कही गई है। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय की पृथुता-विशालता के विषय में समझना चाहिए।

जिब्भिंदिए णं भंते! केवइयं पोहत्तेणं पण्णत्ते ?

गोयमा! अंगुलपुहुत्तं पोहत्तेणं पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिह्वेन्द्रिय कितनी पृथु (विस्तृत) कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जिह्वेन्द्रिय अंगुल-पृथक्त्व दो अंगुल से अनेक अंगुल तक विशाल (विस्तृत) कही गयी है।

फासिंदिए णं भंते! केवइयं पोहत्तेणं पण्णत्ते?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ते पोहत्तेणं पण्णत्ते ३॥ ४२७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्पर्शनेन्द्रिय कितनी पृथु (विस्तृत) कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! स्पर्शनेन्द्रिय सम्पूर्ण शरीर प्रमाण पृथु (विशाल) कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रियों के विस्तार का कथन किया गया है। स्पर्शनेन्द्रिय के सिवाय शेष चार इन्द्रियों का विस्तार आत्मांगुल से और स्पर्शनेन्द्रिय का विस्तार उत्सेधांगुल से समझना चाहिये।

४. कति-प्रदेश द्वार

सोइंदिए णं भंते! कइपएसिए पण्णत्ते?

गोयमा! अणंत पएसिए पण्णत्ते। एवं जाव फासिंदिए ४॥ ४२८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय कितने प्रदेश वाली कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय अनन्त-प्रदेशी कही गई है। इसी प्रकार यावत् स्पर्शेन्द्रिय के प्रदेशों के सम्बन्ध में कह देना चाहिए।

५. अवगाढ़ द्वार

सोइंदिए णं भंते! कइपएसोगाढे पण्णत्ते?

गोयमा! असंखिज्जपएसोगाढे पण्णत्ते। एवं जाव फासिंदिए ५॥ ४२९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय कितने प्रदेशों में अवगाढ़ कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ कही गई है। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय से लेकर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय तक के विषय में कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. अल्प बहुत्व द्वार

एएसि णं भंते! सोइंदिय चक्खिंदिय घाणिंदिय जिब्भिंदिय फासिंदियाणं ओगाहणट्ठयाए पएसट्ठयाए ओगाहणपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवे चक्खिंदिए ओगाहणट्ठयाए, सोइंदिए ओगाहणट्ठयाए संखिज्जगुणे, घाणिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखिज्जगुणे, जिब्भिंदिए ओगाहणट्ठयाए असंखिज्जगुणे, फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखिज्जगुणे, पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवे चक्खिंदिए पएसट्ठयाए, सोइंदिए पएसट्ठयाए संखिज्जगुणे, घाणिंदिए पएसट्ठयाए संखिज्जगुणे, जिब्भिंदिए पएसट्ठयाए असंखिज्जगुणे, फासिंदिए पएसट्ठयाए संखिज्जगुणे, ओगाहणपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवे चक्खिंदिए ओगाहणट्ठयाए, सोइंदिए ओगाहणट्ठयाए संखिज्जगुणे, घाणिंदिय ओगाहणट्ठयाए संखिज्जगुणे जिब्भिंदिए ओगाहणट्ठयाए असंखिज्जगुणे फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखिज्जगुणे, फासिंदियस्स ओगाहणट्ठयाएहिंतो चक्खिंदिए पएसट्ठयाए अणंतगुणे, सोइंदिए पएसट्ठयाए संखिज्जगुणे, घाणिंदिए पएसट्ठयाए संखिज्जगुणे, जिब्भिंदिए पएसट्ठयाए असंखिज्जगुणे, फासिंदिए पएसट्ठयाए संखिज्जगुणे॥ ४३०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय में से अवगाहना की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! अवगाहना की अपेक्षा से सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय है, उससे श्रोत्रेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से संख्यातगुणी है, उससे घ्राणेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से संख्यातगुणी है, उससे जिह्वेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से असंख्यातगुणी है, उससे स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से संख्यातगुणी है। प्रदेशों की अपेक्षा से-सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय है, उससे श्रोत्रेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणी है, उससे घ्राणेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणी है, उससे जिह्वेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणी है, उससे स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणी है। अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा से-सबसे कम अवगाहना की अपेक्षा से चक्षुरिन्द्रिय है, उससे अवगाहना की अपेक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से श्रोत्रेन्द्रिय संख्यातगुणी है, उससे घ्राणेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से संख्यातगुणी है, उससे जिह्वेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से असंख्यातगुणी है, उससे स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से संख्यातगुणी है, स्पर्शनेन्द्रिय की अवगाहना की अपेक्षा से चक्षुरिन्द्रिय प्रदेश की अपेक्षा से अनन्तगुणी है, उससे श्रोत्रेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणी है, उससे घ्राणेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणी है, उससे जिह्वेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुणी है, उससे स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणी है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रियों के अवगाहना, प्रदेश और अवगाहना प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का कथन किया गया है- सबसे थोड़ी चक्षुइन्द्रिय की अवगाहना है अर्थात् चक्षु इन्द्रिय की अवगाहना सबसे थोड़े आकाश प्रदेशों की है उससे श्रोत्रेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा संख्यातगुणी है क्योंकि वह चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा अत्यधिक प्रदेशों में अवगाढ है। उससे घ्राणेन्द्रिय की अवगाहना संख्यातगुणी है क्योंकि वह और भी अधिक प्रदेशों में अवगाढ़ है। उससे जिह्वेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा असंख्यातगुणी अधिक है क्योंकि जिह्वेन्द्रिय का विस्तार अंगुल पृथक्त्व परिमाण है जबकि चक्षु आदि तीन इन्द्रियाँ प्रत्येक अंगुल के असंख्यातवें भाग विस्तार वाली है अतः असंख्यात गुणी है। उससे स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा संख्यात गुणी है। क्योंकि जिह्वेन्द्रिय का विस्तार अंगुल पृथक्त्व (दो अंगुल से नौ अंगुल तक) होता है जबकि स्पर्शनेन्द्रिय शरीर परिमाण है। शरीर अधिक से अधिक लाख योजन परिमाण होता है। अतः जिह्वेन्द्रिय से स्पर्शनेन्द्रिय असंख्यातगुणी अधिक नहीं होकर संख्यातगुणी अधिक कही गयी है जो युक्तियुक्त है। इसी क्रम से प्रदेशों की अपेक्षा से एवं अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिये।

सोइंदियस्स णं भंते! केवइया कक्खड गरुय गुणा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता कक्खड गरुय गुणा पण्णत्ता, एवं जाव फासिंदियस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश और गुरु गुण कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश और गुरु गुण अनन्त कहे गए हैं। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय से लेकर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय तक के कर्कश और गुरु गुण के विषय में कहना चाहिए।

सोइंदियस्स णं भंते! केवइया मउय लहुय गुणा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता मउय लहुय गुणा पण्णत्ता, एवं जाव फासिंदियस्स॥ ४३१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु और लघु गुण कितने कहे गए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु और लघु गुण अनन्त कहे गए हैं। इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय से लेकर स्पर्शनेन्द्रिय तक के मृदु लघु गुण के विषय में कहना चाहिए।

एएसिणं भंते! सोइंदिय चक्खिदिय घाणिंदिय जिब्भिदिय फासिंदियाणं कक्खड गरुय गुणाणं मउय लहुय गुणाणं कक्खड गरुय गुणाणं मउय लहुय गुणाणं च कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स कक्खड गरुय गुणा, सोइंदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंत गुणा, घाणिंदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंतगुणा, जिब्भिदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंतगुणा, फासिंदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंत गुणा। मउय लहुय गुणाणं-सव्वत्थोवा फासिंदियस्स मउय लहुय गुणा, जिब्भिंदियस्स मउय लहुय गुणा अणंत गुणा, घाणिंदियस्स मउय लहुय गुणा अणंत गुणा, सोइंदियस्स मउय लहुय गुणा अणंत गुणा, चक्खिंदियस्स मउय लहुय गुणा अणंत गुणा। कक्खड गरुय गुणाणं मउय लहुय गुणाणं च सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स कक्खड गरुय गुणा, सोइंदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंत गुणा, घाणिंदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंत-गुणा, जिब्भिदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंत गुणा, फासिंदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंत गुणा, फासिंदियस्स कक्खड गरुय गुणेहिंतो तस्स चेव मउय लहुय गुणा अणंत गुणा, जिब्भिदियस्स मउय लहुय गुणा अणंत गुणा, घाणिंदियस्स मउय लहुय गुणा अणंत गुणा, सोइंदियस्स मउय लहुय गुणा अणंत गुणा, चक्खिंदियस्स मउय लहुय गुणा अणंत गुणा ॥ ४३२ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुणों और मृदु लघु गुणों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण हैं, उनसे श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे घ्राणेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे जिह्वेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं और उनसे स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं। मृदु लघु गुणों में से - सबसे थोड़े स्पर्शनेन्द्रिय के मृदु लघु गुण हैं, उनसे जिह्वेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे घ्राणेन्द्रिय के मृदु लघु अनन्त गुणा हैं, उनसे श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे चक्षुरिन्द्रिय के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मृदु लघु गुण अनन्त गुणा हैं। कर्कश गुरु गुणों से मृदु लघु गुणों में से सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण हैं, उनसे श्रोत्रेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे घ्राणेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे जिह्वेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं। स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुणों से उसी के मृदु लघु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे जिह्वेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे घ्राणेन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्त गुणा हैं, उनसे श्रोत्रेन्द्रिय के मृदु लघु-गुण अनन्त गुणा हैं और उनसे भी चक्षुरिन्द्रिय के मृदु लघु गुण अनन्त गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रियों के कर्कश गुरु और मृदु लघु गुणों का अल्पबहुत्व कहा गया है। चक्षुइन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय, घाणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय अनुक्रम से कर्कश गुरु गुण में अनन्त अनन्त गुणा अधिक है। इन्हीं इन्द्रियों के मृदु लघु गुण पश्चानुपूर्वी से अनन्त अनन्त गुणा अधिक हैं। क्योंकि वे उत्तरोत्तर कर्कश रूप और पूर्व पूर्व अति कोमल रूप होती है। कर्कश गुरु गुणों और मृदु लघु गुणों की शामिल अल्पबहुत्व में स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुणों से उसी के मृदु लघु गुण अनन्त गुणा है क्योंकि शरीर के ऊपर रहे हुए कितने ही प्रदेश शीत उष्ण आदि के संपर्क से कर्कश होते हैं। इसके सिवाय अंदर रहे हुए अन्य बहुत से प्रदेश मृदु ही होते हैं अतः स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण की अपेक्षा मृदु लघु गुण अनन्त गुणा अधिक है।

चौबीस दण्डकों में संस्थान आदि की प्ररूपणा

णेरइयाणं भंते! कइ इंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच इंदिया पण्णत्ता, तंजहा - सोइंदिए जाव फासिंदिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितनी इन्द्रियाँ कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के पांच इन्द्रियाँ कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - श्रोत्रेन्द्रिय से लेकर स्पर्शनेन्द्रिय तक।

णेरइयाणं भंते! सोइंदिए किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! कलंबुया संठाणसंठिए पण्णत्ते। एवं जहेव ओहियाणं वत्तव्वया भणिया तहेव णेरइयाणं वि जाव अप्पाबहुयाणि दोण्णि वि। णवरं णेरइयाणं भंते! फासिंदिए किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - भवधारणिज्जे य उत्तरवेउव्विए य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से णं हुंड संठाणसंठिए पण्णत्ते, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से वि तहेव, सेसं तं चेव॥ ४३३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की श्रोत्रेन्द्रिय किस आकार की होती है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की श्रोत्रेन्द्रिय कदम्बपुष्प के आकार की होती है। इसी प्रकार जैसे समुच्चय जीवों की पंचेन्द्रियों की वक्तव्यता कही है, वैसी ही नैरयिकों की संस्थान, बाहल्य, पृथुत्व, कतिप्रदेश, अवगाढ और अल्पबंहुत्व, इन छह द्वारों की भी वक्तव्यता कहनी चाहिए। विशेष यह है कि नैरयिकों की स्पर्शनेन्द्रिय किस आकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की स्पर्शनेन्द्रिय दो प्रकार की कही गई है, यथा - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमें से जो भवधारणीय स्पर्शनेन्द्रिय है, वह हुण्डक संस्थान की है और जो उत्तर वैक्रिय स्पर्शनेन्द्रिय है, वह भी हुण्डक संस्थान की है। शेष सब प्ररूपणा पूर्ववत् समझनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों की इन्द्रियों के संस्थान, बाहल्य आदि की प्ररूपणा की गयी है। नैरयिकों के वैक्रिय शरीर दो प्रकार का होता है - १. भवधारणीय और २. उत्तर वैक्रिय। भवधारणीय शरीर उन्हें भव स्वभाव से मिलता है जो अत्यंत बीभत्स एवं हुण्डक संस्थान वाला होता है उनका उत्तरवैक्रिय शरीर भी हुण्डक संस्थान वाला ही होता है क्योंकि अशुभ नाम कर्म के उदय से वे चाहते हुए भी अच्छे शरीर की विक्रिया नहीं कर पाते हैं।

असुरकुमाराणं भंते! कइ इंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! पंचइंदिया पण्णत्ता, एवं जहा ओहियाणि जाव अप्पाबहुयाणि दोण्णि वि। णवरं फासिंदिए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - भवधारणिज्जे य उत्तरवेउव्विए य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से णं समचउरंस संठाणसंठिए पण्णत्ते, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से णं णाणा संठाणसंठिए, सेसं तं चेव। एवं जाव थणियकुमाराणं ॥ ४३४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमारों के कितनी इन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमारों के पांच इन्द्रियाँ कही गई हैं। इसी प्रकार जैसे समुच्चय-औधिक जीवों के इन्द्रियों के संस्थान से लेकर दोनों प्रकार के अल्पबहुत्व तक की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार असुरकुमारों की इन्द्रिय सम्बन्धी वक्तव्यता कह देनी चाहिए। विशेषता यह कि इनकी स्पर्शनेन्द्रिय दो प्रकार की कही है, यथा-भवधारणीय स्पर्शनेन्द्रिय समचतुरस्र संस्थान वाली है और उत्तरवैक्रिय स्पर्शनेन्द्रिय नाना संस्थान वाली होती है। इसी प्रकार की इन्द्रिय सम्बन्धी वक्तव्यता नागकुमार देवों से लेकर स्तनितकुमार देवों तक की समझ लेनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में असुरकुमार आदि भवनवासी देवों की इन्द्रियों के संस्थान आदि की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्ररूपणा की गयी है। इन देवों में भी दो प्रकार के शरीर (स्पर्शनेन्द्रिय) होते हैं - १. भवधारणीय और २. उत्तर वैक्रिय। भवधारणीय शरीर समचौरस संस्थान वाला होता है जो भव के प्रारम्भ से अंत तक रहता है। जबकि उत्तर वैक्रिय शरीर नाना संस्थान वाला होता है क्योंकि वे स्वेच्छा से मन चाहा उत्तर वैक्रिय शरीर बना सकते हैं।

पुढवीकाइयाणं भंते! कइ इंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! एगे फासिंदिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों के कितनी इन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के एक स्पर्शनेन्द्रिय ही कही गई हैं।

पुढवीकाइयाणं भंते! फासिंदिए किं संठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! मसूरचंदसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय किस आकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय मसूर-चन्द्र (मसूर नामक धान्य की दाल) के आकार की कही गई है।

पुढवीकाइयाणं भंते! फासिंदिए केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते?

गोयमा! अंगुलस्स असंखिज्जइभागं बाहल्लेणं पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय का बाहल्य (जाडाई मोटापन) कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय का बाहल्य अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण कहा गया है।

पुढवीकाइयाणं भंते! फासिंदिए केवइयं पोहत्तेणं (पुहुत्तेणं) पण्णत्ते?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ते पोहत्तेणं पण्णत्ते।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय का विस्तार कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय का विस्तार उनके शरीर परिमाण मात्र है।

पुढवीकाइयाणं भंते! फासिंदिए कइ पएसिए पण्णत्ते?

गोयमा! अणंत पएसिए पण्णत्ते।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय कितने प्रदेशों की कही गयी है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय अनन्त प्रदेशी कही गई है।

पुढवीकाइयाणं भंते! फासिंदिए कइ पएसोगाढे पण्णत्ते?

गोयमा! असंखिज्ज पएसोगाढे पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय कितने प्रदेशों में अवगाढ कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ कही गई है।

एएसि णं भंते! पुढवीकाइयाणं फासिंदियस्स ओगाहणट्ठयाए पएसट्ठयाए ओगाहण पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवे पुढवीकाइयाणं फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए, से चेव पएसट्ठयाए अणंतगुणे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय, अवगाहना की अपेक्षा और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा सबसे कम है, प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्त गुणी अधिक है।

पुढवीकाइयाणं भंते! फासिंदियस्स केवइया कक्खड गरुय गुणा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता एवं मउय लहुय गुणा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरु-गुण कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त कहे गये हैं। इसी प्रकार उसके मृदु-लघु गुणों के विषय में भी समझना चाहिए।

एएसि णं भंते! पुढवीकाइयाणं फासिंदियस्स कक्खड गरुय गुणाणं मउय लहुय गुणाणं च कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पुढवीकाइयाणं फासिंदियस्स कक्खड गरुय गुणा, तस्स चेव मउय लहुय गुणा अणंतगुणा। एवं आउकाइयाणं वि जाव वणप्फइकाइयाणं, णवरं संठाणे इमो विसेसे दट्ठव्वो-आउकाइयाणं थिंबुग बिंदु संठाणसंठिए पण्णत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेउकाइयाणं सूइ कलाव संठाणसंठिए पण्णत्ते। वाउकाइयाणं पडागा संठाणसंठिए पण्णत्ते। वणप्फइकाइयाणं णाणा संठाणसंठिए पण्णत्ते॥ ४३५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन पृथ्वीकायिक जीवों की स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश-गुरु गुणों और मृदु लघु गुणों में से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश और गुरु गुण सबसे कम हैं, उनकी अपेक्षा मृदु तथा लघु गुण अनन्त गुणा हैं। पृथ्वीकायिक जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय संस्थान के बाहल्य आदि की वक्तव्यता के समान अप्कायिकों से लेकर तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकों तक के स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी संस्थान, बाहल्य आदि की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए, किन्तु इनके संस्थान के विषय में यह विशेषता समझ लेनी चाहिए कि अप्कायिकों की स्पर्शनेन्द्रिय थिबुक (जल बिन्दु) के आकार की कही गई है, तेजस्कायिकों की स्पर्शनेन्द्रिय सूचीकलाप-सूइयों के ढेर-के आकार की कही गई है, वायुकायिकों की स्पर्शनेन्द्रिय पताका (ध्वजा) के आकार की कही गई है तथा वनस्पतिकायिकों की स्पर्शनेन्द्रिय का आकार नाना प्रकार का कहा गया है।

बेइंदियाणं भंते! कइ इंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! दो इंदिया पण्णत्ता। तंजहा - जिब्भिंदिए य फासिंदिए य। दोण्हं वि इंदियाणं संठाणं बाहल्लं पोहत्तं पएसा ओगाहणा य जहा ओहियाणं भणिया तहा भाणियव्वा, णवरं फासिंदिए हुंड संठाणसंठिए पण्णत्ते त्ति इमो विसेसो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों के कितनी इन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों के दो इन्द्रियाँ कही गई हैं, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। दोनों इन्द्रियों के संस्थान, बाहल्य, पृथुत्व, प्रदेश और अवगाहना के विषय में जैसे समुच्चय के संस्थानादि के विषय में कहा है, वैसा ही कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी स्पर्शनेन्द्रिय हुण्डक (बेडोल) संस्थान वाली होती है।

एएसि णं भंते! बेइंदियाणं जिब्भिंदिय फासिंदियाणं ओगाहणट्ठयाए पएसट्ठयाए ओगाहण पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवे बेइंदियाणं जिब्भिंदिए ओगाहणट्ठयाए, फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखिज्जगुणे। पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवे बेइंदियाणं जिब्भिंदिए पएसट्ठयाए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फासिंदिए पएसट्ठयाए संखिज्जगुणे। ओगाहण पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवे बेइंदियस्स जिब्भिदिए ओगाहणट्ठयाए, फासिंदिए ओगाहणट्ठयाए संखिज्जगुणे, फासिंदियस्स ओगाहणट्ठयाएहिंतो जिब्भिदिए पएसट्ठयाए अणंतगुणे, फासिंदिए पएसट्ठयाए संखिज्जगुणे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन बेइन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय में से अवगाहना की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा अवगाहना और प्रदेशों दोनों की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! अवगाहना की अपेक्षा से - बेइन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय सबसे कम है, उससे अवगाहना की दृष्टि से संख्यातगुणी उनकी स्पर्शनेन्द्रिय है। प्रदेशों की अपेक्षा से-सबसे कम बेइन्द्रिय की जिह्वेन्द्रिय है, उसकी अपेक्षा प्रदेशों की अपेक्षा से उनकी स्पर्शनेन्द्रिय है। अवगाहना और प्रदेशों की अपेक्षा से-बेइन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से सबसे कम है, उससे उनकी स्पर्शनेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से संख्यातगुणी अधिक है, स्पर्शनेन्द्रिय की अवगाहना की अपेक्षा से जिह्वेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्तगुणी है। उसकी अपेक्षा स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेशों की अपेक्षा से संख्यातगुणी है।

बेइंदियाणं भंते! जिब्भिदियस्स केवइया कक्खड गरुय गुणा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता। एवं फासिंदियस्स वि, एवं मउय लहुय गुणा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय के कितने कर्कश-गुरु गुण कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! इनकी जिह्वेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त हैं। इसी प्रकार इनकी स्पर्शनेन्द्रिय के भी कर्कश-गुरु गुण अनन्त समझने चाहिए। इसी तरह इनकी जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के मृदु-लघु गुण भी अनन्त समझने चाहिए।

एएसि णं भंते! बेइंदियाणं जिब्भिदिय फासिंदियाणं कक्खड गरुय गुणाणं, मउय लहुय गुणाणं, कक्खड गरुय गुणाणं, मउय लहुय गुणाणं च कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा बेइंदियाणं जिब्भिदियस्स कक्खड गरुय गुणा, फासिंदियस्स कक्खड गरुय गुणा अणंत गुणा, फासिंदियस्स कक्खड गरुय गुणेहिंतो तस्स चेव मउय लहुय गुणा अणंतगुणा, जिब्भिदियस्स मउय लहुय गुणा अणंतगुणा। एवं जाव चउरिंदियाणं, णवरं इंदियपरिवुड्ढी कायव्वा। तेइंदियाणं घाणिंदिए थोवे, चउरिंदियाणं चक्खिदिए थोवे, सेसं तं चेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन बेइन्द्रियों की जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुणों तथा मृदु लघु गुणों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े बेइन्द्रियों के जिह्वेन्द्रिय के कर्कश-गुरु गुण हैं, उनसे स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुण अनन्त गुणा हैं। स्पर्शनेन्द्रिय के कर्कश गुरु गुणों से मृदु लघु गुण अनन्त गुणा हैं और उससे भी जिह्वेन्द्रिय के मृदु-लघु गुण अनन्त गुणा हैं। इसी प्रकार बेइन्द्रियों, तेइन्द्रियों और चउरिन्द्रियों के संस्थान, बाहल्य, पृथुत्व, प्रदेश, अवगाहना और अल्प-बहुत्व के संस्थानादि के विषय में कहना चाहिए। विशेष यह है कि उत्तरोत्तर एक-एक इन्द्रिय की परिवृद्धि करनी चाहिए। तेइन्द्रिय जीवों की घ्राणेन्द्रिय थोड़ी होती है, इसी प्रकार चउरिन्द्रिय जीवों की चक्षुरिन्द्रिय थोड़ी होती है। शेष सब वक्तव्यता उसी तरह पूर्ववत् बेइन्द्रियों के समान ही समझनी चाहिए।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं मणुस्साणं च जहा णेरइयाणं, णवरं फासिंदिए छव्विह संठाणसंठिए पण्णत्ते। तंजहा - समचउरंसे, णिग्गोह परिमंडले, साई, वामणे, खुज्जे, हुंडे। वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं॥ ४३६॥

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों और मनुष्यों की इन्द्रियों की संस्थानादि सम्बन्धी वक्तव्यता नैरयिकों की इन्द्रिय-संस्थानादि सम्बन्धी वक्तव्यता के समान समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि उनकी स्पर्शनेन्द्रिय छह प्रकार के संस्थानों वाली होती है। वे छह संस्थान इस प्रकार हैं - १. समचतुरस्र २. न्यग्रोध परिमण्डल ३. सादि ४. वामन ५. कुब्जक और ६. हुण्डक। वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की इन्द्रिय-संस्थानादि सम्बन्धी वक्तव्यता असुरकुमारों की इन्द्रिय-संस्थानादि सम्बन्धी वक्तव्यता के समान कहनी चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य तथा वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की इन्द्रियों के संस्थान, बाहल्य पृथुत्व, प्रदेश अवगाहना एवं अल्पबहुत्व आदि की प्ररूपणा की गयी है।

७-८. स्पृष्ट-प्रविष्ट द्वार

पुट्ठाइं भंते! सद्दाइं सुणेइ, अपुट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ?

गोयमा! पुट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ, णो अपुट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्ट शब्दों को सुनती है या अस्पृष्ट शब्दों को सुनती है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्ट शब्दों को सुनती है, अस्पृष्ट शब्दों को नहीं सुनती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रश्न - स्पृष्ट और अस्पृष्ट शब्दों क्या आशय है?

उत्तर - 'स्पृश्यन्ते इति स्पृष्टाः' जो स्पर्श करे अर्थात् जो शरीर को छुए उसको स्पृष्ट कहते हैं। जैसे शरीर पर रेत लग जाती है उसी तरह इन्द्रिय के साथ विषय का स्पर्श हो तो वह स्पृष्ट कहलाता है। जिस इन्द्रिय का अपने विषय के साथ स्पर्श नहीं होता, वह अस्पृष्ट विषय कहलाता है। जैसे - श्रोत्रेन्द्रिय के साथ जिन शब्दों का स्पर्श हुआ हो, वे शब्द (विषय) स्पृष्ट कहलाते हैं किन्तु चक्षुरिन्द्रिय के साथ जिन रूपों का स्पर्श न हुआ हो, ऐसे रूप (विषय) अस्पृष्ट कहलाते हैं। प्रस्तुत सूत्र में बताया है कि श्रोत्रेन्द्रिय स्पृष्ट शब्दों को ही सुनती है। अस्पृष्ट को नहीं।

पुट्ठाइं भंते! रूवाइं पासइ, अपुट्ठाइं रूवाइं पासइ?

गोयमा! णो पुट्ठाइं रूवाइं पासइ, अपुट्ठाइं रूवाइं पासइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चक्षुरिन्द्रिय स्पृष्ट अर्थात् जिन रूपों का चक्षु (आँख) के साथ स्पर्श हुआ हो रूपों को देखती है, अथवा अस्पृष्ट रूपों को देखती है?

उत्तर - हे गौतम! चक्षुरिन्द्रिय अस्पृष्ट रूपों को देखती है, स्पृष्ट रूपों को नहीं देखती।

इसका आशय यह है कि आँख से दूर रहे हुए पदार्थों को ही आँख देखती है किन्तु आँख के साथ तिनका आदि स्पर्श कर जाय (आँख में कचरा आदि गिर जाय) तो उसको आँख नहीं देख पाती।

पुट्ठाइं भंते! गंधाइं अग्घाइ, अपुट्ठाइं गंधाइं अग्घाइ?

गोयमा! पुट्ठाइं गंधाइं अग्घाइ, णो अपुट्ठाइं गंधाइं अग्घाइ। एवं रसाणं वि फासाणं वि, णवरं रसाइं अस्साएइ, फासाइं पडिसंवेदेइ त्ति अभिलावो कायव्वो।

कठिन शब्दार्थ - अस्साएइ - आस्वादन करती है, **पडिसंवेदेइ** - अनुभव करती है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! घ्राणेन्द्रिय स्पृष्ट गन्धों को सूंघती है अथवा अस्पृष्ट गन्धों को सूंघती है?

उत्तर - हे गौतम! घ्राणेन्द्रिय स्पृष्ट गन्धों को सूंघती है, अस्पृष्ट गन्धों को नहीं सूंघती। इस प्रकार घ्राणेन्द्रिय की तरह जिह्वेन्द्रिय द्वारा रसों के और स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा स्पर्शों के ग्रहण करने के विषय में भी समझना चाहिए। विशेष यह है कि जिह्वेन्द्रिय रसों का आस्वादन करती (चखती) है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और स्पर्शनेन्द्रिय स्पर्शों का प्रतिसंवेदन (अनुभव) करती है, ऐसा अभिलाप शब्द प्रयोग करना चाहिए।

पविट्ठाइं भंते! सद्दाइं सुणेइ, अपविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ?

गोयमा! पविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ, णो अपविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ, एवं जहा पुट्ठाणि तहा पविट्ठाणि वि॥ ४३७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय प्रविष्ट शब्दों को सुनती है या अप्रविष्ट शब्दों को सुनती है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय प्रविष्ट शब्दों को सुनती है, अप्रविष्ट शब्दों को नहीं सुनती। इसी प्रकार जैसे स्पृष्ट के विषय में कहा, उसी प्रकार प्रविष्ट के विषय में भी कहना चाहिए।

विवेचन - शंका - स्पृष्ट और प्रविष्ट में क्या अंतर है?

समाधान - स्पृष्ट तो शरीर में रेत लगने की तरह होता है किन्तु प्रविष्ट मुख में कौर (कवल-ग्रास) जाने की तरह है। इसलिए इन दोनों के शब्दार्थ भिन्न होने से अलग कथन किया गया है। इन्द्रियों द्वारा अपने अपने उपकरण में प्रविष्ट विषयों को ग्रहण करना प्रविष्ट कहलाता है। जैसे श्रोत्रेन्द्रिय प्रविष्ट अर्थात् कर्ण कुहर में प्राप्त शब्दों को सुनती है, अप्रविष्ट शब्दों को नहीं। चक्षुरिन्द्रिय आँखों में अप्रविष्ट रूप को ग्रहण करती है। घ्राणेन्द्रिय रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय अपने अपने उपकरण में प्रविष्ट विषय को ग्रहण करती है।

९. विषय द्वार

सोइंदियस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागो, उक्कोसेणं बारसेहिं जोयणेहिंतो अच्छिण्णे पोग्गले पुट्ठे पविट्ठाइं सद्दाइं सुणेइ।

कठिन शब्दार्थ - अच्छिण्णे - अविच्छिन्न।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय जघन्य अंगुल के असंख्यात भाग दूर शब्दों को एवं उत्कृष्ट बारह (१२) योजन दूर से आए अविच्छिन्न (विच्छिन्न, विनष्ट या बिखरे हुए न हो ऐसे) शब्द वर्गणा के पुद्गल के स्पृष्ट होने पर प्रविष्ट शब्दों को सुनती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्खिंदियस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागो, उक्कोसेणं साइरेगाओ जोयण सयसहस्साओ। अच्छिण्णे पोग्गले अपुट्ठे अपविट्ठाइं रूवाइं पासइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चक्षुरिन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! चक्षुरिन्द्रिय जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग दूर स्थित रूपों को एवं उत्कृष्ट एक लाख योजन से कुछ अधिक दूर के अविच्छिन्न रूपवान् पुद्गलों के अस्पृष्ट एवं अप्रविष्ट रूपों को देखती है।

घाणिंदियस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुल असंखिज्जइभागो, उक्कोसेणं णवहिं जोयणेहिंतो अच्छिण्णे पोग्गले पुट्ठे पविट्ठाइं गंधाइं अग्घाइ, एवं जिब्भिंदियस्स वि फासिंदियस्स वि॥ ४३८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! घ्राणेन्द्रिय का विषय कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! घ्राणेन्द्रिय जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग दूर से आए गन्धों को और उत्कृष्ट नौ योजनों से आए अविच्छिन्न गन्ध पुद्गल के स्पृष्ट होने पर प्रविष्ट गन्धों को सूंघ लेती है। जैसे घ्राणेन्द्रिय के विषय-परिमाण का निरूपण किया है, वैसे ही जिह्वेन्द्रिय एवं स्पर्शनेन्द्रिय के विषय-परिणाम के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में क्रमशः पांचों इन्द्रियों द्वारा अपने अपने विषय को ग्रहण करने की जघन्य और उत्कृष्ट क्षमता बतायी गई है। जो इस प्रकार है - १. श्रोत्रेन्द्रिय जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट बारह योजन से प्राप्त, अव्यवहित (अन्तर रहित अर्थात् अन्य शब्द तथा वायु आदि से जिसकी सामर्थ्य नष्ट नहीं हुई हो) स्पृष्ट, प्रविष्ट (प्रवेश हुआ) शब्द सुनती है। २. चक्षुरिन्द्रिय जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक लाख योजन से प्राप्त, दीवाल आदि से अव्यवहित, अस्पृष्ट, अप्रविष्ट रूप देखती है। ३. घ्राणेन्द्रिय जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट नौ योजन से प्राप्त अव्यवहित, स्पृष्ट, प्रविष्ट पुद्गलों को सूंघती है। रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय का विषय घ्राणेन्द्रिय की तरह कह देना चाहिये।

चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय एक लाख योजन का बताया है, वह अप्रकाशित द्रव्यों को देखने की अपेक्षा समझना चाहिये। प्रकाशमान् द्रव्यों को तो इससे कई गुणा दूर से भी देखा जा सकता है। पांचों इन्द्रियों का विषय आत्मांगुल से समझना चाहिये तथा पांचों इन्द्रियों का विस्तार (पृथुत्व) भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मांगुल से ही समझना चाहिये। श्रोत्रेन्द्रिय का विषय १२ योजन बताया है। सीधे (समश्रेणी में रहे हुए) शब्द तो १२ योजन से मिश्रित (वासित) सुने जाते हैं। यदि ध्वनि विस्तारक यंत्र आदि के द्वारा शब्दों को आवर्तित करके आगे प्रसारित किया जाता है तब तो आगे तक भी सुना जा सकता है।

परन्तु शब्द के पुद्‌गलों में गंध द्रव्यों की तरह स्वतंत्र वासित करने की शक्ति नहीं है। इसी तरह रस व स्पर्श के पुद्‌गलों में भी आगे वासित का गुण नहीं है। नौ योजन से आये पुद्‌गलों तक को जिह्वा से स्पर्श होने पर रसनेन्द्रिय ग्रहण कर लेती है। नौ योजन से अच्छिन्न गंध पुद्‌गल स्पृष्ट, प्रविष्ट होते ही घ्राणेन्द्रिय ग्रहण कर लेती है तथा उसमें वासित करने का गुण होने से प्रचुर गंध द्रव्य आगे भी पुद्‌गलों को वासित कर देने से नौ योजन से आगे यावत् ४००-५०० योजन की दूरी से भी ग्रहण कर लेती है जैसे चन्दन के वृक्षों की गंध से दूसरे वृक्षों में भी वैसी गंध आने लगती है।

एकेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ४०० धनुष, बेइन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ८०० धनुष, तेइन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय १६०० धनुष, चउरिन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ३२०० धनुष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ६४०० धनुष और संज्ञी पंचेन्द्रिय के स्पर्शनेन्द्रिय का विषय नौ योजन है। बेइन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय ६४ धनुष, तेइन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय १२८ धनुष, चउरिन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय २५६ धनुष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय ५१२ धनुष और संज्ञी पंचेन्द्रिय के रसनेन्द्रिय का विषय नौ योजन है। तेइन्द्रिय के घ्राणेन्द्रिय का विषय १०० धनुष, चउरिन्द्रिय के घ्राणेन्द्रिय का विषय २०० धनुष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के घ्राणेन्द्रिय का विषय ४०० धनुष और संज्ञी पंचेन्द्रिय के घ्राणेन्द्रिय का विषय नौ योजन है। चउरिन्द्रिय के चक्षु इन्द्रिय का विषय २९५४ धनुष, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के चक्षु इन्द्रिय का विषय ५९०८ धनुष और संज्ञी पंचेन्द्रिय के चक्षु इन्द्रिय का विषय एक लाख योजन झाझेरा (अधिक) है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय के श्रोत्रेन्द्रिय का विषय ८०० धनुष 卐 और संज्ञी पंचेन्द्रिय के श्रोत्रेन्द्रिय का विषय बारह योजन है। एकेन्द्रिय आदि के इन्द्रियों का विषय जो ऊपर बताया है वह मूल पाठ और टीका में नहीं है। शायद हस्त लिखित टब्बों में हो सकता है। उसके आधार से थोकड़े में बताया है।

१०. अनगार द्वार

अणगारस्स णं भंते! भावियप्पणो मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स जे चरमा णिज्जरा पोग्गला, सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो!, सव्वं लोगं वि य णं ते ओगाहित्ता णं चिट्ठंति?

卐 कोई ८००० धनुष भी कहते हैं। तत्त्व केवली गम्य है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हंता गोयमा! अणगारस्स भावियप्पणो मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स जे चरमा णिज्जरा पोग्गला, सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो!, सव्वं लोगं वि य णं ओगाहित्ता णं चिट्ठंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो चरम निर्जरा पुद्गल हैं, क्या वे पुद्गल सूक्ष्म कहे गए हैं? हे आयुष्मन् श्रमण! क्या वे सर्वलोक को अवगाहन करके रहते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत भावितात्मा अनगार के जो चरम निर्जरा-पुद्गल हैं, वे सूक्ष्म कहे गए हैं, हे आयुष्मन् श्रमण! वे समग्र लोक को अवगाहन करके रहते हैं।

विवेचन - प्रश्न - भावितात्मा अनगार किसे कहते हैं?

उत्तर - जिसके द्रव्य और भाव से कोई अगार-गृह (घर) नहीं है, वह 'अनगार' कहलाता है। जिसने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप से अपनी आत्मा को भावित की है वह अनगार 'भावितात्मा अनगार' कहलाता है।

प्रश्न - चरम निर्जरा पुद्गल किसे कहते हैं?

उत्तर - चरम अर्थात् शैलेशी अवस्था के अन्तिम समय में होने वाले जो निर्जरा-पुद्गल होते हैं अर्थात् कर्म रूपी परिणमन से मुक्त कर्म पर्याय से रहित जो पुद्गल (परमाणु) होते हैं वे चरम निर्जरा पुद्गल कहलाते हैं।

प्रश्न - यहाँ पर मारणान्तिक समुद्घात कैसे समझना चाहिये?

उत्तर - यद्यपि शैलेशी अनगार के (१४ गुणस्थान वाला) मारणांतिक समुद्घात नहीं होती है। तथापि यहाँ जो मारणातिक समुद्घात कहा है वह मात्र मरण के अर्थ में ही समझना चाहिये जो कि आगे के ३६ वें पद से स्पष्ट हो जाता है। भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ६-७ में स्नातक, निर्ग्रन्थ व यथाख्यात चारित्र में मारणांतिक समुद्घात का निषेध किया गया है।

छउमत्थे णं भंते! मणुस्से तेसिं णिज्जरा पोग्गलाणं किं आणत्तं वा णाणत्तं वा ओमत्तं वा तुच्छत्तं वा गरुयत्तं वा लहुयत्तं वा जाणइ पासइ?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

कठिन शब्दार्थ - आणत्तं - अन्यत्व, **ओमत्तं** - अवमत्व (हीनत्व)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या छद्मस्थ मनुष्य उन चरम निर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व या नानात्व, हीनत्व (अवमत्व) अथवा तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को जानता देखता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् नहीं देखता है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-"छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं णिज्जरा पोग्गलाणं णो किंचि आणत्तं वा णाणत्तं वा ओमत्तं वा तुच्छत्तं वा गरुयत्तं वा लहुयत्तं वा जाणइ पासइ?"

गोयमा! देवे वि य णं अत्थेगइए जे णं तेसिं णिज्जरा पोग्गलाणं णो किंचि आणत्तं वा णाणत्तं वा ओमत्तं वा तुच्छत्तं वा गरुयत्तं वा लहुयत्तं वा जाणइ पासइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं णिज्जरा पोग्गलाणं णो किंचि आणत्तं वा जाव जाणइ पासइ, एवं सुहुमा णं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो!, सव्वलोगं वि य णं ते ओगाहित्ता णं चिट्ठंति॥ ४३९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि छद्मस्थ मनुष्य उन भावितात्मा अनगार के चरमनिर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व अथवा लघुत्व को नहीं जानता देखता है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य तो क्या कोई-कोई विशिष्ट देव भी उन निर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को किंचित् भी नहीं जानता-देखता है। हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व, नानात्व, हीनत्व, तुच्छत्व, गुरुत्व या लघुत्व को नहीं जानता है और न ही देख पाता है, क्योंकि हे आयुष्मन् श्रमण! वे चरम निर्जरा पुद्गल सूक्ष्म हैं। वे सम्पूर्ण लोक को अवगाहन करके रहते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में छद्मस्थ मनुष्य द्वारा चरम निर्जरा पुद्गलों को जानने देखने की असमर्थता प्रकट की गई है।

छद्मस्थ मनुष्य (विशिष्ट अवधिज्ञान एवं केवलज्ञान से रहित) चरम निर्जरा पुद्गलों के **अन्यत्व** अर्थात् ये निर्जरा पुद्गल अमुक श्रमण के हैं, ये अमुक श्रमण के हैं इस प्रकार के भिन्नत्व को तथा **नानात्व**-एक पुद्गल गत वर्णादि के नाना भेदों को तथा उनके **हीनत्व तुच्छत्व** (निःसारत्व) **गुरुत्व** (भारीपन) एवं **लघुत्व** (हल्केपन) को जान नहीं सकता है देख नहीं सकता है। इसके मुख्य दो कारण बताये गये हैं - १. वे पुद्गल इतने सूक्ष्म हैं कि चक्षु आदि इन्द्रियों के विषय से रहित एवं अतीत हैं। २. वे अत्यंत सूक्ष्म परमाणु रूप पुद्गल सम्पूर्ण लोक में अवगाहन करके रहे हुए हैं, वे बादर रूप नहीं हैं, इसलिए इन्द्रियाँ उन्हें ग्रहण नहीं कर सकती है। मनुष्यों की अपेक्षा देवों की इन्द्रियाँ विषय ग्रहण करने में अधिक पटु (चतुर) होती है किन्तु अवधिज्ञान से रहित देव भी जब उन भावितात्मा अनगारों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के चरम निर्जरा पुद्गलों के अन्यत्व आदि को जान-देख नहीं पाता तो मनुष्य की तो बात ही दूर रही अर्थात् छद्मस्थ मनुष्य उन चरम निर्जरा पुद्गलों को जानने-देखने में असमर्थ रहता है।

११. आहार द्वार

णेरइया णं भंते! ते णिज्जरा पोग्गले किं जाणंति पासंति आहारेंति, उदाहु णं जाणंति ण पासंति आहारेंति?

गोयमा! णेरइया णं ते णिज्जरा पोग्गले ण जाणंति ण पासंति आहारेंति, एवं जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं॥ ४४०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक उन चरम निर्जरा पुद्गलों को जानते-देखते हुए उनका आहार ग्रहण करते हैं अथवा उन्हें नहीं जानते-देखते और नहीं आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक उन निर्जरा पुद्गलों को जानते नहीं, देखते नहीं किन्तु आहार ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंचों तक के विषय में कह देना चाहिए।

मणुस्सा णं भंते! ते णिज्जरा पोग्गले किं जाणंति पासंति आहारेंति, उदाहु ण जाणंति ण पासंति ण आहारेंति?

गोयमा ! अत्थेगइया जाणंति पासंति आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति आहारेंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या मनुष्य उन निर्जरा पुद्गलों को जानते हैं, देखते हैं और उनका आहार करते हैं? अथवा उन्हें नहीं जानते, नहीं देखते और नहीं आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! कोई-कोई मनुष्य उनको जानते हैं और देखते हैं और उनका आहार करते हैं और कोई-कोई मनुष्य जानते नहीं, देखते नहीं किन्तु उनका आहार करते हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'अत्थेगइया जाणंति, पासंति, आहारेंति, अत्थेगइया ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति?'

गोयमा! मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सण्णिभूया य असण्णिभूया य। तत्थ णं जे ते असण्णिभूया ते णं ण जाणंति ण पासंति आहारेंति। तत्थ णं जे ते सण्णिभूया ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - उवउत्ता य अणुवउत्ता य। तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति। तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाणंति, पासंति, आहारेंति, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'अत्थेगइया ण जाणंति ण पासंति, आहारेंति, अत्थेगइया जाणंति, पासंति, आहारेंति।'

वाणमंतर जोइसिया जहा णेरइया॥ ४४१॥

कठिन शब्दार्थ - **सण्णिभूया** - संज्ञीभूत, **उवउत्ता** - उपयुक्त (उपयोग वाले), **अणवउत्ता** - अनुपयुक्त - उपयोग रहित।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि कोई-कोई मनुष्य उनको जानते हैं देखते हैं और उनका आहार करते हैं और कोई-कोई मनुष्य नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं यथा - संज्ञीभूत (विशिष्ट अवधिज्ञानी) और असंज्ञीभूत (विशिष्ट अवधिज्ञान से रहित) उनमें से जो असंज्ञीभूत हैं, वे उन चरम निर्जरा पुद्गलों को नहीं जानते, नहीं देखते, आहार करते हैं। उनमें से जो संज्ञीभूत हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं - उपयोग से युक्त और अनुपयुक्त-उपयोग से रहित। उनमें से जो उपयोग रहित हैं, वे नहीं जानते है, नहीं देखते है, किन्तु आहार करते हैं। उनमें से जो उपयोग से युक्त हैं, वे जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कोई-कोई मनुष्य नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं और कोई-कोई मनुष्य जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं।

वाणव्यंतर और ज्योतिष्क देवों से सम्बन्धित वक्तव्यता नैरयिकों की वक्तव्यता के समान जानना चाहिए।

विवेचन - यहाँ संज्ञीभूत का अर्थ है वे अवधिज्ञानी मनुष्य जिनका अवधिज्ञान कार्मण पुद्गलों को जान सकता है। जो मनुष्य इस प्रकार के अवधिज्ञान से रहित हों, वे असंज्ञीभूत कहलाते हैं। संज्ञीभूत मनुष्यों में भी जो उपयोग लगाये हुए होते हैं वे ही उन पुद्गलों को जानते हुए और देखते हुए उनका आहार करते हैं शेष असंज्ञीभूत तथा उपयोग रहित संज्ञीभूत मनुष्य उन पुद्गलों को जान नहीं पाते और नहीं देख पाते हैं, केवल उनका आहार करते हैं।

वेमाणिया णं भंते! ते णिज्जरा पोग्गले किं जाणंति पासंति आहारेंति?

गोयमा ! जहा मणुस्सा। णवरं वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - माई मिच्छदिट्ठी उववण्णगा य अमाई सम्मदिट्ठी उववण्णगा य। तत्थ णं जे ते माई मिच्छदिट्ठी उववण्णगा ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति, तत्थ णं जे ते अमाई सम्मदिट्ठी उववण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - अणंतरोववण्णगा य परंपरोववण्णगा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

य। तत्थ णं जे ते अणंतरोववण्णगा ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति। तत्थ णं जे ते परंपरोववण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति। तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - उवउत्ता य अणुवउत्ता य। तत्थ णं जे ते अणुवउत्ता ते णं ण जाणंति, ण पासंति, आहारेंति, तत्थ णं जे ते उवउत्ता ते णं जाणंति पासंति आहारेंति, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'अत्थेगइया जाणंति जाव अत्थेगइया आहारेंति॥ ४४२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या वैमानिक देव उन निर्जरा पुद्‌गलों को जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं ?

उत्तर - हे गौतम! जैसे मनुष्यों से सम्बन्धित वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार वैमानिकों की वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेष यह है कि वैमानिक दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार है- मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यगदृष्टि-उपपन्नक। उनमें से जो मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक होते हैं, वे उन्हें नहीं जानते, नहीं देखते किन्तु आहार करते हैं। उनमें से जो अमायी-सम्यगृदृष्टि-उपपन्नक हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं-अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। उनमें से जो अनन्तरोपपन्नक—अनन्तर-उत्पन्न हैं, वे नहीं जानते है और नहीं देखते हैं, किन्तु आहार करते हैं। उनमें से जो परम्परोपपन्नक हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा - पर्याप्तक और अपर्याप्तक। उनमें से जो अपर्याप्तक हैं, वे नहीं जानते हैं और नहीं देखते हैं, किन्तु आहार करते हैं। उनमें जो पर्याप्तक हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं- उपयोगयुक्त और उपयोग रहित। जो उपयोग रहित हैं, वे नहीं जानते हैं और नहीं देखते हैं किन्तु आहार करते हैं। उनमें से जो उपयोग युक्त हैं, वे जानते हैं, देखते हैं और आहार करते हैं। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कोई-कोई नहीं जानते हैं यावत् कोई-कोई आहार करते हैं।

विवेचन - जो मायी (सकषायी) होने के साथ साथ मिथ्यादृष्टि हों, वे मायी मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं। जो वैमानिक देव मायी मिथ्यादृष्टि रूप में उत्पन्न हुए हैं वे मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक कहलाते हैं। इनसे विपरीत जो हों वे अमायी सम्यग् दृष्टि उपपन्नक कहलाते हैं। आगमानुसार मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक नौवें ग्रैवेयक तक के देवों में पाये जा सकते हैं। यद्यपि ग्रैवेयकों और उनके पहले के देवलोकों में सम्यगदृष्टि देव होते हैं किन्तु उनका अवधिज्ञान इतना विशेष नहीं होता है कि वे उन निर्जरा पुद्‌गलों को जान देख सके इसलिए उन्हें भी मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नकों के अन्तर्गत ही समझा जाता है। जो अमायी सम्यगदृष्टि उपपन्नक हैं वे अनुत्तर विमानवासी देव हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिनकों उत्पन्न हुए पहला ही समय हुआ है वे अनन्तरोपपन्नक देव कहलाते हैं और जिन्हें उत्पन्न हुए एक समय से अधिक हो चुका है उन्हें परम्परोपपन्नक कहते हैं। जो परम्परोपपन्नक देव पर्याप्तक और उपयोग युक्त होते हैं वे ही निर्जरा पुद्गलों को जान सकते हैं और देख सकते हैं।

टीका में उपर्युक्त प्रकार से अर्थ किया है परन्तु धारणा से प्रथम देवलोक से लगाकर नवग्रैवेयक तक के सम्यग्दृष्टि देव (एक सागरोपम से अधिक स्थिति वाले वैमानिक देव) चरम निर्जरा के पुद्गलों को जान सकते हैं। मात्र अनुत्तर विमान के देव ही जानते और देखते हों, यह आवश्यक नहीं है। लोक के बहुत संख्याता भागों जितना क्षेत्र व पल्योपम के बहुत संख्याता भागों जितना काल भूत और भविष्य का जानने वाला अवधिज्ञानी ही कर्म द्रव्यों को जान सकता है। ऐसा विशेषावश्यक भाष्य में सिद्धान्तवादी आचार्य श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण के द्वारा बताया गया है जो कि आगम से उचित ही है।

यहाँ **'आहार'** से आशय **'लोमाहार'** समझना चाहिये।

१२-१९. आदर्श आदि द्वार

अद्दायं भंते! पेहमाणे मणुस्से किं अद्दायं पेहइ, अत्ताणं पेहइ, पलिभागं पेहइ?

गोयमा! अद्दायं पेहइ, णो अत्ताणं पेहइ, पलिभागं पेहइ। एवं एएणं अभिलावेणं असिं मणिं, दुद्धं, पाणं, तेल्लं, फाणियं, वसं॥ ४४३॥

कठिन शब्दार्थ - अद्दायं - आदर्श (दर्पण काँच), **पेहमाणे** - देखता हुआ, **अत्ताणं** - अपने आपको, **पलिभागं** - प्रतिबिम्ब को।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दर्पण देखता हुआ मनुष्य क्या दर्पण को देखता है? अपने आपको (शरीर) को देखता है? अथवा अपने प्रतिबिम्ब को देखता है?

उत्तर - हे गौतम! वह दर्पण को देखता है, अपने शरीर को नहीं देखता, किन्तु अपने शरीर का प्रतिबिम्ब देखता है। इसी प्रकार दर्पण के सम्बन्ध में जो कथन किया गया है उसी अभिलाप (कथन) के अनुसार क्रमशः असि (तलवार), मणि (एक प्रकार का जवाहिर रत्न), दुग्ध (दूध), पानी, तेल, फाणित (गुड़राब-गीला गुड़) और वसा (चर्बी) के विषय में अभिलाप (कथन) करना चाहिए।

विवेचन - दर्पण (कांच) आदि में खुद के शरीर का प्रतिबिम्ब देखता है वह प्रतिछाया रूप है। जब मनुष्य के छाया के पुद्गल दर्पण आदि में संक्रमित होते हैं तब वे स्वयं के शरीर के वर्ण और आकार रूप में परिणत होते हैं वे पुद्गल ही प्रतिबिम्ब शब्द से कहे जाते हैं। किन्ही-किन्ही प्रतियों में- **'नो अद्धायं पेहइ'** ऐसा पाठ भी मिलता है वह भी अपेक्षा से ठीक ही है। जिसका स्पष्टीकरण श्री

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महावीर जैन विद्यालय बम्बई से प्रकाशित 'पन्नवणा सुत्तं' के प्रथम भाग के पृष्ठ २३७ -२३८ में नीचे टिप्पणी में किया गया है। जिज्ञासुओं के लिए वह द्रष्टव्य है।

२०. कंबल द्वार

कंबलसाडए णं भंते! आवेढिय परिवेढिए समाणे जावइयं उवासंतरं फुसित्ता णं चिट्ठइ विरल्लिए वि समाणे तावइयं चेव उवासंतरं फुसित्ता णं चिट्ठइ?

हंता गोयमा! कंबलसाडए णं आवेढिय परिवेढिए समाणे जावइयं तं चेव।

कठिन शब्दार्थ - कंबलसाडए - कम्बल शाटक, **आवेढिय परिवेढिए** - आवेष्टित-परिवेष्टित, **उवासंतरं** - अवकाशान्तर को।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कम्बल रूप शाटक (चादर या साड़ी) आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ (लपेटा हुआ, खूब लपेटा हुआ) जितने अवकाशान्तर (आकाशप्रदेशों) को स्पर्श किये हुए रहता है, क्या वह फैलाया हुआ भी उतने ही अवकाशान्तर (आकाश-प्रदेशों) को स्पर्श करके रहता है?

उत्तर - हाँ गौतम! कम्बल शाटक आवेष्टित-परिवेष्टित किया हुआ जितने अवकाशान्तर (आकाश प्रदेशों) को स्पर्श करके रहता है, फैलाये जाने पर भी वह उतने ही अवकाशान्तर को स्पर्श करके रहता है।

२१. स्थूणा द्वार

थूणा णं भंते! उड्ढं ऊसिया समाणी जावइयं खेत्तं ओगाहित्ता णं चिट्ठइ, तिरियं वि य णं आयया समाणी तावइयं चेव खेत्तं ओगाहित्ता णं चिट्ठइ?

हंता गोयमा! थूणा णं उड्ढं ऊसिया तं चेव जाव चिट्ठइ॥ ४४४॥

कठिन शब्दार्थ - थूणा - स्थूणा-स्तंभ (ठूंठ, बल्ली या खंभा), **ऊसिया समाणी** - ऊपर उठी हुई।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्थूणा (स्तंभ) ऊपर उठी हुई जितने क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है, क्या तिरछी लम्बी की हुई भी वह उतने ही क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है?

उत्तर - हाँ गौतम! स्थूणा ऊपर उठी हुई जितने क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है, तिरछी लम्बी की हुई भी वह उतने ही क्षेत्र को अवगाहन करके रहती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२२. आकाश थिग्गल द्वार

आगास थिग्गले णं भंते! किंणा फुडे ? कइहिं वा काएहिं फुडे? किं धम्मत्थिकाएणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे? एवं अधम्मत्थिकाएणं, आगासत्थिकाएणं एएणं भेएणं जाव पुढवीकाइएणं फुडे जाव तसकाएणं, अद्धासमएणं फुडे?

गोयमा! धम्मत्थिकाएणं फुडे, णो धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे, एवं अधम्मत्थिकाएण वि, णो आगासत्थिकाएणं फुडे, आगासत्थि-कायस्स देसेणं फुडे, आगासत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे जाव वणस्सइकाएणं फुडे, तसकाएणं सिय फुडे, सिय णो फुडे। अद्धासमएणं देसे फुडे, देसे णो फुडे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आकाश-थिग्गल आकाशास्तिकाय का एक विभाग अर्थात् लोक किससे स्पृष्ट है?, कितने कायों से स्पृष्ट है? क्या वह धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है, या धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है, अथवा धर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है? इसी प्रकार क्या वह अधर्मास्तिकाय से तथा अधर्मास्तिकाय के देश से या प्रदेशों से स्पृष्ट है? अथवा वह आकाशास्तिकाय से या उसके देश से या प्रदेशों से स्पृष्ट है? इन्हीं भेदों के अनुसार क्या वह पुद्गलास्तिकाय से, जीवास्तिकाय से तथा पृथ्वीकाय आदि से लेकर यावत् वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय से स्पृष्ट है? अथवा क्या वह अद्धासमय से स्पृष्ट है?

उत्तर - हे गौतम! वह आकाशथिग्गल (लोक) धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है, धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट नहीं है, धर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय से भी स्पृष्ट है, अधर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट नहीं है, अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है। आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है, आकाशास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है तथा आकाशास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है तथा पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय एवं पृथ्वीकाय आदि से लेकर यावत् वनस्पतिकाय से स्पृष्ट है, त्रसकाय से कथंचित् स्पृष्ट है और कथंचित् स्पृष्ट नहीं है, अद्धा-समय (काल द्रव्य) से देश से स्पृष्ट है तथा देश से स्पृष्ट नहीं है।

विवेचन - शंका - लोक को 'आकाश थिग्गल' कहने का क्या कारण है?

समाधान - सम्पूर्ण आकाश एक विस्तृत पट (कपड़ा) के समान है। उस विस्तृत पट के बीच में लोक एक थिग्गल (पैबन्द-कपड़े के टुकड़े की कारी) की तरह प्रतीत होता है। अतः लोक को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकाश थिग्गल कहा है। आकाश थिग्गल (लोक) किस-किस से स्पृष्ट है? इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं कि - लोक सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है, क्योंकि धर्मास्तिकाय पूरा का पूरा लोक में ही अवगाढ़ है, अतएव वह धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट नहीं है, क्योंकि जो जिसमें पूरी तरह व्याप्त है, उसे उसके एक देश में व्याप्त नहीं कहा जा सकता किन्तु लोक धर्मास्तिकाय के प्रदेशों से व्याप्त तो है ही, क्योंकि धर्मास्तिकाय के सभी प्रदेश लोक में ही अवगाढ़ हैं। यही बात अधर्मास्तिकाय के विषय में भी समझनी चाहिए, किन्तु लोक सम्पूर्ण आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है, क्योंकि लोक सम्पूर्ण आकाशास्तिकाय का एक छोटा-सा खण्डमात्र ही है, किन्तु वह आकाशास्तिकाय के देश से और प्रदेशों से स्पृष्ट है, यावत् पुद्गलास्तिकाय से, जीवास्तिकाय से तथा पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक सभी कायों से स्पृष्ट है। सूक्ष्म पृथ्वीकाय आदि समग्र लोक में व्याप्त हैं। अतएव उनके द्वारा भी वह पूर्ण रूप से स्पृष्ट है, किन्तु त्रसकाय से कथंचित् स्पृष्ट होता है, कथंचित् स्पृष्ट नहीं भी होता है। जब केवली भगवान् समुद्घात करते हैं, तब चौथे समय में वे अपने आत्म प्रदेशों से समग्र लोक को व्याप्त कर लेते हैं। केवली भगवान् त्रसकाय के ही अन्तर्गत हैं, अतएव उस समय समस्त लोक त्रसकाय से स्पृष्ट होता है। इसके अतिरिक्त अन्य समय में सम्पूर्ण लोक त्रसकाय से स्पृष्ट नहीं होता। क्योंकि त्रसजीव सिर्फ त्रसनाडी में ही पाए जाते हैं। जो सिर्फ एक राजू चौड़ी और चौदह राजू ऊँची है। अद्धा-समय से लोक का कोई भाग स्पृष्ट होता है और कोई भाग स्पृष्ट नहीं होता। अद्धा-काल अढ़ाई द्वीप में ही है, आगे नहीं है।

'आकाशास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है' इसका आशय - यहाँ आत्म-भाव से स्पृष्ट बताया है आधार का उसी में स्पर्श मान लिया है। स्वयं का स्वयं में होना आत्म-भाव कहा गया है। अनुयोग द्वार सूत्र में सब वस्तुओं को आत्म भाव में समावेश होना माना है। वैसे ही यहाँ पर भी समझना चाहिये अन्य स्थानों पर - आकाश आधार होने से उसको आधेय रूप नहीं मान कर उसका उसमें समावेश होना नहीं बताया है। अपेक्षा से दोनों प्रकार का कथन उचित ही है।

२३. द्वीप और उदधि द्वार

जंबूदीवे णं भंते! दीवे किंणा फुडे? कइहिं वा काएहिं फुडे? किं धम्मत्थिकाएणं जाव आगासत्थिकाएणं फुडे?

गोयमा! णो धम्मत्थिकाएणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स देसेणं फुडे, धम्मत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे, एवं अधम्मत्थिकायस्स वि, आगासत्थिकायस्स वि, पुढवीकाएणं फुडे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाव वणस्सइकाएणं फुडे, तसकाएणं सिय फुडे, सिय णो फुडे, अद्धासमएणं फुडे। एवं लवण समुद्दे, धायईसंडे दीवे, कालोए समुद्दे, अब्भिंतर पुक्खरद्धे। बाहिर पुक्खरद्धे एवं चेव, णवरं अद्धासमएणं णो फुडे। एवं जाव सयंभूरमण समुद्दे। एसा परिवाडी इमाहिं गाहाहिं अणुगंतव्वा, तंजहा -

''जंबूदीवे लवणे धायई कालोय पुक्खरे वरुणे।
खीर-घय खोय णंदि य अरुणवरे कुण्डले रुयए॥ १॥
आभरण वत्थ गंधे उप्पल तिलए य पउम णिहिरयणे *।
वासहर दह णईओ विजया वक्खार कप्पिंदा॥ २॥
कुरु मंदर आवासा कूडा णक्खत्त चंद सूरा य।
देव णागे जक्खे भूए य सयंभूरमणे य॥ ३॥ ''

एवं जहा बाहिर पुक्खरद्धे भणिए तहा जाव सयंभूरमण समुद्दे जाव अद्धासमएणं णो फुडे॥ ४४६॥

कठिन शब्दार्थ - परिवाडी - परिपाटी, **अणुगंतव्वा** - अनुसरण करना (जानना) चाहिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जम्बूद्वीप नामक द्वीप किससे स्पृष्ट है? तथा वह कितने कायों से स्पृष्ट है? क्या वह धर्मास्तिकाय से लेकर पूर्वोक्तानुसार यावत् आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट है?

उत्तर - हे गौतम! जम्बूद्वीप धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है, किन्तु धर्मास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है तथा धर्मास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है। इसी प्रकार वह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेशों से स्पृष्ट है, पृथ्वीकाय से लेकर यावत् वनस्पतिकाय से स्पृष्ट है तथा त्रसकाय से कथंचित् स्पृष्ट है और कथंचित् स्पृष्ट नहीं है, अद्धा-समय कालद्रव्य से स्पृष्ट है।

इसी प्रकार लवण समुद्र, धातकीखण्ड द्वीप, कालोद (कालोदधि) समुद्र, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और बाह्य पुष्करार्द्ध द्वीप के विषय में इसी प्रकार का पूर्वोक्तानुसार धर्मास्तिकाय आदि से लेकर अद्धा-समय तक की प्ररूपणा करनी चाहिए। विशेष यह है कि बाह्य पुष्करार्ध से लेकर आगे के समुद्र एवं द्वीप अद्धा-समय से स्पृष्ट नहीं है। यावत् स्वयम्भू रमण समुद्र तक इसी प्रकार की प्ररूपणा करनी चाहिए। यह परिपाटी (द्वीप और समुद्रों का क्रम) इन गाथाओं के अनुसार जान लेनी चाहिए। यथा -

* पाठान्तर - 'पउम पुढवि णिहिरयणे' (मलयगिरि टीका सम्मत पाठ)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. जम्बू द्वीप २. लवण समुद्र ३. धातकी खण्ड द्वीप ४. पुष्कर द्वीप ५. वरुण द्वीप ६. क्षीरवर ७. घृतवर ८. क्षोद (इक्षु) ९. नन्दीश्वर १० अरुणवर ११. कुण्डलवर १२. रुचक १३. आभरण १४. वस्त्र १५. गन्ध १६. उत्पल १७. तिलक १८. पृथ्वी १९. निधि २०. रत्न २१. वर्षधर २२. द्रह २३. नदियाँ २४. विजय २५. वक्षस्कार २६. कल्प २७. इन्द्र २८. कुरु २९. मन्दर ३०. आवास ३१. कूट ३२. नक्षत्र ३३. चन्द्र ३४. सूर्य ३५. देव ३६. नाग ३७. यक्ष ३८. भूत और ३९. स्वयम्भू रमण समुद्र।

इस प्रकार जैसे बाह्य पुष्करार्द्ध के स्पृष्ट और अस्पृष्ट के विषय में कहा गया है उसी प्रकार वरुण द्वीप से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र तक के विषय में 'अद्धा समय से स्पृष्ट नहीं होता,' तक कहना चाहिए।

विवेचन - जम्बूद्वीप सभी द्वीप और समुद्रों के अन्दर (बीच में) रहा हुआ है। यह सभी द्वीप और समुद्रों से सब से छोटा द्वीप है। यह एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। यह वृत्ताकार (थाली के आकार) अर्थात् गोल आकार वाला है। इसके चारों और लवण समुद्र है जो दो लाख योजन का है। यह वलयाकार (चूड़ी के आकार) है इसके आगे धातकी खंड द्वीप है जो चार लाख योजन विस्तार वाला है। इसके आगे कालोदधि समुद्र आठ लाख योजन विस्तार वाला है। इसी तरह पहले-पहले के द्वीप समुद्र को घेरे हुए और पूर्ववर्ती द्वीप समुद्र से दुगुने-दुगने विस्तार वाले असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। अंत में स्वयंभूरमण समुद्र है। जम्बूद्वीप के अलावा सब चूड़ी के आकार में है। द्वीप समुद्रों के नाम टीका में इस प्रकार बतलाये गये हैं - १. जम्बूद्वीप २. लवण समुद्र ३. धातकी खंड ४. कालोदधि समुद्र ५. पुष्करवर द्वीप ६. पुष्करवर समुद्र ७. वरुणवर द्वीप ८. वरुणवर समुद्र ९. क्षीरवर द्वीप १०. क्षीरवर समुद्र ११. घृतवर द्वीप १२. घतवर समुद्र १३. इक्षुवर द्वीप १४. इक्षुवर समुद्र १५. नंदीश्वर द्वीप १६. नंदीश्वर समुद्र १७. अरुण द्वीप १८. अरुण समुद्र १९. अरुणवर द्वीप २०. अरुणवर समुद्र २१. अरुणवराभास द्वीप २२. अरुणवराभास समुद्र २३. कुण्डल द्वीप २४. कुण्डल समुद्र २५. कुण्डलवर द्वीप २६. कुण्डलवर समुद्र २७.कुण्डलवराभास द्वीप २८. कुण्डलवराभास समुद्र २९. रुचक द्वीप, ३० रुचक समुद्र ३१. रुचकवर द्वीप ३२. रुचकवर समुद्र ३३. रुचकवराभास द्वीप ३४. रुचकवराभास समुद्र ३५. हार द्वीप ३६. हार समुद्र ३७. हारवर द्वीप ३८. हारवर समुद्र ३९. हारवराभास द्वीप ४०. हारवराभास समुद्र। इस प्रकार अर्धहार, रत्नावली, कनकावली प्रमुख आभूषणों के नाम, चीनांशुक आदि वस्त्रों के नाम, कोष्ठपुट आदि गन्धों के नाम, उत्पल (कमल) के नाम, तिलक आदि वृक्षों के नाम, शतपत्र, सहस्त्र पत्र आदि पद्म कमल के नाम, पृथ्वियों के नाम, नव निधि के नाम, चक्रवर्ती के चौदह रत्नों के नाम, चुल्ल हिमवान आदि वर्षधर पर्वतों के नाम, पद्म आदि द्रहों के नाम, गंगा सिन्धु आदि नदियों के नाम, कच्छ आदि विजयों के नाम, माल्यवान आदि वक्षस्कार पर्वतों के नाम, सौधर्म आदि कल्पों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम, शक्र आदि इन्द्रों के नाम, देवकुरु उत्तरकुरु के नाम, मेरु पर्वत, शक्रादि के आवास, कूट, नक्षत्र, चन्द्र सूर्य के नाम के तीन-तीन द्वीप समुद्र हैं। अन्त में देव, नाग, यक्ष, भूत और स्वयंभूरमण इन नाम के पांच द्वीप समुद्र एक-एक ही हैं।

नोट - तीन तीन द्वीप समुद्र का आशय ऊपर बताए अनुसार १. द्वीप का मूल नाम २. 'वर' शब्द लगाकर कहा जाने वाला नाम ३. 'वराभास' शब्द लगाकर कहा जाने वाला नाम। इस प्रकार ये तीन-तीन नाम अरुणद्वीप से लगाकर सूर्य द्वीप तक असंख्याता परिपाटियों में समझना चाहिये। अन्त के ५ नाम वाले द्वीप समुद्र एक-एक ही हैं यथा - १. देव द्वीप, देव समुद्र २. नाग द्वीप, नाग समुद्र ३. यक्ष द्वीप, यक्ष समुद्र ४. भूत द्वीप, भूत समुद्र ५. स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयं भूरमण समुद्र।

लोगे णं भंते! किंणा फुडे? कइहिं वा काएहिं?

जहा आगासथिग्गले।

भावार्थ - हे भगवन्! लोक किससे स्पृष्ट है? वह कितने कायों से स्पृष्ट है इत्यादि समस्त वक्तव्यता जिस प्रकार आकाश-थिग्गल के विषय में कही गई है, उसी प्रकार कह देनी चाहिए।

शंका - आकाश थिग्गल और लोक में क्या अन्तर है?

समाधान - आकाश थिग्गल और लोक में विशेष और सामान्य का अंतर है। पहले लोक को 'आकाश थिग्गल' शब्द से प्ररूपित किया गया था अब इसी को सामान्य रूप से 'लोक' शब्द द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अतः आकाश थिग्गल के समान ही लोक संबंधी निरूपण जानना चाहिए।

अलोए णं भंते! किंणा फुडे, कइहिं वा काएहिं पुच्छा।

गोयमा! णो धम्मत्थिकाएणं फुडे जाव णो आगासत्थिकाएणं फुडे, आगासत्थिकायस्स देसेणं फुडे, आगासत्थिकायस्स पएसेहिं फुडे णो पुढविकाएणं फुडे जाव णो अद्धासमएणं फुडे। एगे अजीवदव्वदेसे अगुरुलहुए अणंतेहिं अगुरुलहुयगुणेहिं संजुत्ते सव्वागासअणंतभागूणे॥ ४४६॥

कठिन शब्दार्थ - **संजुत्ते** - संयुक्त।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अलोक किससे स्पृष्ट है? वह कितने कायों से स्पृष्ट है? इत्यादि सर्व पृच्छा यहाँ पूर्ववत् करनी चाहिए।

उत्तर - हे गौतम! अलोक धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है, अधर्मास्तिकाय से लेकर यावत् समग्र आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट नहीं है। वह आकाशास्तिकाय के देश से स्पृष्ट है तथा आकाशास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है किन्तु पृथ्वीकाय से स्पृष्ट नहीं है, यावत् अद्धा-समय (कालद्रव्य) से स्पृष्ट नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अलोक एक अजीवद्रव्य का देश है, अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है, सर्वाकाश के अनन्तवें भाग कम है।

विवेचन - अलोक आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेशों से स्पृष्ट है। शेष चौदह बोलों (१. धर्मास्तिकाय २. धर्मास्तिकाय का देश ३. धर्मास्तिकाय का प्रदेश ४. अधर्मास्तिकाय ५. अधर्मास्तिकाय का देश ६. अधर्मास्तिकाय का प्रदेश ७. आकाशास्तिकाय ८. पृथ्वीकाय ९. अप्काय १०. तेजस्काय ११. वायुकाय १२. वनस्पतिकाय १३. त्रसकाय १४. काल) से स्पृष्ट नहीं है। अलोक अजीव द्रव्य का देश यानी आकाशास्तिकाय का देश है, अगुरुलघु स्वभाव वाला है अनन्त अगुरुलघु पर्यायों से युक्त है और सारे आकाश के अनन्तवें भाग कम है।

यहाँ पर अलोक में जो अगुरुलघु पर्यायों का निषेध किया है वह अन्य द्रव्यों की पर्यायों की अपेक्षा समझना चाहिये। क्योंकि अलोक में अन्य द्रव्य तो है ही नहीं। आगमकारों की वर्णन शैली ही इस प्रकार की है कि - पहले आधेय द्रव्यों का वर्णन करके बाद में आधार द्रव्यों का वर्णन करते हैं जैसा कि द्रव्य आदि के वर्णन में भी जीव अजीव आदि आधेय द्रव्यों का निषेध करके फिर आगे अजीव द्रव्य देश के रूप में अलोक को बताया है। इसी प्रकार यहाँ पर भी आधेय द्रव्यों के अगुरुलघु पर्यन्त पर्यायों का निषेध करके अलोक को एक अजीव द्रव्य देश रूप और अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त बताया है। अलोक रूप अजीव द्रव्य का देश स्वयं अगुरुलघु है तथा उसमें (एक-एक प्रदेशों पर) अनन्त अनन्त अगुरु लघु गुण (पर्याय) है। अलोक में दूसरा काई जीव द्रव्य का देश नहीं है वह स्वयं अजीव द्रव्य का देश है। अलोक में धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय तथा इनके देश प्रदेशों का स्पर्श नहीं किया है क्योंकि यहाँ सर्व अवगाहित करके स्पर्श की पृच्छा है।

॥ पण्णवणाए भगवईए पण्णरसमस्स इंदियपयस्स पढमो उद्देसो समत्तो ॥

॥ प्रज्ञापना सूत्र के पन्द्रहवें इन्द्रिय पद का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णरसमं इंदियपयं-बीओ उद्देसो

पन्द्रहवां इन्द्रिय पद-द्वितीय उद्देशक

बारह द्वार

इंदियउवचय १ णिव्वत्तणा २ य समया भवे असंखिज्जा ३।

लद्धी ४ उवओगद्धा ५ अप्पाबहुए विसेसाहिया ६॥

ओगाहणा ७ अवाए ८ ईहा ९ तह वंजणोग्गहे १० चेव।

दव्विंदिय ११ भाविंदिय १२ तीया बद्धा पुरेक्खडिया॥

कठिन शब्दार्थ - इंदिय उवचय - इन्द्रियोपचय, **णिव्वत्तणा** - निर्वर्तना, **लद्धी** - लब्धि, **उवओगद्धा** - उपयोग काल, **ओगाहणा** - अवग्रह, **अवाए** - अवाय (अपाय), **वंजणोग्गहे** - व्यंजनावग्रह, **तीया** - अतीत, **पुरेक्खडिया** - पुरस्कृत।

भावार्थ - १. इन्द्रियोपचय २. इन्द्रिय-निर्वर्तना, ३. निर्वर्तना के असंख्यात समय ४. लब्धि ५. उपयोगकाल ६. अल्पबहुत्व में विशेषाधिक उपयोग काल ७. अवग्रह ८. अवाय-अपाय, ९. ईहा तथा १०. व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रह ११. अतीत बद्ध पुरस्कृत (आगे होने वाली) द्रव्येन्द्रिय १२. भावेन्द्रिय। इस प्रकार दूसरे उद्देशक में बारह द्वारों के माध्यम से इन्द्रियविषयक अर्थाधिकार प्रतिपादित किया गया है।

प्रथम इन्द्रियोपचय द्वार

कइविहे णं भंते! इंदियउवचए पण्णत्ते ?

गोयमा! पंचविहे इंदियउवचए पण्णत्ते। तंजहा - सोइंदियउवचए, चक्खिंदियउवचए, घाणिंदियउवचए, जिब्भिंदियउवचए, फासिंदियउवचए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रियोपचय कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रियोपचय पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. श्रोत्रेन्द्रियोपचय २. चक्षुरिन्द्रियोपचय ३. घ्राणेन्द्रियोपचय ४. जिह्वेन्द्रियोपचय और ५. स्पर्शनेन्द्रियोपचय।

णेरइयाणं भंते! कइविहे इंदिओवचए पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पंचविहे इंदिओवचए पण्णत्ते। तंजहा-सोइंदियउवचए जाव फासिंदियउवचए, एवं जाव वेमाणियाणं। जस्स जइ इंदिया तस्स तइविहो चेव इंदियउवचओ भाणियव्वो १।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के इन्द्रियोपचय कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के इन्द्रियोपचय पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रियोपचय यावत् स्पर्शनेन्द्रियोपचय। इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् वैमानिकों के इन्द्रियोपचय के विषय में कहना चाहिए। जिसके जितनी इन्द्रियाँ होती हैं, उसके उतने ही प्रकार का इन्द्रियोपचय कहना चाहिए।

विवेचन - इन्द्रिय पद के इस दूसरे उद्देशक में उपरोक्त दो गाथाओं में वर्णित बारह द्वारों के माध्यम से इन्द्रिय विषयक प्ररूपणा की गयी है। प्रथम द्वार में पांच प्रकार का इन्द्रियोपचय कहा गया है। इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों के संग्रह को इन्द्रियोपचय कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकों में पाए जाने वाले इन्द्रियोपचय का कथन किया गया है।

दूसरा-तीसरा निर्वर्त्तना द्वार

कइविहा णं भंते! इंदियणिव्वत्तणा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा इंदियणिव्वत्तणा पण्णत्ता। तंजहा - सोइंदियणिव्वत्तणा जाव फासिंदियणिव्वत्तणा। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, णवरं जस्स जइ इंदिया अत्थि० २।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रियनिर्वर्त्तना कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रियनिर्वर्त्तना पांच प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रियनिर्वर्त्तना यावत् स्पर्शनेन्द्रियनिर्वर्त्तना। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक निर्वर्त्तना विषयक प्ररूपणा कर देनी चाहिए। विशेषता यह कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ होती हैं, उसकी उतनी ही इन्द्रियनिर्वर्तना कहनी चाहिए।

सोइंदियणिव्वत्तणा णं भंते! कइसमइया पण्णत्ता?

गोयमा! असंखिज्जइसमइया अंतोमुहुत्तिया पण्णत्ता, एवं जाव फासिंदियणिव्वत्तणा। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं ३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! श्रोत्रेन्द्रियनिर्वर्त्तना कितने समय की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रियनिर्वर्त्तना असंख्यात समयों के अन्तर्मुहूर्त्त की कही गयी है। इसी

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

प्रकार स्पर्शनेन्द्रियनिर्वर्त्तना काल तक कहना चाहिए। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों की इन्द्रियनिर्क्तना के काल के विषय में कहना चाहिए।

विवेचन - बाह्याभ्यन्तर रूप निर्वृत्ति-आकार की रचना को निर्वर्त्तना कहते हैं। प्रस्तुत सूत्र में पांच प्रकार की इन्द्रिय-निर्वर्त्तना का कथन करते हुए प्रत्येक इन्द्रिय के निर्वर्त्तना के समयों की प्ररूपणा की गयी है।

चौथा लब्धि द्वार

कइविहा णं भंते! इंदियलद्धी पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा इंदियलद्धी पण्णत्ता। तंजहा - सोइंदियलद्धी जाव फासिंदियलद्धी। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं णवरं जस्स जइ इंदिया अत्थि तस्स तावइया भाणियव्वा ४।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रियलब्धि कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रियलब्धि पांच प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् स्पर्शेन्द्रियलब्धि। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक इन्द्रियलब्धि की प्ररूपणा करनी चाहिए। विशेषता यह कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतनी ही इन्द्रियलब्धि कहनी चाहिए।

विवेचन - इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से जानने की शक्ति को इन्द्रिय लब्धि कहते हैं।

पांचवां उपयोग द्वार

कइविहा णं भंते! इंदियउवओगद्धा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा इंदियउवओगद्धा पण्णत्ता। तंजहा - सोइंदियउवओगद्धा जाव फासिंदियउवओगद्धा। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं णवरं जस्स जइ इंदिया अत्थि० ५॥ ४४७॥

कठिन शब्दार्थ - इंदियउवओगद्धा - इन्द्रिय उपयोगाद्धा-इन्द्रिय का उपयोग काल-जितने काल तक इन्द्रियाँ उपयोग युक्त होती है उतने काल को इन्द्रियोपयोगाद्धा कहते हैं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रियों के उपयोग का काल कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रियों का उपयोग काल पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रिय-उपयोगकाल यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-उपयोगकाल। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के इन्द्रिय-उपयोगकाल के विषय में समझना चाहिए। विशेष यह है कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतने ही इन्द्रियोपयोगकाल कहने चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छठा उपयोग काल द्वार

एएसि णं भंते! सोइंदिय चक्खिंदिय घाणिंदिय जिब्भिंदिय फासिंदियाणं जहण्णियाए उवओगद्धाए उक्कोसियाए उवओगद्धाए जहण्णुक्कोसियाए उवओगद्धाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ४?

गोयमा! सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा, सोइंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, घाणिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा, विसेसाहिया, जिब्भिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, उक्कोसियाए उवओगद्धाए-सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा, सोइंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, घाणिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, जिब्भिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, जहण्णउक्कोसियाए उवओगद्धाए-सव्वत्थोवा चक्खिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा, सोइंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, घाणिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, जिब्भिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासिंदियस्स जहण्णिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासिंदियस्स जहण्णियाहिंतो उवओगद्धाहिंतो चक्खिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, सोइंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, घाणिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, जिब्भिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया, फासिंदियस्स उक्कोसिया उवओगद्धा विसेसाहिया ६ ॥ ४४८ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के जघन्य उपयोगाद्धा, उत्कृष्ट उपयोगाद्धा और जघन्योत्कृष्ट उपयोगाद्धा में कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! चक्षुरिन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा-उपयोगकाल सबसे कम है, उससे श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे जिह्वेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे स्पर्शनेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है। उत्कृष्ट उपयोगाद्धा में चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा सबसे कम है, उससे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे जिह्वेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है। जघन्योत्कृष्ट उपयोगाद्धा की अपेक्षा से सबसे कम चक्षुरिन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा है, उससे श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे जिह्वेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे स्पर्शनेन्द्रिय का जघन्य उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, स्पर्शनेन्द्रिय के जघन्य उपयोगाद्धा से चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे जिह्वेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है, उससे स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोगाद्धा विशेषाधिक है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में इन्द्रियों के उपयोग काल का अल्प बहुत्व का कथन किया गया है। जो इस प्रकार है -

जघन्य उपयोग काल का अल्प बहुत्व - १. सबसे थोड़ा चक्षु इन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल २. श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल विशेषाधिक ३. घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल विशेषाधिक ४. रसनेन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल विशेषाधिक ५. स्पर्शनेन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल विशेषाधिक।

उत्कृष्ट उपयोग काल का अल्प बहुत्व - १. सबसे थोड़ा चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल, २. श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक ३. घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक ४. रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक ५. स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक।

जघन्य उत्कृष्ट उपयोग काल का शामिल अल्प बहुत्व - १. सबसे थोड़ा चक्षु इन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल २. श्रोत्रेन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल विशेषाधिक ३. घ्राणेन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल विशेषाधिक ४. रसनेन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल विशेषाधिक ५. स्पर्शनेन्द्रिय का जघन्य उपयोग काल विशेषाधिक ६ चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक ७. श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक ८. घ्राणेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक ९. रसनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक १०. स्पर्शनेन्द्रिय का उत्कृष्ट उपयोग काल विशेषाधिक।

सातवां इन्द्रिय अवग्रह द्वार

कइविहा णं भंते! इंदियओगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा इंदियओगाहणा पण्णत्ता। तंजहा - सोइंदियओगाहणा जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फासिंदियओगाहणा, एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, णवरं जस्स जइ इंदिया अत्थि० ७॥ ४४९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रिय-अवग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रियावग्रह पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रिय अवग्रह यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-अवग्रह। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतने ही अवग्रह समझने चाहिए।

विवेचन - इन्द्रिय से होने वाले सामान्य ज्ञान को इन्द्रिय-अवग्रह कहते हैं। ज्ञानोपयोग में सर्वप्रथम अवग्रह होता है। अवग्रह मन से भी होता है किन्तु यहाँ इन्द्रियों से होने वाले अवग्रह के संबंध में ही प्रश्नोत्तर है।

आठवां इन्द्रिय अवाय द्वार

कइविहे णं भंते! इंदियअवाए पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे इंदियअवाए पण्णत्ते। तंजहा - सोइंदियअवाए जाव फासिंदियअवाए। एवं णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं, णवरं जस्स जइ इंदिया अत्थि० ८।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रिय-अवाय कितने प्रकार का कहा गया हैं?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रिय-अवाय पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रिय अवाय से लेकर यावत् स्पर्शनेन्द्रिय-अवाय। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक अवाय के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतने ही अवाय कहने चाहिए।

विवेचन - अवग्रह ज्ञान से अवगृहीत-सामान्य रूप से जाने हुए और ईहा ज्ञान से ईहित-विचार किये हुए अर्थ का निर्णय रूप जो अध्यवसाय है वह अपाय (अवाय) कहलाता है। जैसे-यह शंख का ही शब्द है अथवा यह सारंगी का ही स्वर है इत्यादि रूप निश्चयात्मक निर्णय होना।

नौवां ईहा द्वार

कइविहा णं भंते! ईहा पण्णत्ता?

गोयमा! पंचविहा ईहा पण्णत्ता। तंजहा सोइंदियईहा जाव फासिंदियईहा। एवं जाव वेमाणियाणं, णवरं जस्स जइ इंदिया० ९।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईहा कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईहा पांच प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रिय ईहा यावत् स्पर्शनेन्द्रिय ईहा। इसी प्रकार नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों तक ईहा के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतनी ही ईहा कहनी चाहिए।

विवेचन - ईह धातु चेष्टा अर्थ में है। सद्भूत अर्थ की विचारणा रूप चेष्टा ईहा कहलाती है। तात्पर्य यह है कि अवग्रह के बाद और अपाय के पूर्व सद्भूत अर्थ विशेष को ग्रहण करने और असद्भूत अर्थ विशेष का त्याग करने को अभिमुख बोध विशेष को ईहा कहते हैं। यहाँ शंख आदि के मधुरता आदि शब्द धर्म ज्ञात होते हैं और सारंग आदि के कर्कशता-निष्ठुरता आदि शब्द धर्म ज्ञात नहीं होते अतः यह शब्द शंख का होना चाहिए। इस प्रकार की मति विशेष ईहा कहलाती है। भाष्यकार कहते हैं - "**भूयाभूयविसेसादाणच्चायाभिमुहमीहा**" - सद्भूत अर्थ को ग्रहण करने और असद्भूत अर्थ का त्याग करने को अभिमुख बोध विशेष ईहा है।

दसवां अवग्रह द्वार

कइविहे णं भंते! उग्गहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते। तंजहा - अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अवग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह।

वंजणोग्गहे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - सोइंदियवंजणोग्गहे, घाणिंदियवंजणोग्गहे, जिब्भिंदियवंजणोग्गहे, फासिंदियवंजणोग्गहे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! व्यंजनावग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! व्यंजनावग्रह चार प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - श्रोत्रेन्द्रियावग्रह, घ्राणेन्द्रियावग्रह, जिह्वेन्द्रियावग्रह और स्पर्शनेन्द्रियावग्रह।

अत्थोग्गहे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - सोइंदियअत्थोग्गहे, चक्खिंदियअत्थोग्गहे, घाणिंदियअत्थोग्गहे, जिब्भिंदियअत्थोग्गहे, फासिंदियअत्थोग्गहे, णोइंदियअत्थोग्गहे ॥ ४५० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अर्थावग्रह कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अर्थावग्रह छह प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार हैं - श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रिय-अर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रह, स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रह और नोइन्द्रिय (मन) अर्थावग्रह।

विवेचन - अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है - अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। अर्थ का अवग्रह अर्थावग्रह कहलाता है अर्थात् जिसका निर्देश नहीं किया जा सके ऐसे सामान्य रूप आदि अर्थ का ग्रहण-ज्ञान अर्थावग्रह है। यहाँ नंदी सूत्र के चूर्णिकार कहते हैं - **"सामण्णस्स रूवाइविसेसण रहियस्स-अनिद्देसस्समवग्गहणं अवग्गहो"** - रूपादि विशेषण रहित यानी यह रूप है, गन्ध है, शब्द है या स्पर्श है इत्यादि नाम जाति आदि की कल्पना रहित, जिसका निर्देश नहीं किया जा सके ऐसे सामान्य अर्थ का ग्रहण अवग्रह कहा जाता है।

'व्यज्यते अनेन अर्थः' जैसे दीपक से घट प्रकट किया जाता है वैसे ही जिसके द्वारा अर्थ व्यक्त किया जाए, उसे व्यञ्जन कहते हैं। तात्पर्य यह है कि उपकरण इन्द्रिय और शब्दादि रूप में परिणत द्रव्यों के परस्पर सम्बन्ध होने पर ही श्रोत्रेन्द्रिय आदि इन्द्रियाँ शब्द आदि विषयों को व्यक्त करने में समर्थ होती है, अन्यथा नहीं। अतः इन्द्रिय और उसके विषय का संबंध व्यञ्जन कहलाता है। दर्शनोपयोग के पश्चात् अत्यंत अव्यक्त रूप ज्ञान व्यञ्जनावग्रह है।

शंका - प्रथम व्यञ्जनावग्रह होता है और तत्पश्चात् अर्थावग्रह होता है फिर यहाँ पहले अर्थावग्रह क्यों कहा गया है?

समाधान - अर्थावग्रह अपेक्षाकृत स्पष्ट स्वरूप वाला होता है अतः अर्थावग्रह का व्यञ्जनावग्रह से पहले कथन किया गया है। उपकरण इन्द्रिय और शब्द आदि के परिणत द्रव्यों का जो संबंध होता है वह व्यञ्जनावग्रह है। चार प्राप्यकारी इन्द्रियाँ ही ऐसी है जिनका अपने विषय के साथ संबंध होता है। चक्षु और मन ये दोनों अप्राप्यकारी होने से इनका अपने विषय के साथ संबंध नहीं होता अतः व्यञ्जनावग्रह चार प्रकार का ही बताया गया है जबकि अर्थावग्रह छह प्रकार का होता है अर्थात् अर्थावग्रह सभी इन्द्रियों और मन से होता है। इस कारण भी इसका कथन पहले किया गया है।

णेरइयाणं भंते! कइविहे उग्गहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते। तंजहा - अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य। एवं असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने अवग्रह कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के दो प्रकार के अवग्रह कहे गए हैं, यथा-अर्थावग्रह और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यञ्जनावग्रह। इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक के अवग्रह के विषय में कहना चाहिए।

पुढविकाइयाणं भंते! कइविहे उग्गहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे उग्गहे पण्णत्ते। तंजहा - अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों के कितने अवग्रह कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों के दो प्रकार के अवग्रह कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह।

पुढविकाइयाणं भंते! वंजणोग्गहे कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! एगे फासिंदियवंजणोग्गहे पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों के व्यञ्जनावग्रह कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों के केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय-व्यञ्जनावग्रह कहा गया है।

पुढविकाइयाणं भंते! कइविहे अत्थोग्गहे पण्णत्ते?

गोयमा! एगे फासिंदियअत्थोग्गहे पण्णत्ते। एवं जाव वणस्सइकाइयाणं। एवं बेइंदियाण वि, णवरं बेइंदियाणं वंजणोग्गहे दुविहे पण्णत्ते, अत्थोग्गहे दुविहे पण्णत्ते, एवं तेइंदियचउरिंदियाण वि, णवरं इंदियपरिवुड्डी कायव्वा। चउरिंदियाणं वंजणोग्गहे तिविहे पण्णत्ते, अत्थोग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते, सेसाणं जहा णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं १-१०॥ ४५१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों के कितने अर्थावग्रह कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों के केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह कहा गया है। अप्कायिकों से लेकर यावत् वनस्पतिकायिक तक के व्यञ्जनावग्रह एवं अर्थावग्रह के विषय में इसी प्रकार कहना चाहिए। इसी प्रकार बेइन्द्रियों के अवग्रह के विषय में समझना चाहिए। विशेषता यह है कि बेइन्द्रियों के व्यञ्जनावग्रह दो प्रकार के कहे गए हैं तथा उनके अर्थावग्रह भी दो प्रकार के कहे गए हैं। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों के व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह के विषय में भी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि उत्तरोत्तर एक-एक इन्द्रिय की वृद्धि होने से एक-एक व्यंजनावग्रह एवं अर्थावग्रह की भी वृद्धि कहनी चाहिए। चउरिन्द्रिय जीवों के व्यंजनावग्रह तीन प्रकार के कहे हैं और अर्थावग्रह चार प्रकार के कहे हैं। वैमानिकों तक शेष समस्त जीवों के अवग्रह के विषय में जिस प्रकार नैरयिकों के अवग्रह के विषय में कहा है, उसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारहवां द्रव्येन्द्रिय द्वार

कइविहा णं भंते! इंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - दव्विंदिया य भाविंदिया य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन्द्रियाँ कितने प्रकार की कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! इन्द्रियाँ दो प्रकार की कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय।

कइ णं भंते! दव्विंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! अट्ठ दव्विंदिया पण्णत्ता। तंजहा - दो सोत्ता, दो णेत्ता, दो घाणा, जीहा, फासे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! द्रव्येन्द्रियाँ कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्येन्द्रियाँ आठ प्रकार की कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - दो श्रोत्र, दो नेत्र, दो घ्राण (नाक), जिह्वा और स्पर्शन।

णेरइयाणं भंते! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! अट्ठ एए चेव, एवं असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराण वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के ये ही आठ द्रव्येन्द्रियाँ हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों तक ये ही आठ द्रव्येन्द्रियाँ समझनी चाहिए।

पुढविकाइयाणं भंते! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! एगे फासिंदिए पण्णत्ते। एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों के केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय कही गई है। अप्कायिकों से लेकर वनस्पतिकायिकों तक के इसी प्रकार एक स्पर्शनेन्द्रिय समझनी चाहिए।

बेइंदियाणं भंते! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! दो दव्विंदिया पण्णत्ता। तंजहा - फासिंदिए य जिब्भिंदिए य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों के दो द्रव्येन्द्रियाँ कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - स्पर्शनेन्द्रिय और जिह्वेन्द्रिय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेइंदियाणं भंते! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि दव्विंदिया पण्णत्ता। तंजहा - दो घाणा, जीहा, फासे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेइन्द्रिय जीवों के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! तेइन्द्रिय जीवों के चार द्रव्येन्द्रियाँ कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - दो घ्राण, जिह्वा और स्पर्शन।

चउरिंदियाणं भंते! कइ दव्विंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! छ दव्विंदिया पण्णत्ता। तंजहा - दो णेत्ता, दो घाणा, जीहा, फासे। सेसाणं जहा णेरइयाणं जाव वेमाणियाणं॥ ४५२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जीवों के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! चउरिन्द्रिय जीवों के छह द्रव्येन्द्रियाँ कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं-दो नेत्र, दो घ्राण, जिह्वा और स्पर्शन। शेष सबके-तिर्यंचपंचेन्द्रियों, मनुष्यों, वाणव्यंतरों, ज्योतिष्कों यावत् वैमानिकों के नैरयिकों की तरह आठ द्रव्येन्द्रियाँ कहनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में द्रव्येन्द्रियों के आठ भेद एवं चौबीस दण्डकों में उनकी प्ररूपणा की गई हैं। आठ द्रव्येन्द्रियाँ इस प्रकार हैं - दो कान, दो आँख, दो नाक, एक जिह्वा और एक स्पर्शनेन्द्रिय। नैरयिक, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य के आठ द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं। पांच स्थावर के एक द्रव्येन्द्रिय-स्पर्शनेन्द्रिय होती हैं। बेइन्द्रिय के दो द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं - जिह्वा और स्पर्शनेन्द्रिय। तेइन्द्रिय के चार द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं - दो नाक, जिह्वा और स्पर्शनेन्द्रिय। चउरिन्द्रिय के ये चार और दो आँखें-ये छह द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की अतीत (भूतकाल की) द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनन्त हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की कितनी द्रव्येन्द्रियाँ बद्ध (वर्तमान काल की) हैं?

उत्तर - हे गौतम! आठ हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अट्ठ वा सोलस वा सत्तरस वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की पुरस्कृत (आगे होने वाली) द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक की आगे होने वाली द्रव्येन्द्रियाँ आठ हैं, सोलह हैं, सत्तरह हैं, संख्यात हैं, असंख्यात हैं अथवा अनन्त हैं।

एगमेगस्स णं भंते! असुरकुमारस्स केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक असुरकुमार के अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनन्त हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक असुरकुमार के कितनी द्रव्येन्द्रियाँ बद्ध हैं?

उत्तर - हे गौतम! आठ हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अट्ठ वा णव वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

एवं जाव थणियकुमाराणं ताव भाणियव्वं। एवं पुढविकाइया आउकाइया वणस्सइकाइया वि, णवरं केवइया बद्धेल्लगत्ति पुच्छाए उत्तरं एक्के फासिंदियदव्विंदिए पण्णत्ते। एवं तेउकाइयवाउकाइयस्स वि, णवरं पुरेक्खडा णव वा दस वा। एवं बेइंदियाण वि, णवरं बद्धेल्लग पुच्छाए दोण्णि। एवं तेइंदियस्स वि, णवरं बद्धेल्लगा चत्तारि। एवं चउरिंदियस्स वि, णवरं बद्धेल्लगा छ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक असुरकुमार के पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक असुरकुमार के पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ आठ हैं, नौ हैं, संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं।

नागकुमार से ले कर स्तनितकुमार तक की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक की अतीत और पुरस्कृत इन्द्रियों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि प्रत्येक की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कितनी हैं? ऐसी पृच्छा का उत्तर है-इनकी बद्ध द्रव्येन्द्रिय एक मात्र स्पर्शनेन्द्रिय कही गई है। तेजस्कायिक और वायुकायिक की अतीत और बद्ध द्रव्येन्द्रियों के विषय में भी इसी प्रकार पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ नौ या दस होती हैं। बेइन्द्रियों की अतीत और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में भी इसी प्रकार पूर्ववत् कहना चाहिए। विशेषता यह कि इनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियों की पृच्छा होने पर दो द्रव्येन्द्रियाँ कहनी चाहिये। इसी प्रकार तेइन्द्रिय की अतीत और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में समझना चाहिए। विशेषता यह कि इनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ चार होती हैं। इसी प्रकार चउरिन्द्रिय की अतीत और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में भी जानना चाहिए। विशेषता यह कि इसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ छह होती हैं।

पंचिंदिय तिरिक्खजोणिय-मणूस-वाणमंतर-जोइसिय सोहम्मीसाणग देवस्स जहा असुरकुमारस्स, णवरं मणूसस्स पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा णव वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, मनुष्य, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म, ईशान देव की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में जिस प्रकार असुरकुमार के विषय में कहा है, उसी प्रकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी मनुष्य के होती हैं, किसी के नहीं होती। जिसके पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ होती हैं, उसके आठ, नौ, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं।

सणंकुमार माहिंद बंभ लंतग सुक्क सहस्सार आणय पाणय आरण अच्चुय गेवेज्जग देवस्स य जहा णेरइयस्स।

भावार्थ - सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत और ग्रैवेयक देव की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में नैरयिक के समान जानना चाहिए।

एगमेगस्स णं भंते! विजय वेजयंत जयंत अपराजिय देवस्स केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनन्त हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विजयादि चारों में से प्रत्येक की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! आठ हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखिज्जा वा।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! विजय आदि चारों में से प्रत्येक की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! विजयादि चारों में से प्रत्येक की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ आठ, सोलह, चौवीस या संख्यात होती हैं।

सव्वट्ठ सिद्धग देवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा अट्ठ, पुरेक्खडा अट्ठ।

भावार्थ - सर्वार्थसिद्ध देव की प्रत्येक की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त, बद्ध आठ और पुरस्कृत भी आठ होती हैं।

णेरइयाणं भंते! केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से नैरयिकों की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनन्त हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! असंखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से नैरयिकों की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियां असंख्यात हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता। एवं जाव गेवेज्जग देवाणं, णवरं मणूसाणं बद्धेल्लगा सिय संखिज्जा, सिय असंखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से नैरयिकों की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बहुत से नैरयिकों की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां अनन्त हैं। इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् बहुत से ग्रैवेयक देवों की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में समझ लेना चाहिए। विशेषता यह कि मनुष्यों की बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होती हैं।

विजय वेजयंत जयंत अपराजिय देवाणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अतीता अणंता, बद्धेल्लगा असंखिज्जा, पुरेक्खडा असंखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी-कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बहुत से विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हैं, बद्ध असंख्यात हैं और पुरस्कृत असंख्यात हैं।

सव्वट्ठसिद्धग देवाणं पुच्छा?

गोयमा! अतीता अणंता, बद्धेल्लगा संखिज्जा, पुरेक्खडा संखिज्जा॥ ४५३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध देवों की अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! इनकी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हैं, बद्ध संख्यात हैं और पुरस्कृत संख्यात हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक जीव की अपेक्षा और अनेक जीवों की अपेक्षा अतीत (भूतकाल) वर्तमान (बद्धेल्लगा) और भविष्य (पुरेक्खडा) काल की द्रव्येन्द्रियों का वर्णन किया गया है। जो इस प्रकार हैं -

एक जीव की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ

एक नैरयिक ने अतीत काल में द्रव्येन्द्रियाँ अनंन्त की हैं। वर्तमान काल संबंधी द्रव्येन्द्रियाँ उसके आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा सतरह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

एक असुरकुमार देवता ने अतीत काल में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान काल में आठ हैं और भविष्य में आठ, नौ अथवा दस यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। असुरकुमार की तरह शेष नवनिकाय के भवनपति देव कहना। पृथ्वी, पानी और वनस्पति के एक-एक जीव ने अतीत काल में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान में एक द्रव्येन्द्रिय है और भविष्य में आठ अथवा नौ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी।

तेजस्काय, वायुकाय, बेइन्द्रिय, तेउन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के एक-एक जीव ने अतीत काल में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान में तेजस्काय, वायुकाय के एक, बेइन्द्रिय के दो, तेउन्द्रिय के चार, चउरिन्द्रिय के छह, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के आठ द्रव्येन्द्रियाँ हैं तथा भविष्य में नौ, दस अथवा ग्यारह यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी।

संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के एक-एक जीव ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान काल में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

संज्ञी मनुष्य के एक-एक जीव के द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान काल में आठ हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके आठ अथवा नौ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी।

वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के एक-एक देवता ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान काल में आठ हैं और भबिष्य में आठ अथवा नौ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

तीसरे देवलोक से नवग्रैवेयक के एक-एक देवता ने अतीत में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा सतरह यावत् संख्यात-असंख्यात अनन्त करेंगे।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात करेंगे।

सर्वार्थ सिद्ध के एक-एक देवता ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में भी आठ ही होंगी।

अनेक जीवों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ

नारकी के अनेक नैरयिकों ने अतीत में द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। संज्ञी मनुष्य और अनुत्तर विमान के सिवाय बहुत भवनपति, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, असंज्ञी मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी यावत् नवग्रैवेयक तक के देवों मे द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में संख्यात होंगी। बहुत संज्ञी मनुष्यों ने द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की नैरयिकपन-नैरयिक अवस्था में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक की नैरयिकपन में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ आठ हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत (आगामी काल में होने वाली) द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी नैरयिक की होंगी, किसी की नहीं होगी। जिसकी होंगी, उसकी आठ, सोलह, चौबीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स असुरकुमारत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की असुरकुमार पर्याय में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की असुरकुमारपर्याय में बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा, संखिज्जा वा, असंखिज्जा वा, अणंता वा। एवं जाव थणियकुमारत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी, जिसकी होंगी, उसकी आठ, सोलह, चौबीस, संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगी। इसी प्रकार एक-एक नैरयिक की नागकुमारपर्याय से लेकर यावत् स्तनितकुमारपर्याय में अतीत, बद्ध एवं पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में कहना चाहिए।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स पुढविकाइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की पृथ्वीकायपन में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक की पृथ्वीकायपन में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं है।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि एक्को वा, दो वा, तिण्णि वा, संखिज्जा वा, असंखिज्जा वा, अणंता वा। एवं जाव वणस्सइकाइयत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होगी?

उत्तर - हे गौतम! किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी। जिसकी होंगी, उसकी एक, दो, तीन या संख्यात असंख्यात या अनन्त होंगी। इसी प्रकार एक-एक नैरयिक की अप्कायपर्याय से लेकर यावत् वनस्पतिकायपन में अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में कहना चाहिए।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स बेइंदियत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की बेइन्द्रियपन में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक की बेइन्द्रियपन में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैसी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि दो वा, चत्तारि वा, संखिज्जा वा, असंखिज्जा वा, अणंता वा।

एवं तेइंदियत्ते वा, णवरं पुरेक्खडा चत्तारि वा, अट्ठ वा, बारस वा, संखिज्जा वा, असंखिज्जा वा, अणंता वा। एवं चउरिंदियत्ते वि, णवरं पुरेक्खडा छ वा, बारस वा, अट्ठारस वा, संखिज्जा वा, असंखिज्जा वा, अणंता वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी किसी की नहीं होंगी। जिसकी होंगी, उसकी दो, चार, छह, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी।

इसी प्रकार एक-एक नैरयिक की तेइन्द्रियपन में अतीत और बद्ध द्रव्येन्द्रियों के विषय में समझना चाहिए। विशेषता यह है कि उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ छह, बारह, अठारह, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त हैं।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियत्ते जहा असुरकुमारत्ते।

भावार्थ - एक-एक नैरयिक की पंचेन्द्रियतिर्यंच पर्याय में अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में असुरकुमार पर्याय में जिस प्रकार कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिए।

मणूसत्ते वि एवं चेव, णवरं केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अट्ठ वा, सोलस वा, चउवीसा वा, संखिज्जा वा, असंखिज्जा वा, अणंता वा। सव्वेसिं मणूसवज्जाणं पुरेक्खडा मणूसत्ते कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि एवं ण वुच्चइ।

भावार्थ - मनुष्य पर्याय में भी इसी प्रकार अतीत आदि द्रव्येन्द्रियों के विषय में कहना चाहिए।

प्रश्न - विशेषता यह है कि पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! आठ, सोलह, चौवीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होती हैं। मनुष्यों को छोड़ कर शेष तेईस दण्डकों के जीवों की पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ मनुष्यपन में "किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी", ऐसा नहीं कहना चाहिए।

वाणमंतर जोइसिय सोहम्मग जाव गेवेज्जगदेवत्ते अतीता अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

भावार्थ - एक-एक नैरयिक की वाणव्यंतर, ज्योतिषी, सौधर्म से लेकर ग्रैवेयक देव तक के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं, बद्ध नहीं हैं और पुरस्कृत इन्द्रियाँ किसी की होंगी। किसी की नहीं होंगी। जिसकी होंगी, उसकी आठ, सोलह, चौवीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-देवत्व के रूप में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-देवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा। सव्वट्ठसिद्धग देवत्ते-अतीता णत्थि, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ।

एवं जहा णेरइयदंडओ णीओ तहा असुरकुमारेण वि णेयव्वो जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिएणं, णवरं जस्स सट्ठाणे जइ बद्धेल्लगा तस्स तइ भाणियव्वा ॥ ४५४ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक की विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित देवत्व के रूप में पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी, जिसकी होंगी, उसकी आठ या सोलह होंगी।

सर्वार्थसिद्ध देवपन में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हुई, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ भी नहीं हैं, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी। जिसकी होंगी, उसकी आठ होंगी।

जैसे नैरयिक की नैरयिकादि त्रिविध रूप में पाई जाने वाली अतीत, बद्ध एवं पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में दण्डक कहा, उसी प्रकार असुरकुमार के विषय में भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक तक के दण्डक कहने चाहिए। विशेषता यह है कि जिसकी स्वस्थान में जितनी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कही हैं, उसकी उतनी कहनी चाहिए।

एगमेगस्स णं भंते! मणूसस्स णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक-एक मनुष्य की नैरयिकपन में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक मनुष्य की नैरयिकपन में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा। एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियत्ते, णवरं एगिंदियविगलिंदिएसु जस्स जत्तिया पुरेक्खडा तस्स तत्तिया भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियां कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी, जिसकी होंगी, उसकी आठ, सोलह, चौवीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी। इसी प्रकार यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याय में अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों में से जिसकी जितनी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ होंगी, उसकी उतनी कहनी चाहिए।

एगमेगस्स णं भंते! मणूसस्स मणूसत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य की मनुष्य पर्याय में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य की मनुष्य पर्याय में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ आठ हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा। वाणमंतरजोइसिय जाव गेवेज्जगदेवत्ते जहा णेरइयत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी, जिसकी होंगी, उसकी आठ, सोलह, चौवीस, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी।

एक-एक मनुष्य की वाणव्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म से लेकर यावत् ग्रैवेयक देवत्व के रूप में अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में नैरयिकत्व रूप में उपरोक्तानुसार अतीत आदि द्रव्येन्द्रियों के समान समझना चाहिए।

एगमेगस्स णं भंते! मणूसस्स विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक मनुष्य की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक मनुष्य की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की हुई हैं, किसी की नहीं हुई हैं। जिसकी हुई हैं, उसकी आठ या सोलह हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी और किसी की नहीं होंगी। जिसकी होंगी, उसकी आठ या सोलह होंगी।

एगमेगस्स णं भंते! मणूसस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक मनुष्य की सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक मनुष्य की सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की हुई हैं, किसी की नहीं हुई हैं। जिसकी हुई हैं, उसकी आठ हुई हैं।

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होती हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ। वाणमंतरजोइसिए जहा णेरइए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी। जिसकी होंगी, उसकी आठ होंगी। वाणव्यंतर और ज्योतिषी देव की अपने अपने रूप में अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता नैरयिक की वक्तव्यता के समान कहना चाहिए।

सोहम्मगदेवे वि जहा णेरइए,

णवरं सोहम्मगदेवस्स विजय वेजयंत जयंत अपराजियत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ।

भावार्थ - सौधर्मकल्प देव की उसी रूप में अतीत आदि द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता भी नैरयिक की वक्तव्यता के समान कहना चाहिए।

प्रश्न - विशेषता यह है कि सौधर्म देव की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म देव की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में किसी की हुई हैं, किसी की नहीं हुई हैं। जिसकी हुई हैं, उसकी आठ हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते जहा णेरइयस्स। एवं जाव गेवेज्जगदेवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते ताव णेयव्वं॥ ४५५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होगी, किसी की नहीं होगी। जिसकी होंगी, आठ या सोलह होंगी। सौधर्म देव की सर्वार्थसिद्ध देवत्व रूप में अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता नैरयिक की वक्तव्यता के समान समझनी चाहिए। ईशान देव से लेकर ग्रैवेयक देव तक की यावत् सर्वार्थसिद्ध देवत्वरूप में अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता भी इसी प्रकार कहनी चाहिए।

एगमेगस्स णं भंते! विजय वेजयंत जयंत अपराजिय देवस्स णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव की नैरयिक के रूप में कितनी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव की नैरयिक के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि। एवं जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! नहीं होंगी। इन चारों की प्रत्येक की, असुरकुमारत्व से लेकर यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकत्व रूप में अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

मणूसत्ते अतीता अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखिज्जा वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इन्हीं की प्रत्येक की मनुष्यत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं, बद्ध नहीं हैं, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ आठ, सोलह या चौवीस होंगी, अथवा संख्यात होंगी।

वाणमंतरजोइसियत्ते जहा णेरइयत्ते।

भावार्थ - इन्हीं की प्रत्येक की वाणव्यंतर एवं ज्योतिषी देवत्व के रूप में अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता नैरयिकत्व रूप की अतीत आदि की वक्तव्यता के अनुसार कहना चाहिए।

सोहम्मगदेवत्ते अतीता अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ वा सोलस वा चउवीसा वा संखिज्जा वा।

भावार्थ - इन चारों की प्रत्येक की सौधर्म देवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं, बद्ध नहीं हैं और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी। जिसकी होंगी, उसकी आठ, सोलह, चौवीस अथवा संख्यात होंगी।

एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

भावार्थ - इन्हीं चारों की प्रत्येक की ईशानदेवत्व से लेकर यावत् ग्रैवेयकदेवत्व के रूप में अतीत आदि द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता इसी प्रकार समझनी चाहिए।

विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवत्ते अतीता कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! अट्ठ।

भावार्थ - इन चारों की प्रत्येक की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की हुई हैं और किसी की नहीं हुई हैं। जिसकी हुई हैं उसकी आठ हुई हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ आठ हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि जस्स अत्थि अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी और किसी की नहीं होंगी, जिसकी होंगी, उसके आठ होंगी।

एगमेगस्स णं भंते! विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव की सर्वार्थसिद्धदेवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देव की सर्वार्थसिद्धदेवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी ?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी। जिसकी होंगी, वे आठ होंगी।

एगमेगस्स णं भंते! सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की नैरयिकपन में कितनी द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में हुई हैं ?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक सर्वार्थसिद्ध देव की नैरयिकपन में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा ?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं ?

उत्तर - हे गौतम! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कितनी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ होंगी ?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होंगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं मणूसवज्जं जाव गेवेज्जगदेवत्ते, णवरं मणूसत्ते अतीता अणंता।

भावार्थ - इसी प्रकार असुरकुमारत्व से लेकर मनुष्यत्व को छोड़ कर यावत् ग्रैवेयक देवत्व रूप में एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की अतीत आदि द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की मनुष्यत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ आठ होंगी।

विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवत्ते अतीता कस्सइ अत्थि, कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि अट्ठ।

भावार्थ - एक-एक सर्वार्थसिद्ध देव की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजितदेवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ किसी की हुई हैं और किसी की नहीं हुई हैं। जिसकी हुई हैं, वे आठ हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होंगी।

एगमेगस्स णं भंते! सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक सर्वार्थसिद्धदेव की सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! नहीं हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! अट्ठ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ आठ हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि॥ ४५६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! उसकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होंगी।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक जीव में परस्पर अतीत (भूत काल) वर्तमान (बद्धेल्लगा) और भविष्य (पुरेक्खडा) काल की द्रव्येन्द्रियों का कथन किया गया है जो इस प्रकार हैं -

एक-एक नारकी के नैरयिक ने नैरयिक रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जो नरक से निकल कर बाद में वापिस नरक में उत्पन्न नहीं होगा उसके भविष्य काल सम्बन्धी द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होंगी। जो नरक से निकल कर बाद में वापिस नैरयिक होगा उसके आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। एक-एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य और पाँच अनुत्तर विमान को छोड़ कर शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३ बेइन्द्रिय में २, ४, ६ तेउन्द्रिय में ४, ८, १२ चउरिन्द्रिय में ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय में ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात अनन्त होंगी। एक एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त की, वर्तमान काल में नहीं हैं और भविष्य काल में नियम पूर्वक ८ या १६ या २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक-एक नारकी के नैरयिक ने पांच अनुत्तर विमान रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी और किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसमें चार अनुत्तर विमान रूप में आठ अथवा सोलह होंगी और सर्वार्थसिद्ध रूप में आठ होंगी। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी देवता नारकी की तरह कहना चाहिए।

पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देव ने स्वस्थान और परस्थान की अपेक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्व स्थान में आठ हैं और परस्थान की अपेक्षा नहीं है, भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके आठ अथवा सोलह अथवा चौबीस यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देवता ने चार अनुत्तर विमान रूप से द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं उसने आठ कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके आठ अथवा सोलह होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देवता ने सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में नहीं की, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके आठ होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देव ने वैमानिक देव और संज्ञी मनुष्य के सिवा शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, बेइन्द्रिय में २, ४, ६ तेइन्द्रिय में ४, ८, १२ चउरिन्द्रिय में ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय में ८, १६, २४ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देवता ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त की, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियमपूर्वक ८, १६, २४ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने स्वस्थान संबंधी द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में किसी ने कीं किसी ने नहीं कीं। जिसने कीं उसने आठ कीं। वर्तमान में आठ द्रव्येन्द्रियाँ हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी आठ होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने सर्वार्थसिद्ध देवता के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में नहीं की, वर्तमान में नहीं है, भविष्य में किसी के होंगी किसी नहीं होंगी, जिसके होंगी आठ होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके ८ अथवा १६ अथवा २४ यावत् संख्यात होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियमपूर्वक ८, १६, २४ यावत् संख्यात करेगा। चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने संज्ञी मनुष्य और वैमानिक देवता के सिवाय सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियां अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी।

सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने स्व स्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान काल में आठ हैं और भविष्य काल में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने चार अनुत्तर विमान रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में किसी ने कीं किसी ने नहीं कीं, जिसने की उसने आठ कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने चार अनुत्तर विमान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने संज्ञी मनुष्य के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियमपूर्वक आठ होंगी।

पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य इन ग्यारह स्थानों के एक-एक जीव ने स्व स्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में स्व स्थान की अपेक्षा एकेन्द्रिय में १, बेइन्द्रिय में २, तेइन्द्रिय में ४, चउरिन्द्रिय में ६, पंचेन्द्रिय ८ द्रव्येन्द्रियाँ हैं पर स्थान की अपेक्षा नहीं है, भविष्य में स्वस्थान की अपेक्षा किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, बेइन्द्रिय में २, ४, ६, तेइन्द्रिय में ४, ८, १२, चउरिन्द्रिय में ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय में ८, १६, २४, यावत् संख्यात, असंख्यात अनंत होंगी। उक्त ग्यारह बोलों के एक-एक जीव ने पांच अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवाय सभी स्थानों में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, बेइन्द्रिय में २, ४, ६, तेइन्द्रिय में ४, ८, १२, चउरिन्द्रिय में ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय में ८, १६, २४ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। उक्त ग्यारह बोलों के एक-एक जीव ने पांच अनुत्तर विमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके चार अनुत्तर विमान रूप में आठ अथवा सोलह होंगी और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में आठ होंगी। उक्त ग्यारह बोलों के एक-एक जीव ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियमपूर्वक ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

संज्ञी मनुष्य के एक-एक जीव ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में आठ हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके ८ या १६ या २४ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। एक-एक संज्ञी मनुष्य ने पांच अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवा शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय की अपेक्षा १, २, ३, बेइन्द्रिय की अपेक्षा २, ४, ६, तेइन्द्रिय की अपेक्षा ४, ८, १२ चउरिन्द्रिय की अपेक्षा ६, १२, १८ और पंचेन्द्रिय की अपेक्षा ८, १६, २४ यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक-एक संज्ञी मनुष्य ने पांच अनुत्तर विमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में किसी ने की, किसी ने नहीं की। जिसने कीं उसने चार अनुत्तर विमान के देव रूप में ८ अथवा १६ की और सर्वार्थसिद्ध देवता के रूप में ८ की। वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके चार अनुत्तर विमान के देव रूप में ८ अथवा १६ होंगी और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में आठ होंगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइयाणं भंते! णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत-से नैरयिकों की नैरयिकत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! बहुत-से नैरयिकों की नैरयिकत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! असंखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे असंख्यात हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त होंगी।

णेरइयाणं भंते! असुरकुमारत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से नैरयिकों की असुरकुमारत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! बहुत से नैरयिकों की असुरकुमारत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त होंगी।

एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - बहुत-से नैरयिकों की नागकुमारत्व से लेकर यावत् ग्रैवेयकदेवत्व रूप में अतीत, बद्ध पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता भी इसी प्रकार पूर्ववत् जाननी चाहिए।

णेरइयाणं भंते! विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से नैरयिकों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप के अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! बहुत से नैरयिकों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! नहीं है।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! असंखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात होंगी।

एवं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते वि।

भावार्थ - नैरयिकों की सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप में अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता भी इसी प्रकार जाननी चाहिए।

एवं जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते भाणियव्वं।

णवरं वणस्सइ काइयाणं विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवत्ते सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते य पुरेक्खडा अणंता, सव्वेसिं मणूससव्वट्ठसिद्धगवज्जाणं सट्ठाणे बद्धेल्लगा असंखिज्जा, परट्ठाणे बद्धेल्लगा णत्थि।

भावार्थ - असुरकुमारों से लेकर यावत् बहुत-से पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिकों की नैरयिकत्व से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवत्वरूप तक में अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की प्ररूपणा इसी प्रकार पूर्ववत् करनी चाहिए।

विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों की, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व तथा

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

सर्वार्थसिद्धदेवत्व के रूप में पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त होंगी। मनुष्यों और सर्वार्थसिद्ध देवों को छोड़कर सबकी स्वस्थान में बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात हैं, परस्थान में बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

मणूसाणं णेरइयत्ते अतीता अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा अणंता।

भावार्थ - मनुष्यों की नैरयिकत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त होंगी।

एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते, णवरं सट्टाणे अतीता अणंता, बद्धेल्लगा सिय संखिज्जा सिय असंखिज्जा, पुरेक्खडा अणंता।

भावार्थ - मनुष्यों की असुरकुमारत्व से लेकर यावत् ग्रैवेयकदेवत्व रूप में अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की प्ररूपणा इसी प्रकार पूर्ववत् समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि मनुष्यों की स्वस्थान में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात हैं और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त होंगी।

मणूसाणं भंते! विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! संखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-देवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य की विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ संख्यात हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

सिय संखिज्जा सिय असंखिज्जा। एवं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कदाचित् संख्यात होंगी, कदाचित् असंख्यात होंगी। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्ध देवत्व रूप में भी अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।

वाणमंतर जोइसियाणं जहा णेरइयाणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - बहुत से वाणव्यंतर और ज्योतिष्क देवों की अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता नैरयिकत्व से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवत्व रूप तक में नैरयिकों की वक्तव्यता के समान जानना चाहिए।

सोहम्मगदेवाणं एवं चेव। णवरं विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवत्ते अतीता असंखिज्जा, बद्धेलगा णत्थि, पुरेक्खडा असंखिज्जा। सव्वट्ठ सिद्धग देवत्ते अतीता णत्थि, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा असंखिज्जा।

भावार्थ - सौधर्म देवों की अतीत आदि की वक्तव्यता इसी प्रकार है। विशेषता यह है कि विजय, वैजयन्त, जयन्त तथा अपराजित देवत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात हुई हैं, बद्ध नहीं है तथा पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात होंगी। सर्वार्थसिद्ध देवत्व रूप में अतीत नहीं हुई हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ भी नहीं हैं, किन्तु पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात होंगी।

एवं जाव गेवेज्जगदेवाणं।

भावार्थ - बहुत से ईशान देवों से लेकर यावत् ग्रैवेयक देवों की अतीत, बद्ध पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझ लेनी चाहिए।

विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवाणं भंते! णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की नैरयिकत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की नैरयिकत्व के रूप अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होंगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं जाव जोइसियत्ते वि, णवरं मणूसत्ते अतीता अणंता, केवइया बद्धेल्लगा? णत्थि, पुरेक्खडा असंखिज्जा।

भावार्थ - इसी प्रकार यावत् ज्योतिषी देवत्व रूप में भी अतीत, बद्ध, पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी मनुष्यत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं। इनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं? हे गौतम! नहीं हैं। इनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी? हे गौतम! असंख्यात होंगी।

एवं जाव गेवेज्जगदेवत्ते। सट्ठाणे अतीता असंखिज्जा,

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! असंखिज्जा।

भावार्थ - विजयादि चारों की सौधर्मादि देवत्व से लेकर यावत् ग्रैवेयकदेवत्व के रूप में अतीत आदि द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता इसी प्रकार है। इनकी स्वस्थान में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात हुई हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! असंख्यात हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! असंखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ असंख्यात होंगी।

सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते अतीता णत्थि, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा संखिज्जा।

भावार्थ - इन चारों देवों की सर्वार्थसिद्ध देवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हुई हैं, बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ भी नहीं हैं, किन्तु पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ संख्यात होंगी।

सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते! णेरइयत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध देवों की नैरयिकत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होंगी।

एवं मणूसवज्जं जाव गेवेज्जगदेवत्ते।

भावार्थ - मनुष्य को छोड़ कर यावत् ग्रैवेयक देवत्व तक के रूप में इसी प्रकार इनकी अतीत आदि द्रव्येन्द्रियों की वक्तव्यता कहनी चाहिए।

मणूसत्ते अतीता अणंता, बद्धेल्लगा णत्थि, पुरेक्खडा संखिज्जा।

भावार्थ - इनकी मनुष्यत्व के रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं, बद्ध नहीं हैं, पुरस्कृत संख्यात होंगी।

विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

गोयमा! संखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में इनकी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवत्व के रूप में इनकी अतीत द्रव्येन्द्रियाँ संख्यात हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! इनकी बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! नहीं होंगी।

सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते! सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया दव्विंदिया अतीता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध देवों की सर्वार्थसिद्धदेवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! सर्वार्थसिद्ध देवों की सर्वार्थसिद्ध देवत्व रूप में अतीत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! संखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! बद्ध द्रव्येन्द्रियाँ संख्यात हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! णत्थि ११॥ ४५७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! उनकी पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होंगी।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अनेक जीवों में परस्पर की अपेक्षा अतीत, बद्ध और पुरस्कृत द्रव्येन्द्रियों का कथन किया गया है जो इस प्रकार हैं -

बहुत नारकी के नैरयिकों ने नारकी से लेकर यावत् नवग्रैवेयक देवता के रूप में तथा औदारिक के दस दंडक रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्व स्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं, परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत नारकी के नैरयिकों ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के जीवों ने नारकी से लेकर यावत् नवग्रैवेयक देवता और औदारिक के दस दंडक के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं ※ परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं, भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर,

※ मूल पाठ में वनस्पतिकाय में स्वस्थान की अपेक्षा अनंत द्रव्येन्द्रियाँ बताई हैं, लेकिन उस पाठ में लिपिदोष की संभावना लगती है, क्योंकि पहले अनेक जीवों की अपेक्षा (दूसरे द्वार में) वनस्पतिकाय में असंख्यात ही द्रव्येन्द्रियाँ आई है, आगे भाव इन्द्रियों के विवेचन में अनेक जीवों में परस्पर की अपेक्षा (तीसरे द्वार में) आया है कि "द्रव्येन्द्रियों की तरह ही कहना लेकिन वनस्पति काय में अनन्ता कहना" अगर आगमकार को यहाँ असंख्यात अपेक्षित होता तो वहाँ सिर्फ भोलावन ही दे देते, "णवरं अणंता" नहीं बोलते। पन्नवणा सूत्र के १२ वें पद में सभी जीवों के बद्ध औदारिक शरीर असंख्यात ही बताये हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिषी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के जीवों ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान काल में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने संज्ञी मनुष्य और पांच अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनंत कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में अनंत होंगी। बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने स्वस्थान यानी संज्ञी मनुष्य की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में अनंत होंगी। बहुत से संज्ञी मनुष्य के जीवों ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में संख्यात कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में संख्यात होंगी।

पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनंत होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने चार अनुत्तर विमान के देवता रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में असंख्यात कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में असंख्यात होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने सर्वार्थसिद्ध देवता के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में असंख्यात होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने पांच अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं पर स्थान की अपेक्षा नहीं है और भविष्य में अनन्त होंगी।

चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में असंख्यात कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने सर्वार्थसिद्ध के देवता की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में नहीं की, वर्तमान काल में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के देवों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने वैमानिक देव और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य के रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं की, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने चार अनुत्तर विमान के देव रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीत काल में संख्यात कीं, वर्तमान काल में नहीं हैं और भविष्य में नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने चार अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों की अपेक्षा द्रव्येन्द्रियां अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य रूप में द्रव्येन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी।

बारहवाँ भावेन्द्रिय द्वार

कइ णं भंते! भाविंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच भाविंदिया पण्णत्ता। तंजहा - सोइंदिए जाव फासिंदिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भावेन्द्रियाँ कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! भावेन्द्रियाँ पांच कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - श्रोत्रेन्द्रिय से लेकर स्पर्शनेन्द्रिय तक।

णेरइयाणं भंते! कइ भाविंदिया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच भाविंदिया पण्णत्ता। तंजहा - सोइंदिए जाव फासिंदिए। एवं जस्स जइ इंदिया तस्स तइ भाणियव्वा जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की कितनी भावेन्द्रियाँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की भावेन्द्रियाँ पांच कहीं गई हैं, वे इस प्रकार हैं - श्रोत्रेन्द्रिय से स्पर्शनेन्द्रिय तक। इसी प्रकार जिसकी जितनी इन्द्रियाँ हों, उतनी वैमानिकों तक भावेन्द्रियाँ कह देनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस ही दण्डक के जीवों की भावेन्द्रियों का कथन किया गया है।

शब्द आदि पांच विषयों के ज्ञान कराने वाली लब्धि (क्षयोपशम) एवं उपयोग रूप आत्मचेतना को भावेन्द्रिय कहते हैं। भावेन्द्रियाँ आत्म परिणाम रूप होने से अरूपी बताई गई है।

भाव इन्द्रियाँ पांच हैं - श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। नारकी के नैरयिक, दस भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चौदह दण्डक में तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य में ये पांचों इन्द्रियाँ होती हैं। पांच स्थावर में एक स्पर्शनेन्द्रिय, बेइन्द्रिय में दो-स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय, तेइन्द्रिय में तीन-स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय तथा चउरिन्द्रिय में चार इन्द्रियाँ-स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय होती हैं।

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स केवइया भाविंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक-एक नैरयिक के कितनी भावेन्द्रियाँ अतीत (भूतकाल) में हुई हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक के भावेन्द्रियाँ अतीत में अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

गोयमा! पंच।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी कितनी भावेन्द्रियाँ बद्ध (वर्तमान में) हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनकी बद्ध भावेन्द्रियाँ पांच हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

पंच वा दस वा एक्कारस वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! उनकी पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ पांच, दस, ग्यारह, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी।

एवं असुरकुमारस्स वि, णवरं पुरेक्खडा पंच वा छ वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा। एवं जाव थणियकुमारस्स वि।

भावार्थ - इसी प्रकार असुरकुमारों की भावेन्द्रियाँ के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ पांच, छह, संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी।

इसी प्रकार स्तनितकुमार तक की भावेन्द्रियों के विषय में समझ लेना चाहिए।

एवं पुढविकाइय आउकाइय वणस्सइकाइयस्स वि, बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियस्स वि। तेउकाइय वाउकाइयस्स वि एवं चेव, णवरं पुरेक्खडा छ वा सत्त वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

भावार्थ - इसी प्रकार एक-एक पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय की तरह बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय की, तेजस्कायिक एवं वायुकायिक की अतीतादि भावेन्द्रियों के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ छह, सात, संख्यात, असंख्यात या अनन्त होती हैं।

पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स जाव ईसाणस्स जहा असुरकुमारस्स, णवरं मणूसस्स पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि त्ति भाणियव्वं।

भावार्थ - पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक से लेकर यावत् ईशानदेव की अतीत आदि भावेन्द्रियों के विषय में असुरकुमारों की भावेन्द्रियों की प्ररूपणा की तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि मनुष्य की पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ किसी की होंगी, किसी की नहीं होंगी, इस प्रकार सब पूर्ववत् कहना चाहिए।

सणंकुमार जाव गेवेज्जगस्स जहा णेरइयस्स।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सनत्कुमार से लेकर ग्रैवेयक देव तक की अतीतादि भावेन्द्रियों का कथन नैरयिकों की वक्तव्यता के समान करना चाहिए।

विजय वेजयंत जयंत अपराजियदेवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा पंच, पुरेक्खडा पंच वा दस वा पण्णरस वा संखिज्जा वा। सव्वट्ठसिद्धगदेवस्स अतीता अणंता, बद्धेल्लगा पंच।

भावार्थ - विजय, वैजयन्त, जयन्त एवं अपराजित देव की अतीत भावेन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं, बद्ध पांच हैं और पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ पांच, दस, पन्द्रह या संख्यात होंगी।

सर्वार्थसिद्धदेव की अतीत भावेन्द्रियाँ अनन्त हैं, बद्ध पांच हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! पंच।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ पांच हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक जीव की अपेक्षा अतीत, वर्तमान और भविष्य काल की भावेन्द्रियों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैं -

एक-एक नारकी के नैरयिक ने भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में ५, १०, १५, यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। एक-एक असुरकुमार ने भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में पांच, छह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। इसी तरह नव निकाय, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के एक-एक देवता का कह देना चाहिए। तीसरे देवलोक से नवग्रैवेयक तक में नारकी की तरह कह देना चाहिए। चार अनुत्तर विमान के एक-एक देवता ने भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में ५, १०, १५ यावत् संख्यात होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देवता ने भावेन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त की, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में पांच होंगी। पांच स्थावर तीन विकलेन्द्रिय के एक-एक जीव ने भावेन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में एकेन्द्रिय के एक, बेइन्द्रिय में दो, तेइन्द्रिय में तीन, चउरिन्द्रिय में चार हैं और भविष्य में छह, सात यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी किन्तु पृथ्वी, पानी, वनस्पति में ५, ६, ७ संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी। तिर्यंच पंचेन्द्रिय असुरकुमार की तरह कहना चाहिए। एक-एक संज्ञी मनुष्य ने भावेन्द्रियां अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके पांच छह यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइयाणं भंते! केवइया भाविंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बहुत से नैरयिकों की अतीत भावेन्द्रियाँ कितनी हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! बहुत से नैरयिकों की अतीत भावेन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा?

असंखिज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनकी बद्ध भावेन्द्रियाँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनकी बद्ध भावेन्द्रियाँ असंख्यात हैं।

केवइया पुरेक्खडा?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ कितनी होंगी?

उत्तर - हे गौतम! पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ अनन्त होंगी।

एवं जहा दव्विंदिएसु पोहत्तेणं दंडओ भणिओ तहा भाविंदिएसु वि पोहत्तेणं दंडओ भाणियव्वो, णवरं वणस्सइकाइयाणं बद्धेल्लगा अणंता॥ ४५८॥

भावार्थ - इसी प्रकार जैसे-द्रव्येन्द्रियों में पृथक्त्व बहुवचन से दण्डक कहा है, इसी प्रकार भावेन्द्रियों में भी पृथक्त्व बहुवचन से दण्डक कहना चाहिए। विशेषता यह है कि वनस्पतिकायिकों की बद्ध भावेन्द्रियाँ अनंत हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अनेक जीवों की अपेक्षा अतीत, वर्तमान और भविष्य काल की भावेन्द्रियों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैं -

बहुत से नारकी के नैरयिकों ने भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी व पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के बहुत से देवों ने तथा चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असन्नी मनुष्य के बहुत से जीवों ने भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। वनस्पति काय के बहुत जीवों ने भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में अनन्त हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत से संज्ञी मनुष्य और सर्वार्थसिद्ध के देवों ने भावेन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में मनुष्यों में अनन्त होंगी और सर्वार्थसिद्ध के देवों में संख्यात होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगमेगस्स णं भंते! णेरइयस्स णेरइयत्ते केवइया भाविंदिया अतीता?

गोयमा! अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक-एक नैरयिक की नैरयिकत्व के रूप में कितनी अतीत भावेन्द्रियाँ हुई हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक-एक नैरयिक की नैरयिकत्व के रूप में अतीत भावेन्द्रियाँ अनन्त हुई हैं।

केवइया बद्धेल्लगा? पंच,

पुरेक्खडा कस्सइ अत्थि कस्सइ णत्थि, जस्स अत्थि पंच वा दस वा पण्णरस वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा। एवं असुरकुमाराणं जाव थणियकुमाराणं, णवरं बद्धेल्लगा णत्थि।

भावार्थ - इसकी बद्ध भावेन्द्रियाँ पांच हैं और पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ किसी की होती होंगी, किसी की नहीं होंगी। जिसको होंगी, उसकी पांच, दस, पन्द्रह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगी।

इसी प्रकार एक-एक नैरयिक की असुरकुमारत्व से लेकर यावत् स्तनितकुमारत्व के रूप में अतीतादि भावेन्द्रियों का कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि इसकी बद्ध भावेन्द्रियाँ नहीं है।

पुढविकाइयत्ते जाव बेइंदियत्ते जहा दव्विंदिया।

भावार्थ - एक-एक नैरयिक की पृथ्वीकायत्व से लेकर यावत् बेइन्द्रियत्व के रूप में अतीत आदि भावेन्द्रियों का कथन द्रव्येन्द्रियों की तरह करना चाहिए।

तेइंदियत्ते तहेव, णवरं पुरेक्खडा तिण्णि वा छ वा णव वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

भावार्थ - तेइन्द्रियत्व के रूप में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह कि इसकी पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ तीन, छह, नौ, संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगी।

एवं चउरिंदियत्ते वि, णवरं पुरेक्खडा चत्तारि वा अट्ठ वा बारस वा संखिज्जा वा असंखिज्जा वा अणंता वा।

भावार्थ - इसी प्रकार चउरिन्द्रियत्व के रूप में भी कहना चाहिए। विशेषता यह कि इसकी पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ चार, आठ, बारह, संख्यात, असंख्यात या अनन्त होंगी।

एवं एए चेव गमा चत्तारि जाणेयव्वा जे चेव दव्विंदिएसु, णवरं तइयगमे जाणियव्वा जस्स जइ इंदिया ते पुरेक्खडेसु मुणेयव्वा। चउत्थगमे जहेव दव्विंदिया जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं सव्वट्ठसिद्धगदेवत्ते केवइया भाविंदिया अतीता? गोयमा!

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि, केवइया बद्धेल्लगा? गोयमा! संखिज्जा, केवइया पुरेक्खडा? गोयमा! णत्थि॥ ४५९॥

भावार्थ - इस प्रकार ये द्रव्येन्द्रियों के विषय में कथित ही चार गम यहाँ समझने चाहिए। विशेषता यह है - तृतीय गम (मनुष्य सम्बन्धी अभिलाप) में जिसकी जितनी भावेन्द्रियाँ हों, उनके उतनी भावेन्द्रियाँ पुरस्कृत में समझनी चाहिए। चतुर्थ गम (देवसम्बन्धी अभिलाप) में जिस प्रकार सर्वार्थसिद्ध की सर्वार्थसिद्धत्व के रूप में कितनी भावेन्द्रियाँ अतीत हुई हैं? 'नहीं हुई हैं।' बद्ध भावेन्द्रियाँ संख्यात हैं, पुरस्कृत भावेन्द्रियाँ नहीं होंगी, यहाँ तक कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में द्रव्येन्द्रियों की तरह भावेन्द्रियों का कथन किया गया है। जिस प्रकार द्रव्येन्द्रियों के विषय में नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देव संबंधी ये चार गम (अभिलाप) कहे गए हैं उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिए। एक जीव में परस्पर और अनेक जीवों में परस्पर अतीत, वर्तमान और भविष्य काल की भावेन्द्रियों का वर्णन इस प्रकार है -

एक जीव में परस्पर की अपेक्षा

नारकी के एक-एक नैरयिक ने नैरयिक के रूप में भावेन्द्रियाँ अतीतकाल में अनन्त कीं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी, उसके पांच, दस, पन्द्रह यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। एक-एक नारकी के नैरयिक ने पांच अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, बेइन्द्रिय में २, ४, ६, तेइन्द्रिय में ३, ६, ९, चउरिन्द्रिय में ४, ८, १२ और पंचेन्द्रिय में ५, १०, १५ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। एक-एक नारकी के नैरयिक ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं, भविष्य में नियमपूर्वक ५, १०, १५, यावत् संख्यात, असंख्यात अथवा अनन्त होंगी। एक-एक नारकी के नैरयिक ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान काल में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी और किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके चार अनुत्तर विमान के देवरूप में ५, १० और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में पांच होंगी। एक-एक भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम मनुष्य नारकी की तरह कह देना चाहिए।

पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के एक-एक देव ने पांच अनुत्तर विमान और संज्ञी मनुष्य को छोड़ कर शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में स्वस्थान में पांच हैं, परस्थान में नहीं हैं, भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिय में १, २, ३, बेइन्द्रिय में २, ४, ६, तेइन्द्रिय में ३, ६, ९, चउरिन्द्रिय में ४, ८, १२ और पंचेन्द्रिय में ५, १०, १५ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के एक-एक देवता ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं, उसने चार अनुत्तर विमान के देव रूप में ५ की किन्तु सर्वार्थसिद्ध के देवरूप में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके चार अनुत्तर विमान के देव रूप में पांच या दस होंगी और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में पांच होंगी। पहले देवलोक से नवग्रैवेयक तक के एक-एक देव ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियमपूर्वक पांच, दस, पन्द्रह यावत् संख्यात, असंख्यात, अनन्त होंगी।

चार अनुत्तर विमान के एक-एक देव ने संज्ञी मनुष्य और पांच अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में केवल वैमानिक देव (पांच अनुत्तर विमान को छोड़कर) की अपेक्षा किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके ५, १०, १५, यावत् संख्यात होंगी। शेष स्थानों की अपेक्षा नहीं होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक-एक देव ने स्वस्थान अर्थात् चार अनुत्तर विमान के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने की हैं, उसने पांच की हैं, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके पांच होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक एक देव ने सर्वार्थसिद्ध के देवता के रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में किसी के होंगी किसी के नहीं होंगी। जिसके होंगी उसके पांच होंगी। चार अनुत्तर विमान के एक-एक देव ने संज्ञी मनुष्य के रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नियम पूर्वक पांच दस यावत् संख्यात होंगी।

सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देव ने संज्ञी मनुष्य और अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देव ने चार अनुत्तर के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं जिसने कीं उसने ५ कीं। वर्तमान में नहीं है और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक-एक देव ने सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं की, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के एक एक देव ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नियम पूर्वक पांच होंगी।

एक-एक संज्ञी मनुष्य ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियां अतीत काल में अनन्त की, वर्तमान में पांच हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके ५, १०, १५ यावत् संख्यात,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंख्यात, अनन्त होंगी। एक-एक संज्ञी मनुष्य ने पांच अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में किसी के होंगी, किसी के नहीं होंगी, जिसके होंगी उसके एकेन्द्रिय में १, २, ३, बेइन्द्रिय में २, ४, ६, तेइन्द्रिय में ३, ६, ९ चउरिन्द्रिय में ४, ८, १२ और पंचेन्द्रिय में ५, १०, १५ यावत् संख्यात असंख्यात अनन्त होंगी। एक-एक संज्ञी मनुष्य ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में किसी ने कीं, किसी ने नहीं कीं, जिसने कीं उसने चार अनुत्तर विमान के देव रूप में पांच अथवा दस और सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में पांच कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में अतीत काल की तरह कहना चाहिए।

अनेक जीवों में परस्पर की अपेक्षा

बहुत से नारकी के नैरयिकों ने पांच अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त की, वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा असंख्यात हैं परस्थान की अपेक्षा नहीं हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत से नारकी के नैरयिकों ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं की, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य के भावेन्द्रियाँ नारकी के नैरयिकों की तरह कहना चाहिए। इतनी विशेषता है कि, वनस्पति के जीवों में वर्तमान में स्वस्थान की अपेक्षा अनंत तथा पांच अनुत्तर विमान की अपेक्षा भविष्य में भावेन्द्रियाँ अनन्त कहनी चाहिए।

बहुत संज्ञी मनुष्यों ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में संख्यात हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत संज्ञी मनुष्यों ने पांच अनुत्तर विमान के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त की, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। बहुत संज्ञी मनुष्यों ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में संख्यात की, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी।

पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने नारकी से लेकर नवग्रैवेयक तक के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त की, वर्तमान काल में स्वस्थान की अपेक्षा असंख्यात भावेन्द्रियाँ हैं पर स्थान की अपेक्षा नहीं हैं और भविष्य में अनन्त होंगी। पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के बहुत देवों ने पांच अनुत्तर विमान के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीतकाल में चार अनुत्तर विमान के देव रूप में असंख्यात की, सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में नहीं की, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में पांचों अनुत्तर विमान के देव रूप में असंख्यात होंगी।

चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा भावेन्द्रियाँ अतीत काल में असंख्यात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने सर्वार्थसिद्ध के देव रूप में भावेन्द्रियाँ अतीतकाल में नहीं कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में संख्यात होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने वैमानिक देव और संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। चार अनुत्तर विमान के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य एवं पहले देवलोक से लेकर नवग्रैवेयक तक के देव रूप में भावेन्द्रियां अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में असंख्यात होंगी।

सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने स्वस्थान की अपेक्षा भावेन्द्रियाँ अतीत काल में नहीं कीं, वर्तमान में असंख्यात हैं, भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य के सिवाय शेष सभी स्थानों में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में चार अनुत्तर विमान के देव रूप में संख्यात कीं, शेष स्थानों की अपेक्षा अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में नहीं होंगी। सर्वार्थसिद्ध के बहुत देवों ने संज्ञी मनुष्य रूप में भावेन्द्रियाँ अतीत काल में अनन्त कीं, वर्तमान में नहीं है और भविष्य में असंख्यात होंगी।

द्रव्येन्द्रिय एवं भावेन्द्रिय से सम्बन्धित कुछ तथ्य -

१. द्रव्येन्द्रियाँ आठ एवं भावेन्द्रियाँ पांच ही हैं इसका कारण-दो आंख आदि बाह्य साधन हैं। अन्दर में शक्ति रूप साधन (उपकरण) तो एक ही है। इसके खराब होने पर तो सुना देखा ही नहीं जा सकता है क्योंकि एक कान की शक्ति नाश हो जाने पर दोनों कान से बहरा हो जाता है। यदि शक्ति पर आवरण आ गया हो तो वह तो दूर भी हो सकता है जैसे मोतियाँबिन्द का ऑपरेशन हो सकता है। बेटरी से चलने वाली लाइट के खराब हो जाने पर उसमें फेर बदल किया जा सकता है परन्तु पावर हाऊस में खराबी हो जाने पर तो पूरे लाइट में खराबी हो जाती है।

२. भारण्ड पक्षी के भी आठ द्रव्येन्द्रियाँ ही समझना चाहिये। क्योंकि तिर्यंच्च पंचेन्द्रिय में आठ द्रव्येन्द्रियां ही बताई है। यदि आठ से अधिक भी कहीं बताई हो तो भी वास्तविक द्रव्येन्द्रियाँ तो आठ ही समझना, अधिक को विकृति समझना चाहिये, इसी प्रकार अधिक इन्द्रियों वाले मनुष्यों में भी समझना चाहिये।

३. एकेन्द्रिय में एक भावेन्द्रिय ही बताई है, अतः टीकाकार जो बकुल आदि वृक्षों के पांच भावेन्द्रियां कहते हैं वह आगम से विपरीत है। अन्य ४ स्थावरों की अपेक्षा प्रत्येक शरीरी वनस्पतिकाय में आहार आदि संज्ञाएं स्पष्ट होने से उन्हें यांत्रिक साधनों से नापा जा सकता है।

४. वनस्पतिकाय के बद्धेलग द्रव्येन्द्रिय असंख्याता हैं। भाव इन्द्रियाँ अनन्त बताई गई हैं। एक निगोद वर्ती जीवों के अनन्त जीवों के एक ही औदारिक शरीर होने से द्रव्येन्द्रिय तो एक समझना किन्तु उनके तेजस कार्मण शरीर स्वतंत्र होने से सब जीवों के अलग अलग रूप की अपेक्षा से भावेन्द्रियाँ बताई गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. चार अनुत्तर विमान के देवों के आगे के मनुष्य भवों में आठ एवं सोलह द्रव्येन्द्रियाँ बताई गई है। १६ द्रव्य इन्द्रियाँ मनुष्य मरकर मनुष्य बने उसी में होगी। मनुष्य बनकर मनुष्य बनने वाला मिथ्यात्व में ही आयुष्य बांधा हुआ होता है तथा सर्वार्थ सिद्ध से आकर मनुष्य बने उसमें भी थोड़ी देर के लिए कभी मिथ्यात्व आ जावे तो बाधा नहीं है। इसी कारण से मिथ्यात्वी की आगति में ५ अनुत्तर विमान को लिए हैं।

६. चार अनुत्तर विमान के आगे की द्रव्येन्द्रियाँ ८, १६, २४, यावत् संख्याती बताई है। इस पाठ से उनके अधिकतम आगे के तेरह भव होना स्पष्ट होता है। अनुत्तर विमान में जाने वाले नियमा आराधक ही होते हैं। आराधक १५ भव से ज्यादा नहीं करते हैं। दो भव तो हो गये शेष १३ भव ओर बचे हैं। इन तेरह भवों में बीच के भवों में विराधना के भव भी हो सकते हैं।

७. चौबीस ही दण्डक के जीवों के नवग्रैवेयक देवपने अतीता, अनंती द्रव्येन्द्रियाँ बताई है। इस पाठ से अनन्तबार संयम लिया हुआ सिद्ध होता है। अतः मेरु जितने ओघा आदि लिए ऐसा कहना भी अपेक्षा से ठीक ही है। प्रज्ञापना सूत्र के छठे पद में स्वलिंगी (साधु का वेश वाले) सम्यग्दृष्टि एवं स्वलिंगी मिथ्यादृष्टि जीवों का ही नव ग्रैवेयक में जाना बताया है।

८. चार अनुत्तरविमान के देव असंख्याता होते हुए भी उनके सर्वार्थ सिद्ध देवपने **पुरेक्खडा** संख्याती इन्द्रियाँ ही बताई है। इसका कारण यह है कि चार अनुत्तर विमान वाले सभी देव १३ भवों से अधिक तो करेगें ही नहीं। इतने काल में सर्वार्थ विमान में संख्याता देव ही समा सकते हैं। यदि एक-एक बार में अरबों जीव भी सर्वार्थ सिद्ध में जावें तो भी १३ बार में तो पृच्छा समय वाले चार अनुत्तर विमान वाले देवों का च्यवन होकर वह स्थान खाली हो जायेगा अतः संख्याता इन्द्रियाँ करना ही बताया है।

९. द्रव्येन्द्रियाँ एवं भावेन्द्रियाँ की पृच्छा में मात्र व्यवहार राशि वाले चौबीस ही दण्डकों में अनन्त-अनन्त भव किये हुए जीवों का ही ग्रहण हुआ है। अतः यह पाठ देश-जीवों विषयक है।

॥ बीओ उद्देसो समत्तो ॥

॥ इन्द्रिय पद का दूसरा उद्देशक समाप्त ॥

॥ पण्णवणाए भगवईए पण्णरसमं इंदियपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का पन्द्रहवां इन्द्रिय पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षोडशं (सोलसमं) पओग पयं

सोलहवां प्रयोग पद

पन्द्रहवें पद में मोक्ष का कारण होने से और इन्द्रिय वालों को ही लेश्यादि परिणाम का सद्भाव होने से विशेष रूप से इन्द्रिय परिणाम का कथन किया गया है तत्पश्चात् परिणाम की समानता होने से इस सोलहवें पद में प्रयोग परिणाम का प्रतिपादन किया जाता है। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

प्रयोग के भेद

कइविहे णं भंते! पओगे पण्णत्ते?

गोयमा! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते। तंजहा - सच्च मणप्पओगे १, असच्च मणप्पओगे २, सच्चामोस मणप्पओगे ३, असच्चामोस मणप्पओगे ४, एवं वइप्पओगे वि चउहा ८, ओरालियसरीर कायप्पओगे ९, ओरालियमीससरीर कायप्पओगे १०, वेउव्वियसरीर कायप्पओगे ११, वेउव्वियमीससरीर कायप्पओगे १२, आहारगसरीर कायप्पओगे १३, आहारगमीससरीर कायप्पओगे १४, कम्मासरीर कायप्पओगे १५ ॥ ४६०॥

कठिन शब्दार्थ - पओगे - प्रयोग।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रयोग कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! प्रयोग पन्द्रह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार हैं - १. सत्यमनःप्रयोग २. असत्य (मृषा) मनःप्रयोग ३. सत्य-मृषा (मिश्र) मनःप्रयोग ४. असत्या-मृषा मनःप्रयोग, इसी प्रकार वचन प्रयोग भी चार प्रकार का है - ५. सत्य वचन प्रयोग ६. मृषा वचन प्रयोग ७. सत्यामृषा वचन प्रयोग और ८. असत्यामृषा वचन प्रयोग ९. औदारिक शरीरकाय-प्रयोग १०. औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोग ११. वैक्रिय शरीर काय-प्रयोग १२. वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग १३. आहारक शरीर काय-प्रयोग १४. आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोग और १५. कार्मण शरीर काय-प्रयोग।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पन्द्रह प्रकार के प्रयोगों का कथन किया गया है। 'प्र' उपसर्ग पूर्वक युज् धातु से 'प्रयोग' शब्द बना है। जिसका अर्थ है-आत्मा जिस कारण से प्रकर्ष रूप से क्रियाओं से युक्त या संबंधित हो अथवा साम्परायिक और ईर्यापथ कर्म से संयुक्त-संबद्ध हो, वह प्रयोग कहलाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। अथवा आत्म-प्रदेशों के परिस्पन्दन (कंपन) को प्रयोग कहते हैं अर्थात् वीर्यान्तराय कर्म के क्षय या क्षयोपशम से मन, वचन और कायवर्गणा के पुद्गलों का आलम्बन ले कर आत्म प्रदेशों में होने वाले परिस्पंद, कंपन या हलन-चलन को प्रयोग कहते हैं। भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक १ में प्रयोग के स्थान पर योग शब्द है।

पन्नवणा सूत्र में योग के स्थान पर प्रयोग शब्द है। इन पन्द्रहप्रयोगों को प्रयोगगति भी कहा जाता है जो इस प्रकार है-

१. सत्यमनःप्रयोग - मन का जो व्यापार सत् अर्थात् सज्जन पुरुष या साधुओं के लिये हितकारी हो, उन्हें मोक्ष की ओर ले जाने वाला हो उसे सत्यमनःप्रयोग कहते हैं अथवा जीवादि पदार्थों के अनेकान्त रूप यथार्थ विचार को सत्य मनःप्रयोग कहते हैं।

२. असत्य मनःप्रयोग - सत्य से विपरीत अर्थात् संसार की ओर ले जाने वाले मन के व्यापार को असत्य मनःप्रयोग कहते हैं अथवा जीवादि पदार्थ नहीं हैं, एकान्त सत् हैं इत्यादि एकान्त रूप मिथ्या विचार असत्य मनःप्रयोग है।

३. सत्यमृषा मनःप्रयोग - व्यवहार नय से ठीक होने पर भी निश्चय नय से जो विचार पूर्ण सत्य न हो, जैसे - किसी उपवन में धव, खैर, पलाश आदि के कुछ पेड़ होने पर भी अशोकवृक्ष अधिक होने से उसे अशोक वन कहना। वन में अशोकवृक्षों के होने से यह बात सत्य है और धव आदि के वृक्ष होने से मृषा (असत्य) भी है।

४. असत्यामृषा मनःप्रयोग - जो विचार सत्य नहीं है और असत्य भी नहीं है उसे असत्यामृषा मनःप्रयोग कहते हैं। किसी प्रकार का विवाद खड़ा होने पर वीतराग सर्वज्ञ के बताए हुए सिद्धान्त के अनुसार विचार करने वाला आराधक कहा जाता है उसका विचार सत्य है। जो व्यक्ति सर्वज्ञ के सिद्धान्त से विपरीत विचरता है, जीवादि पदार्थों को एकान्त नित्य आदि बताता है वह विराधक है। उसका विचार असत्य है। जहाँ वस्तु को सत्य या असत्य किसी प्रकार सिद्ध करने की इच्छा न हो केवल वस्तु का स्वरूप मात्र दिखाया जाय, जैसे - देवदत्त! घड़ा लाओ इत्यादि चिन्तन में वहाँ सत्य या असत्य कुछ नहीं होता। आराधक विराधक की कल्पना भी वहाँ नहीं होती। इस प्रकार के विचार को असत्यामृषा मनःप्रयोग कहते हैं। यह भी व्यवहार नय की अपेक्षा है। निश्चय नय से तो इसका सत्य या असत्य में समावेश हो जाता है।

ऊपर लिखे मनःप्रयोग के अनुसार वचन प्रयोग के भी चार भेद हैं - **५. सत्य वचन प्रयोग ६. असत्य वचन प्रयोग ७. सत्यमृषा वचन प्रयोग ८. असत्यामृषा वचन प्रयोग।**

९. औदारिक शरीर काय प्रयोग - काय का अर्थ है समूह। औदारिक शरीर पुद्गल स्कन्धों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समूह है, इसलिए काय है। इसमें होने वाले व्यापार को औदारिक शरीर काय प्रयोग कहते हैं। यह प्रयोग पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्यों के ही होता है।

१०. औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोग - वैक्रिय, आहारक और कार्मण के साथ मिले हुए औदारिक को औदारिक मिश्र कहते हैं। औदारिक मिश्र के व्यापार को औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोग कहते हैं।

११. वैक्रिय शरीर काय प्रयोग - वैक्रिय शरीर पर्याप्ति के कारण पर्याप्त जीवों के होने वाला वैक्रिय शरीर का व्यापार वैक्रिय शरीर काय प्रयोग है।

१२. वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग - देव और नैरयिक जीवों के अपर्याप्त अवस्था में होने वाला काय प्रयोग वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग है। यहाँ वैक्रिय और कार्मण की अपेक्षा मिश्र प्रयोग होता है।

१३. आहारक शरीर काय प्रयोग - आहारक शरीर पर्याप्ति के द्वारा पर्याप्त जीवों को आहारक शरीर काय प्रयोग होता है।

१४. आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोग - जिस समय चौदह पूर्वधारी मुनिराज आहारक लब्धि के द्वारा प्राणी दया आदि प्रयोजनों से आहारक शरीर का निर्माण करते हैं। वह शरीर जब तक पूर्ण रूप से नहीं बनाया जाता है, तब तक अर्थात् आहारक शरीर बनाने के प्रारम्भ समय से लेकर पूर्ण बनने के पूर्व तक की अवस्था को आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोग कहा जाता है।

१५. कार्मण शरीर प्रयोग - विग्रह गति में तथा सयोगी केवली को केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे और पांचवें समय में तैजस कार्मण शरीर प्रयोग होता है। तैजस शरीर और कार्मण शरीर सदा एक साथ रहते हैं, इसलिए उन के सम्मिलित व्यापार रूप काय प्रयोग को भी एक ही माना है।

समुच्चय जीव और चौबीस दण्डकों में प्रयोग

जीवाणं भंते! कइविहे पओगे पण्णत्ते?

गोयमा! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते। तंजहा - सच्च मणप्पओगे जाव कम्मासरीर कायप्पओगे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीवों के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीवों के पन्द्रह प्रकार के प्रयोग कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - सत्य-मनः प्रयोग से लेकर कार्मण शरीर काय-प्रयोग तक।

णेरइयाणं भंते! कइविहे पओगे पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! एक्कारसविहे पओगे पण्णत्ते। तंजहा - सच्च मणप्पओगे जाव असच्चामोस वइप्पओगे, वेउव्वियसरीर कायप्पओगे, वेउव्वियमीससरीर कायप्पओगे, कम्मासरीर कायप्पओगे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के ग्यारह प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १ सत्यमन:प्रयोग यावत् ८ असत्यामृषावचन-प्रयोग, ९ वैक्रिय शरीर काय-प्रयोग, १० वैक्रिय मिश्र शरीर काय-प्रयोग और ११ कार्मण शरीर काय-प्रयोग।

एवं असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमाराणं।

भावार्थ- इसी प्रकार असुरकुमारों से स्तनितकुमारों तक के प्रयोगों के विषय में समझना चाहिए।

पुढविकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! तिविहे पओगे पण्णत्ते। तंजहा - ओरालियसरीर कायप्पओगे, ओरालियमीससरीर कायप्पओगे, कम्मासरीर कायप्पओगे य। एवं जाव वणस्सइकाइयाणं, णवरं वाउकाइयाणं पंचविहे पओगे पण्णत्ते। तंजहा - ओरालियसरीर कायप्पओगे, ओरालियमीससरीर कायप्पओगे, वेउव्विए दुविहे, कम्मासरीर कायप्पओगे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों के तीन प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. औदारिक शरीर काय-प्रयोग २. औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोग और ३. कार्मण शरीर काय-प्रयोग। इसी प्रकार अप्कायिकों से लेकर वनस्पतिकायिकों तक समझना चाहिए। विशेषता यह है कि वायुकायिकों के पांच प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. औदारिक शरीर काय-प्रयोग २. औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोग ३. वैक्रिय शरीर काय-प्रयोग ४. वैक्रिय मिश्र शरीर काय-प्रयोग तथा ५. कार्मण शरीर काय प्रयोग।

बेइंदियाणं पुच्छा?

गोयमा! चउव्विहे पओगे पण्णत्ते। तंजहा - असच्चामोस वइप्पओगे, ओरालियसरीर कायप्पओगे, ओरालियमीससरीर कायप्पओगे, कम्मासरीर कायप्पओगे। एवं जाव चउरिंदियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों के चार प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. असत्यामृषावचन-प्रयोग २. औदारिक शरीर काय-प्रयोग ३. औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोग और ४. कार्मण शरीर काय-प्रयोग। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों के प्रयोग के विषय में समझ लेना चाहिए।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं पुच्छा।

गोयमा! तेरसविहे पओगे पण्णत्ते। तंजहा-सच्चमणप्पओगे, मोसमणप्पओगे, सच्चामोसमणप्पओगे, असच्चामोसमणप्पओगे, एवं वइप्पओगे वि, ओरालिय सरीर कायप्पओगे, ओरालिय मीससरीर कायप्पओगे, वेउव्वियसरीर कायप्पओगे, वेउव्वियमीससरीर कायप्पओगे, कम्मासरीर कायप्पओगे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के तेरह प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. सत्यमनःप्रयोग २. मृषामनःप्रयोग ३. सत्यमृषामनःप्रयोग ४. असत्यामृषामनःप्रयोग ५-८. इसी तरह चार प्रकार का वचनप्रयोग ९. औदारिक शरीर काय-प्रयोग १०. औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोग ११. वैक्रिय शरीर काय-प्रयोग १२. वैक्रिय मिश्र शरीर काय-प्रयोग और १३. कार्मण शरीर काय-प्रयोग।

मणूसाणं पुच्छा।

गोयमा! पण्णरसविहे पओगे पण्णत्ते। तंजहा - सच्चमणप्पओगे जाव कम्मासरीर कायप्पओगे।

वाणमंतरजोइसिय वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं॥ ४६१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के पन्द्रह प्रकार के प्रयोग कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - सत्य-मनःप्रयोग से लेकर कार्मण शरीर काय-प्रयोग तक कह देना चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के प्रयोग के विषय में नैरयिकों के समान समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकों में प्रयोगों की प्ररूपणा की गयी है। समुच्चय जीवों में पन्द्रह ही प्रयोग होते हैं, क्योंकि भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा सदैव पन्द्रह प्रयोग पाये जाते हैं। नैरयिकों में ग्यारह प्रयोग पाए जाते हैं क्योंकि इनमें १. औदारिक २. औदारिक मिश्र ३. आहारक और ४. आहारक मिश्र। ये चार प्रयोग असंभव है। इसी प्रकार भवनपति वाणव्यंतर ज्योतिषी और वैमानिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवों के विषय में समझ लेना चाहिए। इनमें भी ये ११ प्रयोग ही पाये जाते हैं। वायुकाय को छोड़ कर पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रियों में तीन तीन प्रयोग होते हैं - १. औदारिक २. औदारिक मिश्र और ३. कार्मण। वायुकायिकों में पांच प्रयोग होते हैं क्योंकि उनमें वैक्रिय और वैक्रिय मिश्र भी संभव है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रियों में चार-चार प्रयोग होते हैं - १. औदारिक २. औदारिक मिश्र ३. कार्मण और ४. असत्यामृषा भाषा। शेष सत्य आदि भाषा उनमें नहीं होती है क्योंकि **'विगलेसु असच्चमोसेव'**- विकलेन्द्रियों में एक असत्यामृषा भाषा होती है-ऐसा शास्त्र का वचन है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में तेरह प्रयोग होते हैं क्योंकि उनको चौदह पूर्वों का ज्ञान असंभव होने से आहारक और आहारक मिश्र प्रयोग नहीं होते। मनुष्यों में पन्द्रह ही प्रयोग पाये जाते हैं।

समुच्चय जीवों में विभाग से प्रयोग प्ररूपण॥

जीवा णं भंते! किं सच्च मणप्पओगी जाव किं कम्मासरीर कायप्पओगी?

गोयमा! जीवा सव्वे वि ताव होज्जा सच्च मणप्पओगी वि जाव वेउव्वियमीस सरीर कायप्पओगी वि कम्मासरीर कायप्पओगी वि १३। अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य ४ चउभंगो। अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीसासरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीसासरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीसासरीर कायप्पओगिणो य ४, एए जीवाणं अट्ठ भंगा १॥ ४६२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव सत्यमनःप्रयोगी होते हैं अथवा यावत् कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! १. जीव सभी सत्यमनःप्रयोगी भी होते हैं, यावत् मृषामनःप्रयोगी, सत्यमृषामनः प्रयोगी, असत्यामृषामनःप्रयोगी आदि तथा वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोगी भी एवं कार्मण शरीर काय प्रयोगी भी इस प्रकार तेरह पदों के वाच्य होते हैं, १. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी होता है २. अथवा बहुत-से आहारक शरीर काय प्रयोगी होते हैं ३. अथवा एक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी होता है ४. अथवा बहुत-से जीव आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी होते हैं।-ये चार भंग हुए। तेरह पदों वाले प्रथम भंग की इनके साथ गणना की जाए तो पांच भंग हो जाते हैं। द्विकसंयोगी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार भंग - १. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी २. अथवा एक आहारक शरीर काय प्रयोगी और बहुत-से आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी ३. अथवा बहुत-से आहारक शरीर काय प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी ४. अथवा बहुत से आहारक शरीर कायप्रयोगी और बहुत से आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी। ये समुच्चय जीवों के प्रयोग की अपेक्षा से आठ भंग हुए। इनमें प्रथम भंग को मिलाने से नौ भंग होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में समुच्चय जीवों में प्रयोग की अपेक्षा से पाए जाने वाले आठ भंगों का निरूपण किया गया है। समुच्चय जीवों में आहारक और आहारक मिश्र को छोड़ कर शेष १३ पदों का एक भंग होता है। तात्पर्य यह है कि सदैव बहुत से जीव सत्यमन प्रयोग वाले, असत्यमन प्रयोग वाले यावत् वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग वाले और कार्मण शरीरकाय प्रयोग वाले भी होते हैं। नैरयिक जीव व देव सदैव उपपात के अर्न्तमुहूर्त्त पश्चात् उत्तर वैक्रिय प्रारंभ कर देते हैं इसलिए वे नैरयिक व देव सदैव वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग वाले भी होते हैं तथा वे कार्मण शरीर काय प्रयोग वाले भी हमेशा होते हैं क्योंकि वनस्पति आदि के जीव विग्रह गति से अवान्तर गति में निरन्तर होते हैं किन्तु आहारक शरीरी कदाचित् सर्वथा नहीं पाए जाते क्योंकि उनका अन्तर उत्कृष्ट छह मास तक का संभव है। कहा भी है -

आहारगाइं लोए छम्मासे जा न होंति वि कयाई।
उक्कोसेण नियमा, एक्कं समयं जहण्णेणं॥ १॥
होंताइं जहण्णेणं इक्कं दो तिन्नि पंच व हवंति।
उक्कोसेणं जुगवं पुहुत्तमेत्तं सहस्साणं॥ २॥

अर्थात् - लोक में आहारक शरीरी जघन्य एक समय तक नहीं होते और कदाचित् उत्कृष्ट छह मास तक अवश्य नहीं होते और जब होते हैं तब जघन्य एक, दो, तीन, पांच आदि होते हैं उत्कृष्ट एक साथ सहस्र पृथक्त्व (अनेक हजार) होते हैं इसलिए जब आहारक शरीरकाय प्रयोगी और आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी एक भी नहीं पाया जाता तब बहुत जीवों की अपेक्षा से तेरह पदों वाला प्रथम भंग होता है क्योंकि उक्त तेरह पदों (प्रयोगों) वाले जीव सदैव बहुत पाये जाते हैं। शेष आठ भंग इस प्रकार होते हैं - १. आहारक प्रयोग वाला एक २. आहारक प्रयोग वाले बहुत ३. आहारक मिश्र प्रयोग वाला एक ४. आहारक मिश्र प्रयोग वाले बहुत। ५. आहारक प्रयोग वाला एक आहारक मिश्र प्रयोग वाला एक ६. आहारक प्रयोग वाला एक आहारक मिश्र प्रयोग वाले बहुत ७. आहारक के प्रयोग वाले बहुत आहारक मिश्र प्रयोग वाला एक ८. आहारक प्रयोग वाले बहुत आहारक मिश्र प्रयोग वाले बहुत।

णेरइया णं भंते! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मासरीर कायप्पओगी ११?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णेरइया सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगी वि जाव वेउव्वियमीसासरीर कायप्पओगी वि, अहवेगे य कम्मासरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य कम्मासरीर कायप्पओगिणो य २। एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमाराणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक सत्यमन:प्रयोगी होते हैं, अथवा यावत् कार्मण शरीर काय प्रयोगी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सभी नैरयिक सत्यमन:प्रयोगी भी होते हैं, यावत् वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोगी भी होते हैं १. अथवा कोई एक नैरयिक कार्मण शरीर काय प्रयोगी होता है २. अथवा कोई अनेक नैरयिक कार्मण शरीर काय प्रयोगी होते हैं।

इसी प्रकार असुरकुमारों की भी यावत् स्तनितकुमारों की प्रयोग प्ररूपणा करनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों और भवनपति देवों में पाये जाने वाले तीन भंगों की प्ररूपणा की गयी है। नैरयिकों में सत्य मन प्रयोग वाले से लेकर वैक्रिय मिश्र काय प्रयोग वाले पर्यन्त दस पद (प्रयोग) सदैव बहुवचन से पाए जाते हैं। यह प्रथम भंग हुआ।

शंका - वैक्रिय मिश्र शरीरकाय प्रयोग वाले हमेशा कैसे पाते हैं? क्योंकि नरक गति का उपपात विरह काल बारह मुहूर्त्त का है?

समाधान - यह कथन उत्तर वैक्रिय की अपेक्षा से कहा गया है जो इस प्रकार है - यद्यपि नरक गति के उपपात का विरह काल बारह मुहूर्त्त का है किन्तु उस समय भी उत्तर वैक्रिय शरीर का आरंभ करने वाले संभव है और उत्तरवैक्रिय के प्रारंभ में भवधारणीय वैक्रिय से मिश्र होता है क्योंकि वैक्रिय शरीर के सामर्थ्य से उत्तर वैक्रिय का आरंभ किया जाता है। भवधारणीय शरीर के प्रवेश में भी उत्तर वैक्रिय से मिश्र होता है क्योंकि उत्तर वैक्रिय के बल से भवधारणीय शरीर में प्रवेश करता है इसलिये उत्तर वैक्रिय की अपेक्षा से भवधारणीय और उत्तर वैक्रिय मिश्र का संभव होने से उस समय भी वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग वाले नैरयिक होते हैं। कार्मण शरीर काय प्रयोग वाले नैरयिक कदाचित् एक भी नहीं होते हैं क्योंकि बारह मुहूर्त्त का उपपात विरहकाल होता है। जब कार्मण शरीर काय प्रयोग वाले होते हैं तब जघन्य से एक, दो और उत्कृष्ट असंख्यात होते हैं। इसलिए जब कार्मण शरीर काय प्रयोग वाला एक भी नैरयिक नहीं होता है तब प्रथम भंग, जब एक होता है तब द्वितीय भंग और जब कार्मण शरीरकाय प्रयोगी बहुत से होते है तब तृतीय भंग होता है।

असुरकुमार आदि दस भवनपति देवों में भी इसी प्रकार तीन भंग समझ लेने चाहिए।

पुढविकाइया णं भंते! किं ओरालिय सरीर कायप्पओगी ओरालिय मीसासरीर कायप्पओगी कम्मासरीर कायप्पओगी?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पुढविकाइया ओरालियसरीर कायप्पओगी वि ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी वि कम्मासरीर कायप्पओगी वि, एवं जाव वणस्सइकाइयाणं। णवरं वाउक्काइया वेउव्वियसरीर कायप्पओगी वि वेउव्विय मीसासरीर कायप्पओगी वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव क्या औदारिक शरीर काय-प्रयोगी हैं, औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी हैं अथवा कार्मण शरीर काय-प्रयोगी हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव औदारिक शरीर काय-प्रयोगी भी होते हैं, औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी भी होते हैं और कार्मण शरीर काय-प्रयोगी भी होते हैं।

इसी प्रकार अप्कायिक जीवों से लेकर वनस्पतिकायिकों तक प्रयोग सम्बन्धी वक्तव्यता कह देनी चाहिए। विशेषता यह है कि वायुकायिक वैक्रिय शरीर काय-प्रयोगी भी हैं और वैक्रिय मिश्र शरीर काय-प्रयोगी भी हैं।

बेइंदिया णं भंते! किं ओरालिय सरीर कायप्पओगी जाव कम्मासरीर कायप्पओगी?

गोयमा! बेइंदिया सव्वे वि ताव होज्जा असच्चामोसवइप्पओगी वि ओरालियसरीर कायप्पओगी वि ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी वि अहवेगे य कम्मासरीर कायप्पओगी य अहवेगे य कम्मासरीर कायप्पओगिणो य, एवं जाव चउरिंदिया वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव क्या औदारिक शरीर काय प्रयोगी होते हैं, अथवा यावत् कार्मण शरीर काय प्रयोगी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सभी बेइन्द्रिय जीव असत्यामृषा वचन प्रयोगी भी होते हैं, औदारिक शरीर काय प्रयोगी भी होते हैं, औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी भी होते हैं। १. अथवा कोई एक बेइन्द्रिय जीव कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है २. या बहुत-से बेइन्द्रिय जीव कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं।

तेइन्द्रियों एवं चउरिन्द्रियों की प्रयोग सम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकेन्द्रिय और तीन विकलेन्द्रिय जीवों की एकवचन बहुवचन की अपेक्षा प्रयोग संबंधी वक्तव्यता कही गई है।

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पतियों में औदारिक शरीरकाय प्रयोग वाले, औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोग वाले और कार्मण शरीर काय प्रयोग वाले सदैव बहुत पाये जाते हैं। अतः प्रत्येक में तीन पदों के बहुवचन रूप एक ही भंग होता है। वायुकायिकों में औदारिक द्विक, वैक्रिय द्विक और कार्मण शरीर इन पांच पदों का बहुवचन रूप एक भंग होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेइन्द्रिय जीवों में उपपात का विरह काल अन्तर्मुहूर्त्त जितना है किन्तु उपपात के विरहकाल का अन्तर्मुहूर्त्त छोटा होता है और औदारिक मिश्र का अंतर्मुहूर्त्त उससे बड़ा होता है अतः उनमें औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोगी भी सदैव होते हैं। कार्मण शरीर काय प्रयोगवाला जीव तो कदाचित् एक भी नहीं होता है क्योंकि उनका उपपात विरहकाल अन्तर्मुहूर्त्त का होता है। जब होते हैं तब जघन्य से एक, दो उत्कृष्ट असंख्यात होते हैं। इसलिये जब एक भी कार्मण शरीर काय प्रयोगी नहीं होता है तब प्रथम भंग बनता है। जब एक कार्मण शरीरी होता है तब द्वितीय भंग बनता है और जब बहुत से कार्मण शरीरी होते हैं तब तीसरा भंग पाया जाता है। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया जहा णेरइया, णवरं ओरालियसरीर कायप्पओगी वि, ओरालियमीसा सरीर कायप्पओगी वि, अहवेगे य कम्मासरीर कायप्पओगी य, अहवेगे य कम्मासरीर कायप्पओगिणो य॥ ४६३॥

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों की प्रयोग सम्बन्धी वक्तव्यता नैरयिकों की प्रयोगवक्तव्यता के समान कहना चाहिए। विशेषता यह है कि एक पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक औदारिक शरीर काय-प्रयोगी भी होता है तथा औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी भी होता है। १. अथवा कोई एक पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक कार्मण शरीर काय प्रयोगी भी होता है, २. अथवा बहुत से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव कार्मण शरीर काय-प्रयोगी भी होते हैं।

विवेचन - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का प्रयोग विषयक कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि ये औदारिक और औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोग वाले भी होते हैं। कार्मण शरीर काय प्रयोग वाला कभी कभी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में एक भी नहीं पाया जाता क्योंकि उनके उपपात का विरह काल अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण कहा गया है। जब कार्मण शरीर काय प्रयोग वाला एक भी नहीं होता तब प्रथम भंग होता है। जब कार्मण शरीर काय प्रयोगी एक होता है तब दूसरा भंग और जब कार्मण शरीर काय प्रयोगी बहुत होते हैं तब तीसरा भंग होता है।

मणूसा णं भंते! किं सच्चमणप्पओगी जाव किं कम्मासरीर कायप्पओगी?

गोयमा! मणूसा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओगी वि जाव ओरालिय सरीर कायप्पओगी वि, वेउव्विय सरीर कायप्पओगी वि, वेउव्वियमीस सरीर कायप्पओगी वि, अहवेगे य ओरालियमीस सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालियमीस सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य ४, अहवेगे य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५, अहवेगे य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य ६, अहवेगे य कम्मग सरीर कायप्पओगी य ७, अहवेगे य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य ८, एए अट्ठ भंगा पत्तेयं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य क्या सत्यमनःप्रयोगी अथवा यावत् कार्मण शरीर काय प्रयोगी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य सत्यमनःप्रयोगी यावत् औदारिक शरीर काय-प्रयोगी भी होते हैं, वैक्रिय शरीर काय-प्रयोगी भी होते हैं और वैक्रिय मिश्र शरीर काय-प्रयोगी भी होते हैं। १. अथवा कोई एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होता है, २. अथवा अनेक मनुष्य औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं, ३. अथवा कोई एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी होता है, ४. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी होते हैं, अथवा ५. कोई एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होता है, ६. अथवा अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं, ७. अथवा कोई एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, ८. अथवा अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार एक-एक के संयोग से ये आठ भंग होते हैं।

विवेचन - असंयोगी आठ भंग इस प्रकार हैं - १. औदारिक मिश्र एक २. औदारिक मिश्र बहुत ३. आहारक एक ४. आहारक बहुत ५. आहारक मिश्र एक ६. आहारक मिश्र बहुत ७. कार्मण एक ८. कार्मण बहुत।

अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य ४ एवं एए चत्तारि भंगा, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य ओरालिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य ४ एए चत्तारि भंगा, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य ४ चत्तारि भंगा, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य ४ चउरो भंगा, अहवेगे य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य ४ चउरो भंगा, एवं चउव्वीसं भंगा।

भावार्थ - १. अथवा कोई एक मनुष्य औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोगी और एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी होता है, २. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ३. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी होता है, ४. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक शरीर काय प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार ये चार भंग होते हैं।

१. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी, २. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी हैं, ३. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होता है, ४. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। ये द्विकसंयोगी चार भंग होते हैं।

१. अथवा कोई एक मनुष्य औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीरक प्रयोगी होता है २. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोगी होते हैं ३. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, ४. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। ये चार भंग होते हैं।

१. अथवा एक आहारक शरीर काय प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी होता है २. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं, ३. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होता है, ४. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार ये चार भंग होते हैं।

१. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, २. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ३. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ४. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार ये चार भंग होते हैं।

१. अथवा आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, २. अथवा एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं, ३. अथवा अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय प्रयोगी होता है, ४. अथवा अनेक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगी होते हैं। ये चार भंग होते हैं। इस प्रकार द्विकसंयोगी कुल चौबीस भंग हुए।

विवेचन - दो संयोगी चौबीस भंग इस प्रकार होते हैं -

१. औदारिक मिश्र का एक, आहारक का एक २. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के बहुत ३. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक ४. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत ५. औदारिक मिश्र का एक, आहारक मिश्र का एक ६. औदारिक मिश्र का एक, आहारक मिश्र के बहुत ७. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक मिश्र का एक ८. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत ९. औदारिक मिश्र का एक, कार्मण का एक १०. औदारिक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत ११. औदारिक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक १२. औदारिक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत १३. आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक १४. आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत १५. आहारक के बहुत, आहारक मिश्र का एक १६. आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत १७. आहारक का एक, कार्मण का एक १८. आहारक का एक, कार्मण के बहुत १९. आहारक के बहुत, कार्मण का एक २०. आहारक के बहुत, कार्मण के बहुत २१. आहारक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिश्र का एक, कार्मण का एक २२. आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत २३. आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक २४. आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य ४, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य ५ अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य ६, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य ७, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य ८ एए अट्ठ भंगा, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य कम्मगसरीर कायप्पओगिणो य ४, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर-कायप्पओगिणो य आहारगसरीर कायप्पओगी य कम्मगसरीरकायप्पओगी य ५, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य ६, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर कायप्पओगी य ७, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कायप्पओगिणो य ८, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य ४, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य ५, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगी य ६, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर कायप्पओगी य ७, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य ८, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मग सरीर कायप्पओगी य ३ अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य ४, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ५, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मग सरीर कायप्पओगिणो य ६, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ७, अहवेगे य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य ८। एवं एए तियसंजोएणं चत्तारि अट्ठ भंगा, सव्वे वि मिलिया बत्तीसं भंगा जाणियव्वा ३२।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - १. अथवा एक औदारिक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होता है २. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी होते हैं ३. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होता है ४. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ५. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होता है ६. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ७. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी होता है ८. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार ये आठ भंग होते हैं।

१. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है २. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ३. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, ४. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ५. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ६. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं, ७. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, ८. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार ये आठ भंग होते हैं।

१. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, २. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं, ३. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ४. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं, ५. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ६. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ७. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ८. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। ये ८ भंग होते हैं।

१. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है २. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ३. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ४. अथवा एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी, होते हैं ५. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ६. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ७. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ८. अथवा अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार त्रिकसंयोग से ये चार अष्टभंग होते हैं। ये सब मिल कर कुल बत्तीस भंग जान लेने चाहिए।

विवेचन - तीन संयोगी बत्तीस भंग इस प्रकार हैं - १. औदारिक मिश्र का एक, आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक २. औदारिक मिश्र का एक, आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत। ३. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र का एक ४. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत ५. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक ६. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत ७. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र का एक ८. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत ९. औदारिक मिश्र का एक, आहारक का एक, कार्मण का एक १०. औदारिक मिश्र का एक,आहारक का एक, कार्मण के बहुत ११. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के बहुत, कार्मण का एक १२. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के बहुत, कार्मण के बहुत १३. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक, कार्मण का एक १४. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक, कार्मण के बहुत १५. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, कार्मण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का एक १६. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, कार्मण के बहुत १७. औदारिक मिश्र का एक, आहारक मिश्र का एक, कार्मण का एक १८. औदारिक मिश्र का एक, आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत १९. औदारिक मिश्र का एक, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक २०. औदारिक मिश्र का एक, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत २१. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक मिश्र का एक, कार्मण का एक २२. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत २३. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक २४. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत २५. आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक, कार्मण का एक २६. आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत २७. आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक २८. आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत २९. आहारक के बहुत, आहारक मिश्र का एक, कार्मण का एक ३०. आहारक के बहुत, आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत ३१. आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक ३२. आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगी य १, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य २, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ३, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य ४, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ५, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य ६, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ७, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगी य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य ८, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ९, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य १०, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगी य ११, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगी य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य १२, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगी य १३, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगी य कम्मा सरीर कायप्पओगिणो य १४, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पओगी य १५, अहवेगे य ओरालिय मीससरीर कायप्पओगिणो य आहारग सरीर कायप्पओगिणो य आहारग मीससरीर कायप्पओगिणो य कम्मा सरीर कायप्पोगिणो य १६ एवं एए चउसंजोएणं सोलस भंगा भवंति, सव्वेवि य णं संपिंडिया असीइं भंगा भवंति।

वाणमंतर जोइसवेमाणिया जहा असुरकुमारा॥ ४६४॥

भावार्थ - १. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, २. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ३. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ४. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ५. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है ६. अथवा एक औदारिक मिश्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ७. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, ८. अथवा एक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ९. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है, १०. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं ११. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है १२. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं १३. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है १४. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, एक आहारक मिश्र शरीरकाय प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं १५. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और एक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होता है १६. अथवा अनेक औदारिक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक शरीर काय-प्रयोगी, अनेक आहारक मिश्र शरीर काय-प्रयोगी और अनेक कार्मण शरीर काय-प्रयोगी होते हैं। इस प्रकार चतुःसंयोगी ये सोलह भंग होते हैं तथा ये सभी-असंयोगी ८, द्विकसंयोगी २४, त्रिकसंयोगी ३२ और चतुःसंयोगी १६ मिलकर-अस्सी भंग होते हैं॥

वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के प्रयोग असुरकुमार देवों के प्रयोग के समान समझना चाहिए।

विवेचन - चार संयोगी सोलह भंग इस प्रकार हैं -

१. औदारिक मिश्र का एक, आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक, कार्मण का एक २. औदारिक मिश्र का एक, आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत ३. औदारिक मिश्र का एक, आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक ४. औदारिक मिश्र का एक, आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत ५. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुत, आहारक मिश्र का एक, कार्मण का एक ६. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत ७. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक ८. औदारिक मिश्र का एक, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत ९. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक, कार्मण का एक १०. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत ११. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक १२. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक का एक, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत १३. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र का एक, कार्मण का एक १४. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र का एक, कार्मण के बहुत १५. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण का एक १६. औदारिक मिश्र के बहुत, आहारक के बहुत, आहारक मिश्र के बहुत, कार्मण के बहुत।

इस प्रकार असंयोगी ८, दो संयोगी २४, तीन संयोगी ३२ और चार संयोगी १६ ये सब मिल कर अस्सी भंग होते हैं।

प्रस्तुत सूत्र में इन ८० भंगों द्वारा मनुष्यों में पाये जाने वाले प्रयोगों की प्ररूपणा की गयी है। मनुष्यों में चार मन के, चार वचन के, औदारिक योग और वैक्रिय द्विक रूप ११ पद सदैव बहुवचन युक्त होते हैं एवं शाश्वत पाये जाते हैं।

शंका - वैक्रिय मिश्र शरीर काय प्रयोग वाले हमेशा कैसे पाये जाते हैं?

समाधान - विद्याधरों, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव एवं प्रतिवासुदेवों आदि की अपेक्षा वैक्रिय-मिश्र शरीर काय प्रयोग वाले सदैव पाये जाते हैं क्योंकि विद्याधरों आदि और इनके अलावा कितनेक मिथ्यादृष्टि आदि वैक्रिय लब्धि वाले अन्य अन्य अभिप्राय से सदैव विकुर्वणा करते पाये जाते हैं। इस संबंध में मूल टीकाकार कहते हैं - "**मनुष्या वैक्रिय मिश्र शरीर प्रयोगिणः, सदैव विद्याधरादीनां विकुर्वणा भावाद्**"। मनुष्यों में औदारिकमिश्र शरीरकाय प्रयोग वाले और कार्मण शरीर काय प्रयोग वाले कदाचित् सर्वथा नहीं होते, क्योंकि उनका उपपात विरह काल बारह मुहूर्त्त का होता है। आहारक शरीर काय प्रयोगी और आहारक मिश्र शरीरकाय प्रयोगी भी सदैव नहीं पाये जाते, कभी-कभी ही होते हैं। अतः औदारिक मिश्र आदि चार प्रयोगों के अभाव में शेष ११ पदों का बहुवचन रूप एक भंग शाश्वत पाया जाता है।

गति प्रपात के भेद-प्रभेद

कइविहे णं भंते! गइप्पवाए पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पंचविहे गइप्पवाए पण्णत्ते। तंजहा - पओग गई १, तत गई २, बंधणछेयण गई ३, उववाय गई ४, विहाय गई ५।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गतिप्रपात कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गतिप्रपात पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. प्रयोग गति २. तत गति ३. बन्धनछेदन गति ४. उपपात गति और ५. विहायो गति।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में गति प्रपात का प्रतिपादन किया गया है। गति का अर्थ है - गमन या प्राप्ति। प्राप्ति दो प्रकार की कही गयी है - १. देशान्तर और २. पर्यायान्तर। एक देश से दूसरे देश को प्राप्त होना या एक पर्याय का त्याग कर दूसरे पर्याय को प्राप्त होना गति है। गति का प्रपात गतिं प्रपात कहलाता है। गति प्रपात के प्रयोग गति आदि पांच भेद बताये गये हैं।

से किं तं पओग गई?

पओगगई पण्णरसविहा पण्णत्ता। तंजहा - सच्चमणप्पओगगई, एवं जहा पओगो भणिओ तहा एसा वि भाणियव्वा। जाव कम्मग सरीरं कायप्पओग गई।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रयोग गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्रयोग गति पन्द्रह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है - सत्यमनःप्रयोग गति यावत् कार्मण शरीर कायप्रयोग गति। जिस प्रकार प्रयोग पन्द्रह प्रकार का कहा गया है, उसी प्रकार यह गति भी पन्द्रह प्रकार की कहनी चाहिए।

विवेचन - प्रयोग रूप गति प्रयोग गति है। प्रयोग के पन्द्रह भेदों के अनुसार प्रयोगगति भी पन्द्रह प्रकार की है। यह देशान्तर प्राप्ति रूप है।

जीवाणं भंते! कइविहा पओगगई पण्णत्ता?

गोयमा! पण्णरसविहा पण्णत्ता। तंजहा - सच्चमणप्पओगगई जाव कम्मग सरीर कायप्पओगगई।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीवों की प्रयोग गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जीवों की प्रयोग गति पन्द्रह प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है - सत्यमनःप्रयोग गति यावत् कार्मण शरीर प्रयोग गति।

णेरइयाणं भंते! कइविहा पओगगई पण्णत्ता?

गोयमा! एक्कारसविहा पण्णत्ता। तंजहा - सच्चमणप्पओग गई, एवं उवउज्जिऊण जस्स जइविहा तस्स तइविहा भाणियव्वा जाव वेमाणियाणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - उवउज्जिऊण - उपयोग लगा करके।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की कितने प्रकार की प्रयोग गति कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की प्रयोग गति ग्यारह प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है- सत्यमनःप्रयोगगति इत्यादि। इस प्रकार उपयोग करके असुरकुमारों से लेकर वैमानिक पर्यन्त जिसकी जितने प्रकार की गति है, उसकी उतने प्रकार की गति कहनी चाहिए।

जीवा णं भंते! सच्चमणप्पओगगई जाव कम्मगसरीर कायप्पओगगई?

गोयमा! जीवा सव्वे वि ताव होज्जा सच्चमणप्पओग गई वि, एवं तं चेव पुव्ववण्णियं भाणियव्वं, भंगा तहेव जाव वेमाणियाणं, से तं पओग गई १॥ ४६५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव क्या सत्यमनःप्रयोग गति वाले हैं, अथवा यावत् कार्मण शरीर काय प्रयोगगति वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव सभी सत्यमनः प्रयोग गति वाले भी होते हैं यावत् कार्मण शरीर काय प्रयोगी भी होते हैं इत्यादि पूर्ववत् कह देना चाहिए। उसी प्रकार पूर्ववत् नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक कहना चाहिए। यह प्रयोग गति की प्ररूपणा हुई।

से किं तं तत गई?

तत गई जे णं जे गामं वा जाव सण्णिवेसं वा संपट्ठिए असंपत्ते अंतरापहे वट्टइ, से त्तं तत गई २॥ ४६६॥

कठिन शब्दार्थ-संपट्ठिए-प्रस्थान किया हुआ, **असंपत्ते**-पहुँचा नहीं है, **अंतरापहे**-बीच मार्ग में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह तत गति किस प्रकार की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! तत गति वह है, जिसके द्वारा जिस ग्राम यावत् सन्निवेश के लिए प्रस्थान किया हुआ व्यक्ति अभी पहुँचा नहीं, बीच मार्ग में ही है। यह तत गति का स्वरूप है।

विवेचन - तत का अर्थ विस्तीर्ण है। विस्तीर्ण जो गति है वह तत गति है। कोई व्यक्ति किसी गांव या नगर के लिए रवाना हुआ। उसने अपना स्थान छोड़ दिया है और गंतव्य स्थान पर नहीं पहुँचा है, रास्ते में चल रहा है। उसके एक-एक कदम चलने पर देशान्तर प्राप्ति रूप गति हो रही है। यही तत गति कही गयी है।

से किं तं बंधणछेयण गई?

बंधणछेयणगई जे णं जीवो वा सरीराओ सरीरं वा जीवाओ, सेत्तं बंधणछेयण गई ३॥ ४६७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह बन्धन छेदन गति क्या है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! बन्धन छेदन गति वह है, जिसके द्वारा जीव शरीर से बन्धन तोड़ कर बाहर निकालता है अथवा शरीर जीव से पृथक् होता है। यह बन्धन छेदन गति का निरूपण हुआ।

विवेचन - बन्धन के छेदन से जो गति होती है वह बन्धन छेदन गति है। जीव से मुक्त शरीर की और शरीर से पृथक् हुए जीव की बन्धन छेदन गति होती है।

से किं तं उववाय गई?

उववायगई तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - खेत्तोववाय गई, भवोववाय गई, णोभवोववाय गई।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपपात गति कितने प्रकार की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! उपपात गति तीन प्रकार की कही गई हैं, वह इस प्रकार हैं - १. क्षेत्रोपपात गति २, भवोपपात गति और ३. नोभवोपपात गति।

विवेचन - उपपात का अर्थ है प्रादुर्भाव, उत्पत्ति। क्षेत्र, भव और नोभव के भेद से उपपात तीन प्रकार का कहा गया है। क्षेत्र का अर्थ है - आकाश - जहाँ नैरयिक आदि जीव, सिद्ध और पुद्गल रहते हैं। भव का अर्थ है - कर्म के संबंध से उत्पन्न जीव की नैरयिक आदि पर्याय। क्योंकि **'भवन्ति अस्मिन्'**-जिसमें कर्म के वश हुए प्राणी उत्पन्न होते हैं वह भव है। नो भव अर्थात् भव रहित यानी कर्म संबंध से प्राप्त नैरयिक आदि पर्याय से रहित पुद्गल अथवा सिद्ध नो भव है। उपपात रूप गति उपपात गति कहलाती है।

से किं तं खेत्तोववाय गई?

खेत्तोववाय गई पंचविहा पण्णत्ता। तंजहा - णेरइय खेत्तोववाय गई १, तिरिक्ख जोणिय खेत्तोववाय गई २, मणूस खेत्तोववाय गई ३, देव खेत्तोववाय गई ४, सिद्ध खेत्तोववाय गई ५।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्षेत्रोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! क्षेत्रोपपात गति पांच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है -१. नैरयिक क्षेत्रोपपात गति २. तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति ३. मनुष्य क्षेत्रोपपात गति ४. देव क्षेत्रोपपात गति और ५. सिद्ध क्षेत्रोपपात गति।

से किं तं णेरइय खेत्तोववाय गई?

णेरइय खेत्तोववाय गई सत्तविहा पण्णत्ता। तंजहा - रयणप्पभा पुढवि णेरइय खेत्तोववाय गई जाव अहेसत्तमा पुढवि णेरइय खेत्तोववाय गई। से त्तं णेरइय खेत्तोववाय गई १।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक क्षेत्रोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक क्षेत्रोपपात गति सात प्रकार की कही गई है - रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक क्षेत्रोपपात गति यावत् अधस्तनसप्तमपृथ्वी नैरयिक क्षेत्रोपपात गति। यह नैरयिक क्षेत्रोपपात गति की प्ररूपणा हुई।

से किं तं तिरिक्खजोणिय खेत्तोववाय गई?

तिरिक्खजोणिय खेत्तोववाय गई पंचविहा पण्णत्ता। तंजहा - एगिंदिय तिरिक्ख जोणिय खेत्तोववाय गई जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिय खेत्तोववाय गई। से त्तं तिरिक्ख जोणिय खेत्तोववाय गई २।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति पांच प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार है- १. एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति २. बेइन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति ३. तेइन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति ४. चतुरिन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति और ५. पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति। यह तिर्यंच योनिक क्षेत्रोपपात गति का निरूपण हुआ।

से किं तं मणूस खेत्तोववाय गई?

मणूस खेत्तोववाय गई दुविहा पण्णत्ता, तंजहा - संमुच्छिम मणूस खेत्तोववाय गई, गब्भवक्कंतिय मणूस खेत्तोववाय गई। से त्तं मणूस खेत्तोववाय गई ३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह मनुष्य क्षेत्रोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य क्षेत्रोपपात गति दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है - १. सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-क्षेत्रोपपात गति और २. गर्भज-मनुष्य-क्षेत्रोपपात गति। यह मनुष्य क्षेत्रोपपात गति का प्रतिपादन हुआ।

से किं तं देव खेत्तोववाय गई?

देव खेत्तोववाय गई चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा - भवणवई खेत्तोववाय गई जाव वेमाणिय देव खेत्तोववाय गई। से त्तं देव खेत्तोववाय गई ४॥ ४६८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह देव क्षेत्रोपपात गति कितने प्रकार की है?

उत्तर - हे गौतम! देव क्षेत्रोपपात गति चार प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार हैं - १. भवनपति देव क्षेत्रोपपात गति २. वाणव्यन्तर देव क्षेत्रोपपात गति ३. ज्योतिषी देव क्षेत्रोपपात गति और ४. वैमानिक देव क्षेत्रोपपात गति। यह देव क्षेत्रोपपात गति का निरूपण हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं सिद्ध खेत्तोववाय गई?

सिद्ध खेत्तोववाय गई अणेगविहा पण्णत्ता। तंजहा-जंबुद्दीवे दीवे भरहेरवयवासे सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे चुल्लहिमवंत सिहरिवासहर पव्वय सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे हेमवय हेरण्णवयवास सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे सद्दावइ वियडावइ वट्टवेयड्ढ सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे महाहिमवंत रुप्पि वासहरपव्वय सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे हरिवास रम्मगवास सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे गंधावाइ मालवंत पव्वय वट्टवेयड्ढ सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे णिसह णीलवंत वासहरपव्वय सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे पुव्व विदेह अवरविदेह सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे देवकुरु उत्तरकुरु सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, जंबुद्दीवे दीवे मंदरपव्वयस्स सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, लवणे समुद्दे सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, धायइसंडे दीवे पुरिमद्ध पच्चत्थिमद्ध मंदरपव्वय सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, कालोय समुद्दे सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, पुक्खरवर दीवद्धपुरत्थिमद्ध भरहेरवयवास सपक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, एवं जाव पुक्खरवर दीवद्ध पच्छिमद्ध मंदर पव्वयस पक्खिं सपडिदिसिं सिद्ध खेत्तोववाय गई, से तं सिद्ध खेत्तोववाय गई ५॥ ४६९॥

कठिन शब्दार्थ - सपक्खिं - सपक्ष (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण रूप पार्श्व), **सपडिदिसिं** - सप्रतिदिक्-विदिशाओं से युक्त।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह सिद्ध क्षेत्रोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध क्षेत्रोपपात गति अनेक प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार हैं - जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत और ऐरवत वर्ष (क्षेत्र) में सब दिशाओं में, सब विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में क्षुद्र (लघु) हिमवान् और शिखरी वर्षधरपर्वत में सब दिशाओं में और विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हैमवत और हैरण्यवत वर्ष में सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में शब्दापाती और विकटापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत में समस्त दिशाओं-विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में महाहिमवन्त और रुक्मी नामक वर्षधर पर्वतों में सब दिशाओं-विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में हरिवर्ष और रम्यकवर्ष में सब दिशाओं विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में गन्धावती माल्यवन्तपर्याय वृत्तवैताढ्यपर्वत में समस्त दिशाओं-विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में निषध और नीलवन्त नामक वर्षधर पर्वत में सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में पूर्व विदेह और अपर विदेह में सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, जम्बूद्वीप नामक द्वीप में देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र में सब दिशाओं-विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है तथा जम्बूद्वीप नामक द्वीप में मन्दर (मेरु) पर्वत की सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है। लवण समुद्र में सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, धातकीखण्डद्वीप में पूर्वार्द्ध और पश्चिमार्द्ध मन्दर पर्वत की सब दिशाओं विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, कालोद समुद्र में समस्त दिशाओं-विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, पुष्करवरद्वीपार्द्ध में पूर्वार्द्ध के भरत और ऐरवत वर्ष में सब दिशाओं और विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है, पुष्करवर द्वीपार्द्ध के पश्चिमार्द्ध मन्दरपर्वत में सब दिशाओं-विदिशाओं में सिद्ध क्षेत्रोपपात गति होती है।

यह सिद्ध क्षेत्रोपपात गति का वर्णन हुआ। इस प्रकार क्षेत्रोपपात गति का निरूपण पूर्ण हुआ।

विवेचन - क्षेत्र उपपात गति के मूल उत्तर भेद मिला कर ८० भेद होते हैं। क्षेत्र उपपात गति के मूल भेद पांच होते हैं-नरक क्षेत्र उपपात गति, तिर्यंच योनि क्षेत्र उपपात गति, मनुष्य क्षेत्र उपपात गति, देव क्षेत्र उपपात गति, सिद्ध क्षेत्र उपपात गति।

नरक क्षेत्र उपपात गति के सात भेद - रत्नप्रभा पृथ्वी नरक क्षेत्र उपपात गति यावत् तमस्तमः प्रभा पृथ्वी नरक क्षेत्र उपपात गति। तिर्यंच योनिक क्षेत्र उपपात गति के पांच भेद इस प्रकार हैं-एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्षेत्र उपपात गति यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्षेत्र उपपात गति। मनुष्य क्षेत्र उपपात गति के दो भेद-सम्मूर्च्छिम मनुष्य क्षेत्र उपपात गति, गर्भज मनुष्य क्षेत्र उपपात गति। देव क्षेत्र उपपात गति के चार भेद-भवनपति देव क्षेत्र उपपात गति यावत् वैमानिक देव क्षेत्र उपपात गति। सिद्ध क्षेत्र उपपात गति के ५७ भेद-जम्बूद्वीप के ११-१ भरत ऐरवत क्षेत्र, २. चुल्ल हिमवन्त शिखरी वर्षधर पर्वत ३. हेमवत हैरण्यवत क्षेत्र ४. शब्दापाती विकटापाती वृत्त वैताढ्य पर्वत ५. महा हिमवन्त रुक्मी वर्षधर पर्वत ६. हरिवर्ष रम्यक वर्ष क्षेत्र ७. गन्धापाती माल्यवन्त ८. निषध नीलवंत वर्षधर पर्वत ९ पूर्व विदेह पश्चिम विदेह १०. देवकुरु उत्तरकुरु, ११. मेरु पर्वत के ऊपर चारों दिशा विदिशा में सिद्ध क्षेत्र उपपात गति होती है। इसी तरह धातकी खंड के २२ बोल पुष्करार्ध के २२ बोल, और ५६ वाँ लवण समुद्र ५७ वाँ कालोदधि समुद्र के ऊपर चारों दिशा एवं विदिशा में सिद्ध क्षेत्र उपपात गति होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से किं तं भवोववाय गई?

भवोववाय गई चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा - णेरइय भवोववाय गई जाव देव भवोववाय गई।

से किं तं णेरइय भवोववाय गई?

णेरइय भवोववाय गई सत्तविहा पण्णत्ता। तंजहा- एवं सिद्धवज्जो भेओ भाणियव्वो जो चेव खेत्तोववायगईए सो चेव, से तं देव भवोववाय गई। से तं भवोववाय गई॥ ४७०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भवोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! भवोपपात गति चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार हैं - नैरयिक भवोपपात गति से लेकर देव भवोपपात गति पर्यन्त।

प्रश्न - नैरयिक भवोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - नैरयिक भवोपपात गति सात प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार हैं - इत्यादि सिद्धों को छोड़ कर सब भेद तिर्यंच योनिक भवोपपात गति के भेद, मनुष्य भवोपपात गति के भेद और देव भवोपपात गति के भेद कह देने चाहिए। जो प्ररूपणा क्षेत्रोपपात गति के विषय में की गई थी, वह भवोपपात गति के विषय में कहनी चाहिए। यह भवोपपात गति का निरूपण हुआ।

से किं तं णोभवोववाय गई?

णोभवोववाय गई दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-पोग्गल णोभवोववाय गई, सिद्ध णोभवोववाय गई य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह नोभवोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नोभवोपपात गति दो प्रकार की कही गई है, वह इस प्रकार हैं - पुद्गल-नोभवोपपात गति और सिद्ध-नोभवोपपात गति।

से किं तं पोग्गल णोभवोववाय गई?

पोग्गल णोभवोववाय गई जण्णं परमाणु पोग्गले लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चत्थिमिल्लं चरमंतं एगसमएणं गच्छइ, पच्चत्थिमिल्लाओ वा चरमंताओ पुरत्थिमिल्लं चरमंतं एगसमएणं गच्छइ, दाहिणिल्लाओ वा चरमंताओ उत्तरिल्लं चरमंतं एगसमएणं गच्छइ, एवं उत्तरिल्लाओ दाहिणिल्लं, उवरिल्लाओ हेट्ठिल्लं, हिट्ठिल्लाओ उवरिल्लं, से तं पोग्गल णोभवोववाय गई॥ ४७१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह पुद्गल-नोभवोपपात गति क्या है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जो पुद्गल परमाणु लोक के पूर्वी चरमान्त अर्थात् छोर से पश्चिमी चरमान्त तक एक ही समय में चला जाता है, अथवा पश्चिमी चरमान्त से पूर्वी चरमान्त तक एक समय में गमन करता है, अथवा दक्षिणी चरमान्त से उत्तरी चरमान्त तक एक समय में गति करता है या उत्तरी चरमान्त से दक्षिणी चरमान्त तक तथा ऊपरी चरमान्त छोर से नीचले चरमान्त तक एवं नीचले चरमान्त से ऊपरी चरमान्त तक एक समय में ही गति करता है, यह पुद्गल नोभवोपपात गति कहलाती है। यह पुद्गल नोभवोपपात गति का निरूपण हुआ।

से किं तं सिद्ध णोभवोववाय गई?

सिद्ध णोभवोववाय गई दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-अणंतर सिद्ध णोभवोववाय गई य परंपर सिद्ध णोभवोववाय गई य?

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह सिद्ध-नोभवोपपात गति कितने प्रकार की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध-नोभवोपपात गति दो प्रकार की कही गयी है, वह इस प्रकार हैं-अनन्तर सिद्ध नोभवोपपात गति और परम्परसिद्ध नोभवोपपात गति।

से किं तं अणंतर सिद्ध णोभवोववाय गई?

अणंतर सिद्ध णोभवोववाय गई पण्णरसविहा पण्णत्ता। तंजहा - तित्थसिद्ध अणंतर सिद्ध णोभवोववाय गई य जाव अणेगसिद्ध णोभवोववाय गई य।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! वह अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपात गति पन्द्रह प्रकार की है। वह इस प्रकार है - तीर्थसिद्ध-अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपातगति से लेकर यावत् अनेकसिद्ध-अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपात गति। यह अनन्तरसिद्ध-नोभवोपपात गति का निरूपण हुआ।

से किं तं परंपर सिद्ध णोभवोववाय गई?

परंपर सिद्ध णोभवोववाय गई अणेगविहा पण्णत्ता। तंजहा - अपढम समय सिद्ध णोभवोववाय गई एवं दुसमय सिद्ध णोभवोववाय गई जाव अणंत समय सिद्ध णोभवोववाय गई, से त्तं सिद्ध णोभवोववाय गई, से तं णोभवोववायगई, से तं उववाय गई ४॥ ४७२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! परम्परसिद्ध-नोभवोपपात गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! परम्परसिद्ध-नोभवोपपात गति अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार हैं- अप्रथम समय सिद्ध-नोभवोपपात गति एवं द्विसमय सिद्ध-नोभवोपपात गति यावत् त्रिसमय से लेकर संख्यात समय, असंख्यातसमय सिद्ध अनन्तसमय सिद्ध-नोभवोपपात गति। यह परम्पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध नोभवोपपात गति का निरूपण हुआ। इसके साथ ही उक्त सिद्ध नोभवोपपात गति का वर्णन हुआ। तदनुसार पूर्वोक्त नोभवोपपात गति की प्ररूपणा समाप्त हुई। इस के साथ ही उपपात गति का वर्णन पूर्ण हुआ।

विवेचन - भव उपपात गति के मूल भेद चार और मूल भेद सहित उत्तर भेद २२ हैं। भव उपपात गति के मूल भेद चार-नरक भव उपपात गति, तिर्यंच भव उपपात गति, मनुष्य भव उपपात गति और देव भव उपपात गति। नरक भव उपपात गति के सात भेद-रत्नप्रभा नरक भव उपपात गति यावत् तमस्तमः प्रभा नरक भव उपपात गति। तिर्यंच भव उपपात गति के पांच भेद-एकेन्द्रिय तिर्यंच भव उपपात गति यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच भव उपपात गति। मनुष्य भव उपपात गति के दो भेद-सम्मूर्च्छिम मनुष्य भव उपपात गति, गर्भज मनुष्य भव उपपात गति। देवभव उपपात गति के चार भेद-भवनपति देव भव उपपात गति यावत् वैमानिक देव भव उपपात गति।

नो भव उपपात गति के दो भेद - १. पुद्गल नो भव उपपात गति और २. सिद्ध नो भव उपपात गति। कर्म संबंध से प्राप्त नैरयिक आदि भव के सिवाय जो उपपात गति है वह नो भव उपपात गति होती है। यह गति पुद्गल एवं सिद्धों के होती है इसलिए पुद्गल और सिद्ध के भेद से इसके दो भेद बताये हैं।

पुद्गल नो भव उपपात गति के छह भेद-परमाणु पुद्गल १ लोक के पूर्व चरमान्त से पश्चिम के चरमान्त तक एक समय में जाता है २. पश्चिम चरमान्त से पूर्व चरमान्त तक एक समय में जाता है ३. उत्तर चरमान्त से दक्षिण चरमान्त तक एक समय में जाता है ४. दक्षिण चरमान्त से उत्तर चरमान्त तक एक समय में जाता है ५ ऊर्ध्व लोक के चरमान्त से अधोलोक के चरमान्त तक एक समय में जाता है, ६ अधोलोक के चरमान्त से ऊर्ध्व लोक के चरमान्त तक एक समय में जाता है।

सिद्ध नो भव उपपात गति के दो भेद-अनन्तर सिद्ध नो भव उपपात गति और परम्पर सिद्ध नो भव उपपात गति। अनन्तर सिद्ध नो भव उपपात गति के तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध यावत् अनेक सिद्ध के भेद से पन्द्रह भेद होते हैं। परम्पर सिद्ध नो भव उपपात गति के अप्रथम समय सिद्ध, दो समय सिद्ध यावत् दस समय सिद्ध, संख्यात समय सिद्ध असंख्यात समय सिद्ध और अनन्त समय सिद्ध-ये तेरह भेद होते हैं।

से किं तं विहाय गई?

विहाय गई सत्तरस विहा पण्णत्ता। तंजहा - फुसमाण गई १, अफुसमाण गई २, उवसंपज्जमाण गई ३, अणुवसंपज्जमाण गई ४, पोग्गल गई ५, मंडूय गई ६, णावा गई ७, णय गई ८, छाया गई ९, छायाणुवाय गई १०, लेसा गई ११,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेसाणुवाय गई १२, उद्दिस्सपविभत्त गई १३, चउपुरिसपविभत्त गई १४, वंक गई १५, पंक गई १६, बंधणविमोयण गई १७॥ ५७३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विहायोगति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! विहायो गति सतरह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार हैं - १. स्पृशद् गति २. अस्पृशद् गति ३. उपसम्पद्यमान गति ४. अनुपसम्पद्यमान गति ५. पुद्‌गल गति ६. मण्डूक गति ७. नौका गति ८. नय गति ९. छाया गति १०. छायानुपात गति ११. लेश्या गति १२. लेश्यानुपात गति १३. उद्दिश्यप्रविभक्त गति १४. चतुःपुरुषप्रविभक्त गति १५. वक्र गति १६. पंक गति और १७. बन्धनविमोचन गति।

से किं तं फुसमाण गई ?

फुसमाणगई जण्णं परमाणुपोग्गले दुपएसिय जाव अणंत पएसियाणं खंधाणं अण्णमण्णं फुसित्ता णं गई पवत्तइ, से त्तं फुसमाण गई १।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह स्पृशद् गति क्या है?

उत्तर - हे गौतम! परमाणु पुद्‌गल की तथा द्विप्रदेशी से लेकर यावत् त्रिप्रदेशी, चतुःप्रदेशी, पंचप्रदेशी, षट्प्रदेशी, सप्तप्रदेशी, अष्टप्रदेशी, नवप्रदेशी, दशप्रदेशी, संख्यातप्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी, अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की एक दूसरे को स्पर्श करते हुए जो गति होती है, वह स्पृशद्‌गति कहलाती है। यह स्पृशद्‌गति का वर्णन हुआ।

से किं तं अफुसमाण गई?

अफुसमाण गई जण्णं एएसिं चेव अफुसित्ता णं गई पवत्तइ, से तं अफुसमाण गई २।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अस्पृशद् गति किसे कहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! उन्हीं पूर्वोक्त परमाणु पुद्‌गलों से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्धों की परस्पर स्पर्श किये बिना ही जो गति होती है, वह अस्पृशद्‌गति कहलाती है। यह अस्पृशद् गति का स्वरूप हुआ।

से किं तं उवसंपज्जमाण गई ?

उवसंपज्जमाण गई जण्णं रायं वा जुवरायं वा ईसरं वा तलवरं वा माडंबियं वा कोडुंबियं वा इब्भं वा सेट्ठिं वा सेणावइं वा सत्थवाहं वा उवसंपज्जित्ता णं गच्छइ, से तं उवसंपज्जमाण गई ३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह उपसम्पद्यमानगति क्या है?

उत्तर - हे गौतम! उपसम्पद्यमानगति वह है, जिसमें व्यक्ति राजा, युवराज (राज्य का उत्तराधिकारी),

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वर ऐश्वर्यशाली, तलवर (किसी नृप द्वारा नियुक्त पट्टधर शासक), माडम्बिक (मण्डलाधिपति) कुटुम्ब का अधिपति, इभ्य (धनाढ्य) सेठ सेनापति या सार्थवाह को आश्रय करके उनके सहयोग या सहारे से गमन करता हो। यह उपसम्पद्यमानगति का स्वरूप हुआ।

विवेचन - उपसम्पद्यमान गति में आचार्य आदि की आज्ञा में विचरना उनकी नेश्राय स्वीकार करके रहना आदि समझा जाता है।

से किं तं अणुवसंपजमाण गई?

अणुवसंपज्जमाण गई जण्णं एएसिं चेव अण्णमण्णं अणुवसंपज्जित्ता णं गच्छइ, से तं अणुवसंपज्जमाण गई ४।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह अनुपसम्पद्यमान गति क्या है?

उत्तर - हे गौतम! इन्हीं पूर्वोक्त राजा आदि का परस्पर आश्रय न लेकर जो गति होती है, वह अनुपसम्पद्यमान गति कहलाती है। यह अनुपसम्पद्यमान गति का स्वरूप हुआ।

से किं तं पोग्गल गई?

पोग्गल गई जं णं परमाणु पोग्गलाणं जाव अणंत पएसियाणं खंधाणं गई पवत्तइ, से तं पोग्गल गई ५।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुद्गल गति क्या है?

उत्तर - हे गौतम! परमाणु पुद्गलों की यावत् अनन्तप्रदेशी स्कन्धों की गति पुद्गल गति कहलाती है। यह पुद्गल गति का स्वरूप हुआ।

से किं तं मंडूय गई?

मंडूयगई जण्णं मंडूओ फिडित्ता (उप्फिडिया उप्फिडिया) गच्छइ, से तं मंडूय गई ६।

कठिन शब्दार्थ - फिडित्ता (उप्फिडिया उप्फिडिया) - फुदक कर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मण्डूक गति का क्या स्वरूप है?

उत्तर - हे गौतम! मेंढक जो उछल-उछल कर गति करता है, वह मण्डूक गति कहलाती है। यह मण्डूक गति का स्वरूप हुआ।

से किं तं णावा गई?

णावा गई जण्णं णावा पुव्ववेयालीओ दाहिणवेयालिं जलपहेणं गच्छइ, दाहिण वेयालीओ वा अवरवेयालिं जलपहेणं गच्छइ, से तं णावा गई ७।

कठिन शब्दार्थ - पुव्ववेयालीओ - पूर्व वैताली (तट) से, **जलपहेणं** - जल मार्ग से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह नौका गति क्या है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे नौका पूर्व वैताली (तट) से दक्षिण तट की ओर जलमार्ग से जाती है, अथवा दक्षिण तट से अपर (पश्चिम) तट की ओर जलपथ से जाती है, ऐसी गति नौका गति है। यह नौका गति का स्वरूप हुआ।

से किं तं णय गई?

णय गई जण्णं णेगम-संगह ववहार-उज्जुसुय सद्द-समभिरूढ एवंभूयाणं णयाणं जा गई अहवा सव्वणया वि जं इच्छंति, से तं णय गई ८।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नय गति का क्या स्वरूप है?

उत्तर - हे गौतम! नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवम्भूत इन सात नयों की जो प्रवृत्ति है अथवा सभी नय जो मानते हैं, वह नय गति है। यह नय गति का स्वरूप हुआ।

से किं तं छाया गई?

छाया गई जं णं हयछायं वा गयछायं वा णरछायं वा किण्णरछायं वा महोरगच्छायं वा गंधव्वच्छायं वा उसहछायं वा रहछायं वा छत्तछायं वा उवसंपज्जित्ताणं गच्छइ, से तं छायागई ९।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! छाया गति किसे कहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अश्व की छाया, हाथी की छाया, मनुष्य की छाया, किन्नर की छाया, महोरग की छाया, गन्धर्व की छाया, वृषभछाया, रथछाया, छत्रछाया का आश्रय करके या छाया का आश्रय लेने के लिए जो गमन होता है, वह छाया गति कहलाती है। यह छाया गति का वर्णन है।

विवेचन - किण्णर, महोरग और गंधर्व ये तीनों व्यन्तर जाति के देवों के नाम हैं।

यहाँ पर छाया शब्द से "आश्रय करना" यह अर्थ लेना चाहिए। जैसे कि अश्व, हाथी आदि का आश्रय लेकर चलना छाया गति कहलाती है।

से किं तं छायाणुवाय गई?

छायाणुवाय गई जे णं पुरिसं छाया अणुगच्छइ, णो पुरिसे छायं अणुगच्छइ, से तं छायाणुवायगई १०।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! छायानुपात गति किसे कहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! छाया पुरुष आदि (अपने निमित्त) का अनुगमन करती है, किन्तु पुरुष छाया का अनुगमन नहीं करता, वह छायानुपात गति है। यह छायानुपात गति का स्वरूप हुआ।

विवेचन - छायानुपात गति में छाया का चालक पुरुष होने से छाया उसका अनुगमन करती है। जैसे पुरुष चल रहा हो छाया उसके आगे या पीछे होने पर भी पुरुष छाया का अनुगामी नहीं कहलाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। क्योंकि पुरुष की इच्छा पर छाया का अनुगमन होता है। पुरुष के पीछे मुडते ही आगे की छाया पीछे की तरफ हो जाती है।

से किं तं लेस्सा गई?

लेस्सा गई जण्णं किण्हलेसा णीललेसं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवं णीललेसा काउलेसं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए परिणमइ, एवं काउलेसा वि तेउलेसं, तेउलेसा वि पम्हलेसं, पम्हलेसा वि सुक्कलेसं पप्प तारूवत्ताए जाव परिणमइ, से तं लेस्सा गई ११।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लेश्यागति का क्या स्वरूप है?

उत्तर - हे गौतम! कृष्णलेश्या नीललेश्या को प्राप्त होकर उसी के वर्ण रूप में, उसी के गन्ध रूप में उसी के रस रूप में तथा उसी के स्पर्श रूप में बार-बार जो परिणत होती है, इसी प्रकार नीललेश्या भी कापोतलेश्या को प्राप्त होकर उसी के वर्ण रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में जो परिणत होती है, उसी प्रकार कापोतलेश्या भी तेजोलेश्या को, तेजोलेश्या पद्मलेश्या को तथा पद्मलेश्या शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर जो उसी के वर्ण रूप में यावत् उसी के स्पर्श रूप में परिणत होती है, वह लेश्या गति है। यह लेश्या गति का स्वरूप है।

से किं तं लेसाणुवाय गई?

लेसाणुवाय गई जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेसेसु उववज्जइ, तंजहा-किण्हलेसेसु वा जाव सुक्कलेसेसु वा, से तं लेसाणुवाय गई १२।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लेश्यानुपात गति किसे कहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण करके जीव काल करता है, उसी लेश्या वाले जीवों में उत्पन्न होता है। जैसे - कृष्णलेश्या वाले यावत् शुक्ललेश्या वाले द्रव्यों में इस प्रकार की गति लेश्यानुपात गति कहलाती है। यह लेश्यानुपात गति का निरूपण हुआ।

से किं तं उद्दिस्सपविभत्त गई?

उद्दिस्सपविभत्त गई जण्णं आयरियं वा उवज्झायं वा थेरं वा पवत्तिं वा गणिं वा गणहरं वा गणावच्छेइयं वा उद्दिसिय उद्दिसिय गच्छइ, से तं उद्दिस्सियपविभत्त गई १३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उद्दिश्यप्रविभक्त गति का क्या स्वरूप है?

उत्तर - हे गौतम! आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्त्तक, गणि, गणधर अथवा गणावच्छेदक को उद्देश्य करके जो गमन किया जाता है, वह उद्दिश्यप्रविभक्त गति कहलाती है। यह उद्दिश्यप्रविभक्त गति का स्वरूप हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - उद्दिश्य प्रविभक्त गति में आचार्य आदि के दर्शन करने इत्यादि किसी प्रयोजन से जाना (गमन किया) होता है। आचार्य आदि की आज्ञा में विचरना उनकी नेश्राय में रहना यह तो उपसम्पद्यमान गति कहलाती है।

से किं तं चउपुरिस पविभत्त गई?

चउपुरिस पविभत्त गई से जहाणामए चत्तारि पुरिसा समगं पट्ठिया समगं पज्जवट्ठिया १, समगं पट्ठिया विसमं पज्जवट्ठिया २, विसमं पट्ठिया समगं पज्जवट्ठिया ३, विसमं पट्ठिया विसमं पज्जवट्ठिया ४, से तं चउपुरिस पविभत्त गई १४।

कठिन शब्दार्थ - समगं - एक साथ, **पज्जवट्ठिया** - प्रस्थान हुआ, **पट्ठिया** - पहुँचे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चतु:पुरुष प्रविभक्त गति किसे कहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे - १. किन्हीं चार पुरुषों का एक साथ प्रस्थान हुआ और एक ही साथ पहुँचे २. दूसरे चार पुरुषों का एक साथ प्रस्थान हुआ किन्तु वे एक साथ नहीं आगे-पीछे पहुँचे ३. तीसरे चार पुरुषों का एक साथ प्रस्थान नहीं आगे-पीछे हुआ, किन्तु पहुँचे चारों एक साथ तथा ४. चौथे चार पुरुषों का प्रस्थान एक साथ नहीं आगे-पीछे हुआ और एक साथ भी नहीं आगे-पीछे पहुँचे, इन चारों पुरुषों की चार विकल्प रूप गति चतु:पुरुष प्रविभक्त गति कहलाती है। यह चतु:पुरुष प्रविभक्त गति का स्वरूप हुआ।

से किं तं वंक गई?

वंक गई चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा-घट्टणया, थंभणया, लेसणया, पवडणया, से तं वंक गई १५।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वक्र गति कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वक्र गति चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है - १. घट्टन से २. स्तम्भन से ३. श्लेषण से और ४. प्रपतन से। यह वक्र गति का स्वरूप हुआ।

से किं तं पंक गई?

पंक गई से जहाणामए केइ पुरिसे पंकंसि वा उदयंसि वा कायं उव्विहिया उव्विहिया गच्छइ, से तं पंक गई १६।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंक गति का क्या स्वरूप है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई पुरुष कादे में (कीचड़ में) अथवा जल में अपने शरीर को दूसरे के साथ जोड़कर गमन करता है, उसकी यह गति पंकगति कहलाती है। यह पंकगति का स्वरूप हुआ।

से किं तं बंधण विमोयण गई?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंधण विमोयण गई जण्णं अंबाण वा अंबाडगाण वा माउलुंगाण वा बिल्लाण वा कविट्ठाण वा भच्चाण वा फणसाण वा दालिमाण वा पारेवयाण वा अक्खोलाण व चाराण वा बोराण वा तिंदुयाण वा पक्काणं परियागयाणं बंधणाओ विप्पमुक्काणं णिव्वाघाएणं अहे वीससाए गई पवत्तई, से तं बंधण विमोयण गई १७। से तं विहाय गई ५ (से तं गइप्पवाए) ॥ ४७४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वह बन्धन विमोचन गति क्या है?

उत्तर - हे गौतम! अत्यन्त पक कर तैयार हुए अतएव बन्धन से छूटे हुए आम्रों, आम्रातकों, बिजौरों, बिल्वफलों (बेल के फलों) कवीठों, भद्र नामक फलों, कटहलों (पनसों), दाड़िमों, पारेवत नामक फलविशेषों, अखरोटों, चोर फलों (चारों) बोरों अथवा तिन्दुकफलों की रुकावट-व्याघात न हो तो स्वभाव से ही जो अधोगति होती है, वह बन्धन विमोचन गति कहलाती है। यह बन्धन विमोचन गति का स्वरूप हुआ॥ इसके साथ ही विहायोगगति का प्ररूपणा पूर्ण हुई। यह गतिप्रपात का वर्णन हुआ।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में विहाय गति के १७ भेदों की प्ररूपणा की गयी है। विहायस् अर्थात् आकाश में गति होना विहाय गति कहलाती है। विहाय गति सतरह प्रकार की कही गयी है जो इस प्रकार है -

१. स्पृशद् गति - परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् अनन्त प्रदेशी स्कन्ध को स्पर्श करते हुए जाते हैं, उसे स्पृशद् गति कहते हैं।

२. अस्पृशद् गति - परमाणु पुद्गल आदि परमाणु पुद्गल आदि से परस्पर स्पर्श किये बिना जाते हैं उसे अस्पृशद् गति कहते हैं।

यद्यपि परमाणु आदि द्रव्यों की एक दूसरे से स्पर्श करके ही गति होती है तथापि यहाँ पर स्पर्शद् गति में जो द्रव्य मार्ग में कुछ रुक करके फिर गति करते हैं उन्हें ही ग्रहण किया गया है। जो द्रव्य मार्ग में अन्य द्रव्यों का स्पर्श करते हुए भी रुकते नहीं हैं उन्हें अस्पर्शद् गति में ग्रहण किये गये हैं।

३. उपसंपद्यमान गति - राजा, युवराज, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि का आश्रय लेकर उनके इच्छानुसार गति करना उपसंपद्यमान गति कहलाती है।

४. अनुपसंपद्यमान गति - उपरोक्त राजा युवराज आदि का सहारा लिये बिना अपनी इच्छा से गति करना अनुपसंपद्यमान गति कहलाती है।

५. पुद्गल गति - परमाणु पुद्गल यावत् अनन्त प्रदेशी स्कंध की गति को पुद्गल गति कहते हैं।

६. मंडूक गति - मेंढक की तरह फुदक-फुदक कर चलना मंडूक गति कहलाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. नौका गति - नाव से महानदी आदि में जाना नौका गति कहलाती है।

८. नय गति - नैगम आदि नयों का अपना-अपना मत पुष्ट करना अथवा एक दूसरे की अपेक्षा रखते हुए नयों द्वारा प्रमाण से अबाधित वस्तु की व्यवस्था करना नय गति कहलाती है।

९. छाया गति - घोड़े, हाथी, मनुष्य, किन्नर, महोरग, गंधर्व, वृषभ, रथ आदि की छाया के आधार से चलना छाया गति कहलाती है।

१०. छायानुपात गति - पुरुष के साथ छाया जाती है, पुरुष छाया के साथ नहीं जाता, यह छायानुपात गति है।

११. लेश्या गति - कृष्ण लेश्या नील लेश्या के द्रव्य पाकर नील लेश्या रूप में यानी नील लेश्या के वर्ण गंध रस रूप में परिणत होती है। इसी तरह नील लेश्या कापोत लेश्या रूप में, कापोत लेश्या तेजो लेश्या रूप में, तेजो लेश्या पद्म लेश्या रूप में और पद्म लेश्या शुक्ल लेश्या रूप में परिणत होती है, इसे लेश्या गति कहते हैं।

१२. लेश्यानुपात गति - जीव जिस लेश्या में काल करता है उसी लेश्या में उत्पन्न होता है इसे लेश्यानुपात गति कहते हैं।

१३. उद्दिश्य प्रविभक्त गति - आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, प्रवर्तक, गणी, गणधर, गणावच्छेदक का नाम लेकर उनके पास जाना उद्दिश्य प्रविभक्त गति कहलाती है।

१४. चतुः पुरुष प्रविभक्त गति - चार पुरुषों की चार तरह की पृथक्-पृथक् गति चतुः पुरुष प्रविभक्त गति कहलाती है। जैसे चार पुरुष साथ रवाना हुए साथ पहुँचे, जुदा-जुदा रवाना हुए साथ-साथ पहुँचे, जुदा-जुदा रवाना हुए, जुदा-जुदा पहुँचे और साथ-साथ रवाना हुए जुदा जुदा पहुँचे।

१५. वक्र गति - वक्रगति चार तरह की होती है-घट्टन, स्तंभन, श्लेषण और प्रपतन। १. घट्टन-लंगड़ाते हुए चलना। २. स्तंभन - रुक-रुक कर चलना। ३. श्लेषण - शरीर के एक अंग से दूसरे अंग का स्पर्श करते हुए चलना। ४. प्रपतन-गिरते गिरते चलना। घट्टन आदि चारों गतियां अनिष्ट एवं अप्रशस्त हैं इसलिए इन्हें वक्रगति कहते हैं।

१६. पंक गति - कीचड़ या जल में अपने शरीर को सहारा देकर यानी स्थिर करके गति करना पंक गति कहलाती है।

१७. बंधन विमोचन गति - पके हुए आम, अम्बाड़ग, बिजौरा, बिल, कबीठ, सीताफल, दाड़िम आदि फलों का बंधन से टूट कर भूमि पर गिर पड़ना बंधन विमोचन गति कहलाती है।

॥ पण्णवणाए भगवईए सोलसमं पओगपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती का सोलहवां प्रयोग पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तरसमं लेस्सापयं-पढमो उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्या पद-प्रथम उद्देशक

उत्थानिका - प्रज्ञापना सूत्र के सोलहवें पद में प्रयोग परिणाम का वर्णन किया गया। परिणाम की समानता से इस सतरहवें पद में लेश्या परिणाम का कथन किया जाता है। **'लिश्यते आत्मा कर्मणा सह अनया'** - जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है उसे लेश्या कहते हैं। अर्थात् कृष्णादि द्रव्यों के सान्निध्य से होने वाला आत्मा का परिणाम विशेष लेश्या कहलाती है। कहा भी है कि -

"कृष्णादि द्रव्य साचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः।
स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्या शब्दःप्रवर्त्तते॥ १॥"

स्फटिक मणि सफेद होती है, उसमें जिस रंग का डोरा पिरोया जाय वह उसी रंग की दिखाई देती है। इसी प्रकार शुद्ध आत्मा के साथ जिससे कर्मों का सम्बन्ध हो उसे लेश्या कहते हैं। द्रव्य और भाव की अपेक्षा लेश्या दो प्रकार की है। द्रव्य लेश्या कर्म वर्गणा रूप तथा कर्म निष्यन्द रूप एवं योग परिणाम रूप हैं। ऐसा ग्रन्थों में बतलाया गया है किन्तु योग के साथ लेश्या का अन्वय व्यतिरेक देखा जाता है इससे लेश्या को योग निमित्तक अर्थात् योग के अन्तर्गत द्रव्य रूप मानना उचित लगता है। भाव लेश्या से खींचे गये पुद्गल जो कि योग के अन्तर्गत माने गये हैं, वे द्रव्य लेश्या कहलाते हैं। द्रव्य लेश्या वर्णादि से सहित होने से रूपी कहलाती है। तत्त्वार्थ सूत्र में तो बतलाया गया है कि - **"कषायानुरञ्जित योग परिणामो लेश्या"** आत्मा में रहे हुए क्रोधादि कषाय को लेश्या बढ़ाती है। योगान्तर्गत पुद्गलों में कषाय को बढ़ाने की शक्ति रहती है। जैसे पित्त के प्रकोप से क्रोध की वृद्धि होती है। द्रव्य लेश्या के छह भेद हैं। मनुष्य और तिर्यंच में द्रव्य लेश्या का परिवर्तन होता रहता है। देवता और नैरयिक में द्रव्य लेश्या अवस्थित होती है।

भाव लेश्या - योगान्तर्गत कृष्णादि द्रव्य लेश्या के संयोग से होने वाला आत्मा का परिणाम विशेष भाव लेश्या कहलाती है। आत्मा के कषाय रञ्जित या अरञ्जित उपयोग एवं वीर्य रूप परिणाम अरूपी होने से वे भाव लेश्या कहलाते हैं। इसके दो भेद हैं - १. विशुद्ध भाव लेश्या और २. अविशुद्ध भाव लेश्या। अकलुषित द्रव्य लेश्या के सम्बन्ध होने पर कषाय के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से होने वाला आत्मा का शुभ परिणाम अविशुद्ध भाव लेश्या है। इनके छह भेद हैं। इनमें से कृष्ण, नील और कापोत अविशुद्ध भाव लेश्या है और तेजो, पद्म और शुक्ल, यह विशुद्ध भाव लेश्या कहलाती है।

इस लेश्या पद में छह उद्देशक हैं। उसमें से प्रथम उद्देशक के अर्थ को संग्रह करने वाली गाथा इस प्रकार है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्त द्वार

आहार समसरीरा उस्सासे कम्म वण्ण लेसासु।

समवेयण समकिरिया समाउया चेव बोद्धव्वा॥ १॥

भावार्थ - १. समाहार, सम-शरीर और सम उच्छ्वास, २. कर्म ३. वर्ण ४. लेश्या ५. समवेदना ६. समक्रिया तथा ७. समायुष्क इस प्रकार सात द्वार प्रथम उद्देशक में जानने चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में लेश्या संबंधी सात द्वारों की गाथा कही गई है। इस गाथा में 'सम' शब्द का प्रयोग एक ही बार किया गया है किन्तु उसका संबंध प्रत्येक पद के साथ जोड़ लेना चाहिए तदनुसार सात द्वार इस प्रकार हैं - १. सम आहार, सम शरीर और सम उच्छ्वास २. सम कर्म ३. सम वर्ण ४. सम लेश्या ५. सम वेदना ६. सम क्रिया और ७. सम आयुष्क।

नैरयिक आदि में सप्त द्वार

प्रथम द्वार

णेरइया णं भंते! सव्वे समाहारा, सव्वे समसरीरा, सव्वे समुस्सास णिस्सासा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समाहारा जाव णो सव्वे समुस्सास णिस्सासा'?

गोयमा! णेरइया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-महासरीरा य अप्पसरीरा य। तत्थ णं जे ते महासरीरा ते णं बहुतराए पोग्गले आहारेंति, बहुतराए पोग्गले परिणामेंति, बहुतराए पोग्गले उस्ससंति, बहुतराए पोग्गले णीससंति, अभिक्खणं आहारेंति, अभिक्खणं परिणामेंति, अभिक्खणं ऊससंति, अभिक्खणं णीससंति। तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति, अप्पतराए पोग्गले परिणामेंति, अप्पतराए पोग्गले ऊससंति, अप्पतराए पोग्गले णीससंति, आहच्च आहारेंति, आहच्च परिणामेंति, आहच्च ऊससंति, आहच्च णीससंति, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समाहारा, णो सव्वे समसरीरा, णो सव्वे समुस्सास णिस्सासा'॥ ४७५॥

कठिन शब्दार्थ - **समाहारा** - समान आहार वाले, **समुस्सास णिस्सासा** - समान श्वासोच्छ्वास वाले, **महासरीरा** - महाशरीर वाले, **अप्पसरीरा** - अल्प शरीर वाले, **बहुतराए** - बहुत अधिक, **अभिक्खणं** - बार-बार, **आहच्च** - कदाचित्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक सभी समान आहार वाले होते हैं, सभी समान शरीर वाले होते हैं तथा सभी समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि नैरयिक सभी समाहार नहीं होते हैं, यावत् सम उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - महाशरीर वाले और अल्पशरीर वाले। उनमें से जो महाशरीर वाले नैरयिक होते हैं, वे बहुत अधिक पुद्गलों का आहार करते हैं, बहुत से पुद्गलों को परिणत करते हैं, बहुत-से पुद्गलों का उच्छ्वास लेते हैं और बहुत से पुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं। वे बार-बार आहार करते हैं, बार-बार पुद्गलों को परिणत करते हैं, बार-बार उच्छ्वास लेते हैं और बार-बार निःश्वास छोडते हैं। उनमें जो अल्प (छोटे) शरीर वाले हैं, वे थोड़े पुद्गलों का आहार करते हैं, थोड़े पुद्गलों को परिणत करते हैं, थोडे पुद्गलों का उच्छ्वास लेते हैं और अल्पतर पुद्गलों का निःश्वास छोड़ते हैं। वे कदाचित् आहार करते हैं, कदाचित् पुद्गलों को परिणत करते हैं तथा कदाचित् उच्छ्वास लेते हैं और कदाचित् निःश्वास छोड़ते हैं। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक सभी समान आहार वाले नहीं होते, समान शरीर वाले नहीं होते और न ही समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों में सम आहार आदि का वर्णन किया गया है। जिन नैरयिकों का शरीर अपेक्षाकृत विशाल होता है वे महाशरीर वाले कहलाते हैं और जिन नैरयिकों का शरीर अपेक्षाकृत छोटा होता है वे अल्प शरीर वाले कहलाते हैं। भवधारणीय शरीर की अपेक्षा नैरयिकों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना पांच सौ धनुष परिमाण होती है। उत्तर वैक्रिय शरीर की अपेक्षा अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हजार धनुष की होती है। यहाँ आहार से भी पहले शरीर की विषमता बताने का कारण यह है कि शरीर की विषमता बतला देने से आहार की विषमता शीघ्र समझ में आ जाती है।

जो महाशरीर वाले नैरयिक हैं वे लघु (छोटे) शरीर वाले नैरयिकों की अपेक्षा अधिक पुद्गलों का आहार करते हैं, अधिक पुद्गलों को परिणत करते हैं और अधिक पुद्गलों को श्वासोच्छ्वास रूप में ग्रहण करते हैं। इसलिए सभी नैरयिक समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान श्वासोच्छ्वास वाले नहीं होते हैं।

यहाँ पर अल्प शरीर, महा शरीर प्रत्येक नरक के नैरयिक जीवों के समझा जाता है। मात्र सातवीं नरक के नैरयिकों को ही महा शरीरी नहीं समझ कर सातों नरक के नैरयिकों को समझना चाहिए। अल्प शरीरी में अपर्याप्त जीवों को तथा पर्याप्त होने के बाद भी जब तक अवगाहना परिपूर्ण न बने उस अवस्था तक के नैरयिक जीवों को समझा जा सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा द्वार

णेरइया णं भंते! सव्वे समकम्मा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समकम्मा?'

गोयमा! णेरइया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वोव वण्णगा य पच्छोव वण्णगा य। तत्थ णं जे ते पुव्वोव वण्णगा ते णं अप्प कम्म तरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोव वण्णगा ते णं महा कम्म तरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समकम्मा'॥ ४७६॥

कठिन शब्दार्थ - पुव्वोव वण्णगा - पूर्वोपपन्नक-पहले उत्पन्न हुए, **पच्छोव वण्णगा** - पश्चादुपपन्नक -पीछे उत्पन्न हुए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक क्या सभी समान कर्म वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि नैरयिक सभी समान कर्म वाले नहीं होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - पूर्वोपपन्नक-पहले उत्पन्न हुए और पश्चादुपपन्नक-पीछे उत्पन्न हुए। उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे अपेक्षाकृत अल्प कर्म वाले हैं और उनमें जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे महाकर्म-बहुत कर्म वाले हैं। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक सभी समान कर्म वाले नहीं होते हैं।

विवेचन - जो नैरयिक पहले उत्पन्न हो चुके हैं वे अल्प कर्म वाले होते हैं क्योंकि पूर्वोत्पन्न नैरयिकों को उत्पन्न हुए अपेक्षा कृत अधिक समय हो चुका है वे नरकायु, नरक गति और असाता वेदनीय आदि कर्मों की बहुत निर्जरा कर चुके होते हैं, उनके ये कर्म थोडे ही शेष रहे होते हैं। इसलिए ये अल्पकर्म वाले कहे गये हैं किन्तु जो नैरयिक बाद में उत्पन्न हुए हैं वे महाकर्म वाले होते हैं क्योंकि उनकी नरकायु, नरकगति तथा असाता वेदनीय आदि कर्मों की बहुत थोड़ी ही निर्जरा हुई है, बहुत से कर्म अभी शेष हैं इस कारण वे अपेक्षाकृत महाकर्म वाले हैं। यह कथन समान स्थिति वाले नैरयिकों की अपेक्षा से समझना चाहिये।

तीसरा-चौथा द्वार

णेरइया णं भंते! सव्वे समवण्णा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समवण्णा?'

गोयमा! णेरइया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वोववण्णगा य पच्छोववण्णगा य। तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं विसुद्ध वण्णतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं अविसुद्ध वण्णतरागा, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ- 'णेरइया णो सव्वे समवण्णा'॥ ३॥

कठिन शब्दार्थ - विसुद्ध वण्णतरागा - विशुद्ध वर्ण वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक सभी समान वर्ण वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि नैरयिक सभी समान वर्ण वाले नहीं होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक। उनमें से जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे अधिक विशुद्ध वर्ण वाले होते हैं और उनमें जो पश्चादुपपन्नक होते हैं, वे अविशुद्ध वर्ण वाले होते हैं। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक सभी समान वर्ण वाले नहीं होते हैं।

एवं जहेव वण्णेण भणिया तहेव लेसासु विसुद्ध लेसतरागा अविसुद्ध लेसतरागा य भाणियव्वा ।।४।। ॥ ४७७॥

भावार्थ - जैसे वर्ण की अपेक्षा से नैरयिकों को विशुद्ध और अविशुद्ध कहा गया है, वैसे ही लेश्या की अपेक्षा भी नैरयिकों को विशुद्ध और अविशुद्ध कहना चाहिए।

विवेचन - जिन नैरयिकों को उत्पन्न हुए अपेक्षाकृत अधिक समय व्यतीत हो चुका है वे विशुद्धतर वर्ण वाले होते हैं। नैरयिकों में अशुभ वर्ण नाम कर्म का अधिक उदय होता है किन्तु पूर्वोत्पन्न नैरयिकों के उस अशुभ अनुभाग का बहुत सा भाग निर्जीर्ण हो चुका होता है थोड़ा भाग शेष रहता है अतएव पूर्वोत्पन्न नैरयिक विशुद्धतर वर्ण वाले होते हैं जबकि पश्चादुत्पन्न नैरयिक अविशुद्धतर वर्ण वाले होते हैं क्योंकि भव के कारण होने वाले उनके अशुभ नाम कर्म का अधिकांश अशुभ तीव्र अनुभाग निर्जीर्ण नहीं होता सिर्फ थोड़े से भाग की ही निर्जरा हो पाती है। इस कारण बाद में उत्पन्न नैरयिक अविशुद्धतर वर्ण वाले होते हैं। यह कथन भी समान स्थिति वाले नैरयिकों की अपेक्षा से समझना चाहिये।

इसी प्रकार पहले उत्पन्न होने वाले नैरयिक अशुभ लेश्या द्रव्यों के बहुत से भाग को निर्जीर्ण कर चुके होते हैं इस कारण वे विशुद्धतर लेश्या वाले होते हैं, जबकि बाद में उत्पन्न होने वाले नैरयिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अशुभ लेश्या द्रव्यों के बहुत थोड़े भाग की ही निर्जरा कर पाते हैं उनके बहुत से अशुभ लेश्या द्रव्य शेष बने रहते हैं इसलिए वे अविशुद्धतर लेश्या वाले होते हैं।

पांचवां द्वार

णेरइया णं भंते! सव्वे समवेयणा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समवेयणा?'

गोयमा! णेरइया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सण्णिभूया य असण्णिभूया य। तत्थ णं जे ते सण्णिभूया ते णं महावेयण तरागा, तत्थ णं जे ते असण्णिभूया ते णं अप्पवेयणतरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समवेयणा' ॥ ५ ॥ ॥ ४७८ ॥

कठिन शब्दार्थ - सण्णिभूया - संज्ञीभूत, **असण्णिभूया** - असंज्ञीभूत, **महावेयण तरागा** - महान् वेदना वाले, **अप्पवेयण तरागा** - अल्प वेदना वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सभी नैरयिक क्या समान वेदना वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं कि सभी नैरयिक समवेदना वाले नहीं होते?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - संज्ञीभूत (जो पूर्वभव में संज्ञी पंचेन्द्रिय थे) और असंज्ञीभूत (जो पूर्वभव में असंज्ञी थे।) उनमें जो संज्ञीभूत होते हैं, वे अपेक्षाकृत महान् वेदना वाले होते हैं और उनमें जो असंज्ञीभूत होते हैं, वे अल्पतर वेदना वाले होते हैं। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि सभी नैरयिक समवेदना वाले नहीं होते हैं।

विवेचन - जो नैरयिक पूर्व भव में संज्ञी पंचेन्द्रिय थे और फिर नरक में उत्पन्न हुए हैं वे संज्ञी भूत नैरयिक कहलाते हैं तथा जो नैरयिक भूतकाल में असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय थे और फिर नरक में उत्पन्न हुए हैं वे असंज्ञीभूत नैरयिक कहलाते हैं। संज्ञीभूत नैरयिक अपेक्षाकृत महावेदना वाले होते हैं क्योंकि भूतकाल में उन्होंने तीव्र अशुभ अध्यवसाय के कारण तीव्र अशुभ कर्मों का बन्ध किया है और महानारकों में उत्पन्न हुए हैं, इससे विपरीत जो नैरयिक असंज्ञीभूत हैं वे अल्पतर वेदना वाले होते हैं। असंज्ञी जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति में से किसी भी गति का बन्ध कर सकते हैं अतः वे नरकायु का बंध करके नरक में उत्पन्न होते हैं किन्तु अति तीव्र अध्यवसाय न होने से रत्नप्रभा पृथ्वी के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतर्गत अति तीव्र वेदना न हो ऐसे नरकावासों में ही उत्पन्न होते हैं। अल्प स्थिति वाले होने से वहाँ वेदना भी अल्प होती है। अथवा संज्ञीभूत यानी पर्याप्त होने से वे महावेदना वाले हैं और असंज्ञीभूत अल्पवेदना वाले होते हैं क्योंकि अपर्याप्त होने से प्रायः मन रूप करण के अभाव में उन्हें वेदना का अनुभव नहीं होता। अथवा संज्ञा अर्थात् सम्यग्-दर्शन जिन्हें हैं वे संज्ञी-सम्यग्दृष्टि है। संज्ञीभूत महावेदना वाले हैं। क्योंकि पूर्वकृत कर्म के विपाक का स्मरण करते हुए उन्हें महान् दुःख होता है कि हमने सकल दुःखों का क्षय करने वाले अर्हत्प्रणीत धर्म का आचरण न किया जिस कारण नरक में उत्पन्न होना पड़ा है। इसलिए वे महावेदना वाले हैं जो असंज्ञी-मिथ्यादृष्टि हैं वे 'अपने किये हुए कर्मों का ही यह फल है', ऐसा नहीं जानते, अतः पश्चात्ताप रहित मानस वाले होने से वे अल्पवेदना वाले होते हैं।

यहाँ पर संज्ञीभूत, असंज्ञीभूत शब्दों के तीन अर्थ किये गये हैं। उन तीनों अर्थों में से आगे का वर्णन देखते हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय अर्थ करना अधिक संगत लगता है।

छठा द्वार

णेरइया णं भंते! सव्वे समकिरिया?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समकिरिया?'

गोयमा! णेरइया तिविहा पण्णत्ता। तंजहा-सम्मद्दिट्ठी, मिच्छद्दिट्ठी, सम्मामिच्छद्दिट्ठी। तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी तेसि णं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तंजहा - आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाण किरिया। तत्थ णं जे ते मिच्छद्दिट्ठी जे य सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसि णं णियइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तंजहा - आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाण किरिया, मिच्छादंसणवत्तिया, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समकिरिया' ॥६॥ ॥ ४७९ ॥

कठिन शब्दार्थ - समकिरिया - समान क्रिया वाले, **णियइयाओ** - नियत (निश्चित) रूप से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सभी नैरयिक क्या समान क्रिया वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि सभी नैरयिक समान क्रिया वाले नहीं होते?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक तीन प्रकार के कहे गये हैं - सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्मिथ्यादृष्टि। उनमें से जो सम्यग्दृष्टि हैं, उनके चार क्रियाएँ होती हैं, वे इस प्रकार हैं - १. आरम्भिकी, २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया और ४. अप्रत्याख्यानक्रिया। जो मिथ्यादृष्टि हैं तथा जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं, उनके नियत (निश्चित रूप से) पांच क्रियाएँ होती हैं - १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया ४. अप्रत्याख्यान क्रिया और ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया। हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि सभी नैरयिक समान क्रिया वाले नहीं होते।

विवेचन - आरम्भिकी आदि क्रियाओं का स्वरूप इस प्रकार है -

१. आरंभिकी - पृथ्वीकाय आदि छह काय रूप जीव तथा अजीव के आरम्भ से लगने वाली क्रिया को आरंभिकी क्रिया कहते हैं।

२. पारिग्रहिकी - मूर्च्छा-ममत्व भाव से लगने वाली क्रिया पारिग्रहिकी है।

३. माया प्रत्यया - सरलता का भाव न होना-कुटिलता का होना माया है। क्रोध, मान, माया और लोभ के निमित्त से लगने वाली क्रिया माया प्रत्यया है।

४. अप्रत्याख्यान क्रिया - अप्रत्याख्यान अर्थात् थोड़ा सा भी विरति परिणाम न होने रूप क्रिया अप्रत्याख्यान क्रिया है।

५. मिथ्यादर्शन प्रत्यया - जीव को अजीव, अजीव को जीव, धर्म को अधर्म, अधर्म को धर्म, साधु को असाधु, असाधु को साधु समझना इत्यादि विपरीत श्रद्धान से तथा तत्त्व में अश्रद्धान आदि से लगने वाली क्रिया मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया है।

सम्यग्दृष्टि नैरयिक को उपरोक्त पांच क्रियाओं में से प्रथम चार और मिथ्यादृष्टि तथा मिश्रदृष्टि नैरयिक को उपरोक्त पांचों क्रियाएं होती है। अतः सभी नैरयिक समान क्रिया वाले नहीं होते हैं।

सातवां द्वार

णेरइया णं भंते! सव्वे समाउया?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ०?

गोयमा! णेरइया चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा-अत्थेगइया समाउया समोववण्णगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववण्णगा, अत्थेगइया विसमाउया समोववण्णगा, अत्थेगइया विसमाउया विसमोववण्णगा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'णेरइया णो सव्वे समाउया, णो सव्वे समोववण्णगा॥ ४८०॥'

कठिन शब्दार्थ - **समाउया** - समान आयुष्य वाले, **समोववण्णगा** - समान उत्पत्ति वाले, एक साथ उत्पन्न होने वाले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या सभी नैरयिक समान आयुष्य वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि सभी नैरयिक समान आयु वाले नहीं होते?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक चार प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. कई नैरयिक समान आयु वाले और समान (एक साथ) उत्पत्ति वाले होते हैं २. कई समान आयु वाले किन्तु विषम उत्पत्ति (आगे-पीछे उत्पन्न होने) वाले होते हैं, ३. कई विषम (असमान) आयु वाले और एक साथ उत्पत्ति वाले होते हैं तथा ४. कई विषम आयु वाले और विषम ही उत्पत्ति वाले होते हैं। इस कारण से हे गौतम! सभी नैरयिक न तो समान आयु वाले होते हैं और न ही समान उत्पत्ति (एक साथ उत्पन्न होने) वाले होते हैं।

विवेचन - उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में दी हुई चौभंगी को इस प्रकार समझना चाहिये - १. जिन नैरयिकों ने दस हजार वर्ष का आयुष्य बांधा है और एक साथ उत्पन्न हुए हैं - यह पहला भंग २. दस हजार वर्ष की स्थिति वाले नरकावास में कितनेक पहले उत्पन्न हुए है और कुछ बाद में उत्पन्न हुए हैं-यह दूसरा भंग ३. अन्य नैरयिकों ने विषम-भिन्न आयुष्य बांधा है जैसे कितनेक दस हजार वर्ष की स्थिति वाले हैं और कितनेक पन्द्रह हजार वर्ष की स्थिति वाले हैं अर्थात् नरक संबंधी असमान आयुष्य बांधा है और साथ उत्पन्न हुए हैं - यह तीसरा भंग ४. कितनेक सागरोपम की स्थिति वाले हैं और कितनेक दस हजार वर्ष की स्थिति वाले हैं इस प्रकार विषम स्थिति वाले हैं और अलग-अलग समय में उत्पन्न हुए हैं, यह चौथा भंग है।

भवनवासी देवों में सात द्वार की प्ररूपणा

असुरकुमारा णं भंते! सव्वे समाहारा? एवं सव्वे वि पुच्छा।

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ० ? जहा णेरइया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सभी असुरकुमार क्या समान आहार वाले होते हैं? इत्यादि पृच्छा पूर्ववत्।

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। शेष सब निरूपण नैरयिकों की आहारादि-प्ररूपणा के समान जानना चाहिए।

असुरकुमारा णं भंते! सव्वे समकम्मा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ० ?

गोयमा! असुरकुमारा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पुव्वोववण्णगा य पच्छोववण्णगा य। तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं महाकम्मतरा, तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं अप्पकम्मतरा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'असुरकुमारा णो सव्वे समकम्मा।'

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या सभी असुरकुमार समान कर्म वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि सभी असुरकुमार समान कर्म वाले नहीं होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - पूर्वोपपन्नक और पश्चादुपपन्नक। उनमें जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे महाकर्म वाले होते हैं। उनमें जो पश्चादुपपन्नक होते हैं, वे अल्पतरकर्म वाले होते हैं। इसी कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि सभी असुरकुमार समान कर्म वाले नहीं होते हैं।

एवं वण्णलेस्साए पुच्छा।

तत्थ णं जे ते पुव्वोववण्णगा ते णं अविसुद्धवण्णतरागा, तत्थ णं जे ते पच्छोववण्णगा ते णं विसुद्धवण्णतरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'असुरकुमारा णं सव्वे णो समवण्णा।'

भावार्थ - इसी प्रकार वर्ण और लेश्या के लिए प्रश्न कहना चाहिए। भगवन्! असुरकुमार क्या सभी समान वर्ण और समान लेश्या वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पूर्वोक्त दो प्रकार के असुरकुमारों में जो पूर्वोपपन्नक हैं, वे अविशुद्धतर वर्ण वाले हैं तथा उनमें जो पश्चादुपपन्नक हैं, वे विशुद्धतर वर्ण वाले हैं। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि सभी असुरकुमार समान वर्ण वाले नहीं होते हैं।

एवं लेस्साए वि।

भावार्थ - इसी प्रकार लेश्या के विषय में कहना चाहिए।

वेयणाए जहा णेरइया।

भावार्थ - असुरकुमारों की क्रिया एवं आयु के विषय में शेष सब निरूपण नैरयिकों की क्रिया एवं आयुविषयक निरूपण के समान समझना चाहिए।

अवसेसं जहा णेरइयाणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - असुरकुमारों की क्रिया एवं आयु के विषय में शेष सब निरूपण नैरयिकों की क्रिया एवं आयुविषयक निरूपण के समान समझना चाहिए।

एवं जाव थणियकुमारा॥ ४८१॥

भावार्थ - असुरकुमारों के आहारादि विषयक निरूपण की तरह नागकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक का निरूपण इसी प्रकार समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में असुरकुमार आदि दस भवनपति देवों की समआहार आदि सात द्वारों से प्ररूपणा की गई है।

असुरकुमार आदि देवों के भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट सात हाथ की होती है। उत्तरवैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट एक लाख योजन की होती है। जो असुरकुमार आदि जितने बड़े शरीर वाले हैं वे उतने ही अधिक पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते है जो अल्प (लघु) शरीर वाले हैं वे अल्प पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं किन्तु असुरकुमारों में कर्म, वर्ण, और लेश्या नैरयिक से विपरीत (उलटी) होती है। तदनुसार पूर्वोत्पन्न देव महाकर्म वाले होते हैं, उन्होंने शुभ कर्म भोग लिये हैं और उनके बहुत अशुभ कर्म शेष रहे हैं तथा थोड़े समय में देवायु पूरी करके पृथ्वी आदि में उत्पन्न होने वाले होते हैं इससे विपरीत पश्चादुत्पन्न देव अल्प कर्म वाले हैं। इसी तरह पूर्वोत्पन्न देव अविशुद्ध वर्ण वाले हैं और पश्चादुत्पन्न देव विशुद्ध वर्ण वाले हैं। पूर्वोत्पन्न देव अविशुद्ध लेश्या वाले हैं और पश्चादुत्पन्न देव विशुद्ध लेश्या वाले हैं।

पृथ्वीकायिक आदि में सप्त द्वार प्ररूपणा

पुढविकाइया आहार कम्म वण्ण लेस्साहिं जहा णेरइया।

भावार्थ - जैसे नैरयिकों के आहार आदि के विषय में कहा है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिकों के सम-विषम आहार, कर्म, वर्ण और लेश्या के विषय में कहना चाहिए।

विवेचन - शंका - पृथ्वीकायिकों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है फिर अल्प शरीर और महाशरीर कैसे?

समाधान - पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग होने पर भी उनमें चउट्ठाणवडिया-चतुःस्थानपतित अन्तर होता है। प्रज्ञापना सूत्र के पांचवें पद में कहा भी है -

"पुढविक्काए पुढविक्काइयस्स ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए"

अतः महाशरीर वाले पृथ्वीकायिक महाशरीर होने से लोमाहार की अपेक्षा अधिक पुद्गलों का आहार करते हैं और बहुत पुद्गलों को उच्छ्वास रूप में ग्रहण करते हैं तथा बार-बार आहार करते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और बार-बार उच्छ्वास लेते हैं जबकि अल्पशरीर वाले पृथ्वीकायिक के अल्प शरीर होने से अल्प आहार और अल्प उच्छ्वास होता है। आहार और उच्छ्वास का कदाचित्पना अपर्याप्त अवस्था की अपेक्षा समझना चाहिए।

पुढविकाइया णं भंते! सव्वे समवेयणा पण्णत्ता?

हंता गोयमा! सव्वे समवेयणा।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?

गोयमा! पुढविकाइया सव्वे असण्णी असण्णिभूयं अणिययं वेयणं वेयंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! पुढविकाइया सव्वे समवेयणा।

कठिन शब्दार्थ - अणिययं - अनियत।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या सभी पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले होते हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! सभी पृथ्वीकायिक समान वेदना वाले होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सभी पृथ्वीकायिक असंज्ञी होते हैं। वे असंज्ञीभूत और अनियत वेदना वेदते हैं। इस कारण हे गौतम! सभी पृथ्वीकायिक समवेदना वाले होते हैं।

पुढविकाइया णं भंते! सव्वे समकिरिया?

हंता गोयमा! पुढविकाइया सव्वे समकिरिया।

से केणट्ठेणं० ?

गोयमा! पुढविकाइया सव्वे माइमिच्छादिट्ठी, तेसिं णियइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तंजहा - आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अप्पच्चक्खाणकिरिया, मिच्छादंसणवत्तिया य, से तेणट्ठेणं गोयमा!०।

कठिन शब्दार्थ - णियइयाओ - नियत रूप से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सभी पृथ्वीकायिक समक्रिया वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सभी पृथ्वीकायिक समक्रिया वाले होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है?

उत्तर - हे गौतम! सभी पृथ्वीकायिक मायी-मिथ्यादृष्टि होते हैं, उनके नियत (निश्चित) रूप से पांचों क्रियाएँ होती हैं। वे इस प्रकार हैं - १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया ४.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्रत्याख्यान क्रिया और ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया। इसी कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि सभी पृथ्वीकायिक समान क्रियाओं वाले होते हैं।

एवं जाव चउरिंदिया।

भावार्थ - पृथ्वीकायिकों के समान ही अप्कायिकों, तेजस्कायिकों, वायुकायिकों, वनस्पतिकायिकों, बेइन्द्रियों, तेइन्द्रियों और चउरिन्द्रियों की समान वेदना और समान क्रिया कहनी चाहिए।

विवेचन - पांच स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय भी नैरयिकों की तरह कह देना चाहिए। वेदना की अपेक्षा सरीखी वेदना वाले हैं असंज्ञी भूत हैं और अव्यक्त वेदना वेदते हैं। क्रिया की अपेक्षा सभी मिथ्यादृष्टि है इसलिए नियमपूर्वक पांच क्रिया वाले होते हैं।

यद्यपि तीन विकलेन्द्रियों में दूसरा गुणस्थान भी होने से उनमें सास्वादन समकित पायी जाती है। तथापि वह समकित भी विराधना का कारण होने से एवं उसमें मिथ्यात्व अभिमुख परिणाम होने से तीन विकलेन्द्रियों में पहले एवं दूसरे दोनों गुणस्थानों में मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया मानी गयी है।

पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया जहा णेरइया, णवरं किरियाहिं सम्मद्दिट्ठी मिच्छद्दिट्ठी सम्मामिच्छद्दिट्ठी। तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - असंजया य संजयासंजया य। तत्थ णं जे ते संजयासंजया तेसि णं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तंजहा - आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया। तत्थ णं जे ते असंजया तेसि णं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तंजहा-आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाण किरिया। तत्थ णं जे ते मिच्छा द्दिट्ठी जे य सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसि णं णियइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तंजहा-आरंभिया, परिग्गहिया, मायावत्तिया, अपच्चक्खाण किरिया, मिच्छादंसणवत्तिया, सेसं तं चेव॥ ४८२॥

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों का आहारादि विषयक कथन नैरयिक जीवों के आहारादि विषयक कथन के अनुसार समझना चाहिए। विशेषता यह कि क्रियाओं में नैरयिकों से कुछ विशेषता है। पंचेन्द्रियतिर्यंच तीन प्रकार के हैं, यथा - सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। उनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे दो प्रकार के हैं - असंयत और संयतासंयत। जो संयतासंयत हैं, उनको तीन क्रियाएँ लगती हैं, वे इस प्रकार हैं - आरम्भिकी, पारिग्रहिकी और मायाप्रत्यया। जो असंयत होते हैं, उनको चार क्रियाएँ लगती हैं। वे इस प्रकार हैं - १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया और ४. अप्रत्याख्यानक्रिया। इन तीनों में से जो मिथ्यादृष्टि हैं और जो सम्यग्-मिथ्यादृष्टि हैं, उनको निश्चित रूप से पांच क्रियाएँ लगती हैं, वे इस प्रकार हैं - १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया ४. अप्रत्याख्यानक्रिया और ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया। शेष सारा वर्णन नैरयिकों के समान समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तिर्यंच पंचेन्द्रियों का आहार आदि विषयक कथन किया गया है जो नैरयिकों की तरह कहना चाहिए किन्तु क्रिया की अपेक्षा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के तीन भेद हैं - सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि। सम्यग् दृष्टि तिर्यंच पंचेन्द्रिय के दो भेद - संयतासंयत और असंयत। संयतासंयत के तीन क्रियाएं होती हैं - आरंभिकी, पारिग्रहिकी और माया प्रत्यया। असंयत के मिथ्यादर्शन प्रत्यया के सिवाय चार क्रियाएं होती हैं। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांचों क्रियाएं होती हैं।

सास्वादन गुणस्थान वाले सम्यग्दृष्टि तिर्यंच पंचेन्द्रिय में भी पांचों क्रिया समझना चाहिए। कारण विकलेन्द्रिय के समान समझना चाहिए। भगवती सूत्र शतक ३० में सास्वादन समकित में क्रियावादी समवसरण नहीं माना है। क्रियावादी समवसरण वाले जीवों को ही मुख्य रूप से सम्यग्दृष्टि माना गया है। उनमें मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया नहीं होती है।

मनुष्य में सप्त द्वारों की प्ररूपणा

मणुस्सा णं भंते! सव्वे समाहारा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

से केणट्ठेणं०?

गोयमा! मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - महासरीरा य अप्पसरीरा य। तत्थ णं जे ते महासरीरा ते णं बहुतराए पोग्गले आहारेंति जाव बहुतराए पोग्गले णीससंति, आहच्च आहारेंति, जाव आहच्च णीससंति। तत्थ णं जे ते अप्पसरीरा ते णं अप्पतराए पोग्गले आहारेंति जाव अप्पतराए पोग्गले णीससंति, अभिक्खणं आहारेंति जाव अभिक्खणं णीससंति, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'मणुस्सा सव्वे णो समाहारा।' सेसं जहा णेरइयाणं, णवरं किरियाहिं मणूसा तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - सम्मद्दिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, सम्मामिच्छद्दिट्ठी। तत्थ णं जे ते सम्मद्दिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता। तंजहा- संजया, असंजया, संजयासंजया। तत्थ णं जे ते संजया ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सरागसंजया य वीयरागसंजया य। तत्थ णं जे ते वीयरागसंजया ते णं अकिरिया, तत्थ णं जे ते सरागसंजया ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पमत्तसंजया य अपमत्तसंजया य। तत्थ णं जे ते अपमत्तसंजया तेसिं एगा मायावत्तिया किरिया कज्जइ। तत्थ णं जे ते पमत्तसंजया तेसिं दो किरियाओ कज्जंति-आरंभिया मायावत्तिया य। तत्थ णं जे ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संजयासंजया तेसिं तिण्णि किरियाओ कज्जंति, तंजहा - आरंभिया परिग्गहिया मायावत्तिया। तत्थ णं जे ते असंजया तेसिं चत्तारि किरियाओ कज्जंति, तंजहा - आरंभिया परिग्गहिया मायावत्तिया अपच्चक्खाण किरिया। तत्थ णं जे ते मिच्छदिट्ठी जे सम्मामिच्छद्दिट्ठी तेसिं णियइयाओ पंच किरियाओ कज्जंति, तंजहा - आरंभिया परिग्गहिया मायावत्तिया अपच्चक्खाणकिरिया मिच्छादंसणवत्तिया, सेसं जहा णेरइयाणं॥ ४८३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या सभी मनुष्य समान आहार वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न-हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि सब मनुष्य समान आहार वाले नहीं हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - महाशरीर वाले और अल्प (छोटे) शरीर वाले। उनमें जो महाशरीर वाले हैं, वे बहुत-से पुद्गलों का आहार करते हैं, यावत् बहुत से पुद्गलों का निःश्वास लेते हैं तथा कदाचित् आहार करते हैं, यावत् कदाचित् निःश्वास लेते हैं। उनमें जो अल्प शरीर वाले हैं, वे अल्पतर पुद्गलों का आहार करते हैं, यावत् अल्पतर पुद्गलों का निःश्वास लेते हैं, बार-बार आहार लेते हैं, यावत् बार-बार निःश्वास लेते हैं। इस कारण हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि सभी मनुष्य समान आहार वाले नहीं हैं। शेष सब वर्णन नैरयिकों के अनुसार समझ लेना चाहिए। किन्तु क्रियाओं की अपेक्षा से नैरयिकों से कुछ विशेषता है। वह इस प्रकार हैं - मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए हैं, यथा - सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि। इनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं, जैसे कि - संयत, असंयत और संयतासंयत। जो संयत हैं वे दो प्रकार के कहे हैं - सरागसंयत और वीतरागसंयत। इनमें जो वीतरागसंयत हैं, वे अक्रिय (क्रियारहित) होते हैं। उनमें जो सरागसंयत होते हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा - प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत। इनमें जो अप्रमत्तसंयत होते हैं, उनमें एक माया प्रत्यया क्रिया ही होती है। जो प्रमत्तसंयत होते हैं, उनमें दो क्रियाएं होती हैं - १. आरम्भिकी और २. मायाप्रत्यया। उनमें जो संयतासंयत होते हैं, उनमें तीन क्रियाएं पाई जाती हैं, यथा-१. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी और ३. मायाप्रत्यया। उनमें जो असंयत हैं, उनमें चार क्रियाएं पाई जाती हैं, यथा - १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया और ४. अप्रत्याख्यानक्रिया किन्तु उनमें जो मिथ्यादृष्टि हैं, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं तथा जो सास्वादन सम्यग्दृष्टि हैं उनमें निश्चित रूप से पांचों क्रियाएं होती हैं, यथा - १. आरम्भिकी २. पारिग्रहिकी ३. मायाप्रत्यया ४. अप्रत्याख्यान क्रिया और ५. मिथ्यादर्शनप्रत्यया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के समान मनुष्य में भी सास्वादन सम्यग् दृष्टि में पांचों क्रियाएं होती हैं। शेष आयुष्य का कथन उसी प्रकार समझ लेना चाहिए, जैसा नैरयिकों का कथन किया गया है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्य में आहार आदि सात द्वारों की प्ररूपणा की गयी है।

सामान्यतया महाशरीर वाले मनुष्य बहुत से पुद्गलों का आहार करते हैं, बहुत से पुद्गलों को परिणत करते हैं तथा बहुत से पुद्गलों को उच्छ्वास रूप में ग्रहण करते हैं और निःश्वास रूप में छोड़ते हैं किन्तु महाशरीर वाले देवकुरु आदि युगलिक मनुष्य कदाचित् ही कवलाहार करते हैं क्योंकि उनका आहार **'अट्ठमभत्तस्स आहारो'** - अष्टम भक्त से होता है अर्थात् वे तीन-तीन दिन छोड़ कर आहार करते हैं। वे कभी कभी ही श्वासोच्छ्वास लेते हैं क्योंकि वे अत्यंत सुखी होते हैं अतः उनका श्वासोच्छ्वास कभी-कभी होता है। अल्प शरीर वाले मनुष्य बार-बार थोड़ा-थोड़ा आहार करते हैं जैसे कि छोटे बच्चे बार-बार थोड़ा-थोड़ा आहार करते देखे जाते हैं, अल्पशरीर वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में सतत आहार संभव है और उनमें दुःख की बहुलता होने से वे बार-बार श्वासोच्छ्वास लेते हैं। अतः मनुष्यों में समान आहार आदि नहीं होता है। जो मनुष्य पूर्वोत्पन्न होते हैं उनमें तरुणता आदि के कारण शुद्ध वर्ण आदि होते हैं।

जिनके कषायों का उपशम या क्षय नहीं हुआ है किन्तु जो संयत (संयमी) हैं वे सराग संयत कहलाते हैं किन्तु जिनके कषायों का सर्वथा उपशम या क्षय हो चुका है वे वीतराग संयत कहलाते हैं। वीतरागता के कारण वीतराग संयत में आरंभिकी आदि कोई क्रिया नहीं होती है। सराग संयत में जो अप्रमत्त संयत होते हैं उनमें कषाय के सर्वथा क्षीण नहीं होने से एक मात्र माया प्रत्यया क्रिया ही होती है। प्रमाद के कारण आरंभ आदि में प्रवृत्ति होने से प्रमत्त संयत को आरंभिकी और मायाप्रत्यया क्रिया होती है।

वाणव्यंतर आदि देवों में सप्त द्वार

वाणमंतराणं जहा असुरकुमाराणं।

भावार्थ - जैसे असुरकुमारों की आहारादि की वक्तव्यता कही गयी है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों की आहारादि संबंधी वक्तव्यता कहनी चाहिए।

एवं जोइसिय वेमाणियाण वि, णवरं ते वेयणाए दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - माइ मिच्छदिट्ठी उववण्णगा य अमाइ सम्मदिट्ठी उववण्णगा य। तत्थ णं जे ते माइमिच्छ-दिट्ठी उववण्णगा ते णं अप्पवेयणतरागा, तत्थ णं जे ते अमाइ सम्मदिट्ठी उववण्णगा ते णं महावेयण तरागा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ०। सेसं तहेव॥ ४८४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार ज्योतिषी और वैमानिक देवों के आहारादि के विषय में भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि वेदना की अपेक्षा वे दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - मायीमिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक। उनमें जो मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक हैं वे अल्पतर वेदना वाले हैं और जो अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक हैं, वे महावेदना वाले हैं। इसी कारण हे गौतम! सब वैमानिक समान वेदना वाले नहीं हैं। शेष आहार, वर्ण, कर्म आदि संबंधी सारा कथन असुरकुमारों और वाणव्यंतरों के समान समझ लेना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की आहार आदि विषयक प्ररूपणा की गयी है। असुरकुमार के वर्णन के समान ही वाणव्यंतर देवों के विषय में समझ लेना चाहिये। ज्योतिषी और वैमानिक देवों में असंज्ञीभूत और संज्ञीभूत के स्थान पर मायी मिथ्यादृष्टि उपपन्नक और अमायी सम्यग्दृष्टि उपपन्नक कहना चाहिये क्योंकि भगवती सूत्र शतक १ उद्देशक २ में कहा है - **"असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं वाणमंतरेसु"** अर्थात् - असंज्ञी जीवों की उत्पत्ति देवगति में हो तो जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट वाणव्यन्तरों में होती है यानी ज्योतिषी और वैमानिक में असंज्ञी जीव उत्पन्न नहीं होते हैं। शेष सारी वक्तव्यता असुरकुमारों के समान ही समझ लेना चाहिये।

सलेशी चौबीस दण्डकों में सप्त द्वार

सलेस्सा णं भंते! णेरइया सव्वे समाहारा, समसरीरा, समुस्सास णिस्सासा-सव्वे वि पुच्छा।

गोयमा! एवं जहा ओहिओ गमओ तहा सलेस्सा गमओ वि णिरवसेसो भाणियव्वो जाव वेमाणिया।

कठिन शब्दार्थ - **सलेस्सा**- सलेश्य-लेश्या सहित-लेश्या वाले।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! क्या सलेश्य सभी नैरयिक समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले होते हैं? इसी प्रकार आगे के द्वारों के विषय में भी वही पूर्ववत् पृच्छा की गई है?

उत्तर - हे गौतम! इस प्रकार जैसे सामान्य समुच्चय नैरयिकों का-औघिक गम (अभिलाप) कहा गया है, उसी प्रकार सभी सलेश्य नैरयिकों के सात द्वारों के विषय का समस्त गम यावत् वैमानिकों तक कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सलेश्य-लेश्या वाले नैरयिक से वैमानिक पर्यन्त चौबीस दण्डकों के जीवों की आहार आदि सात द्वारों के विषय में प्ररूपणा की गयी है।

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

कण्हलेस्सा णं भंते! णेरइया सव्वे समाहारा-पुच्छा?

गोयमा! जहा ओहिया, णवरं णेरइया वेयणाए माइमिच्छदिट्ठी उववण्णगा य अमाइ सम्मद्दिट्ठी उववण्णगा य भाणियव्वा, सेसं तहेव जहा ओहियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्णलेश्या वाले सभी नैरयिक समान आहार वाले, समान शरीर वाले और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले होते हैं। इत्यादि प्रश्न करना चाहिए।

उत्तर - हे गौतम! जैसे सामान्य (औघिक) नैरयिकों का आहारादि विषयक कथन किया गया है, उसी प्रकार कृष्णलेश्या वाले नैरयिकों का कथन भी समझ लेना चाहिए। विशेषता इतनी हैं कि वेदना की अपेक्षा नैरयिक मायी-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक, ये दो प्रकार के कहने चाहिए। शेष कर्म, वर्ण, लेश्या, क्रिया और आयुष्य आदि के विषय में समुच्चय नैरयिकों के विषय में जैसा कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

विवेचन - जैसे सामान्य नैरयिकों के विषय में कथन किया गया हैं उसी प्रकार कृष्ण लेश्या युक्त नैरयिकों के विषय में कथन करना चाहिये किन्तु वेदना की अपेक्षा असंज्ञीभूत और संज्ञीभूत भेदों के स्थान पर मायी-मिथ्यादृष्टि उपपन्नक और अमायी-सम्यग्दृष्टि उपपन्नक कहना चाहिये क्योंकि असंज्ञी जीव प्रथम नरक में कृष्णलेश्या वाले नैरयिक नहीं होते तथा पांचवीं आदि जिस नरक पृथ्वी में कृष्णलेश्या पाई जाती है उसमें असंज्ञी जीव उत्पन्न नहीं होते अतः कृष्ण लेश्या वाले नैरयिकों में संज्ञीभूत और असंज्ञीभूत ये भेद नहीं होते। इनमें मायी मिथ्यादृष्टि नैरयिक महावेदना वाले होते हैं और अमायी सम्यग्दृष्टि नैरयिक अपेक्षाकृत अल्पवेदना वाले होते हैं।

असुरकुमारा जाव वाणमंतरा एए जहा ओहिया, णवरं मणुस्साणं किरियाहिं विसेसो-जाव तत्थ णं जे ते सम्मदिट्ठी ते तिविहा पण्णत्ता। तंजहा - संजया असंजया संजयासंजया य, जहा ओहियाणं।

भावार्थ - कृष्णलेश्यायुक्त असुरकुमारों से लेकर नागकुमार आदि भवनपति, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय, मनुष्य और वाणव्यन्तर के आहारादि सप्त द्वारों के विषय में उसी प्रकार कहना चाहिए, जैसा समुच्चय असुरकुमारादि के विषय में कहा गया है। मनुष्यों में समुच्चय से क्रियाओं की अपेक्षा कुछ विशेषता है। जिस प्रकार समुच्चय मनुष्यों का कथन किया गया है, उसी प्रकार कृष्णलेश्यायुक्त मनुष्यों का कथन भी यावत्-"उनमें से जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - संयत, असंयत और संयतासंयत।" इत्यादि सब कथन पूर्ववत् करना चाहिए।

विवेचन - कृष्णलेश्या वाले मनुष्य में क्रिया की अपेक्षा तीन भेद कहना चाहिए - १. संयत २. संयता-संयत और ३. असंयत। संयत के दो क्रियाएं होती हैं - आरम्भिकी और माया प्रत्यया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयतासंयत के तीन क्रियाएं होती हैं - आरंभिकी, पारिग्रहिकी और माया प्रत्यया। असंयत के मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया के सिवाय चार क्रियाएं होती हैं।

यहाँ पर मनुष्यों में क्रिया की पृच्छा में **"जहा ओहियाणं"** कहा है परन्तु कृष्ण लेशी मनुष्यों में छठे गुणस्थान तक ही होने से सभी प्रमत्त ही होते हैं अतः संयतों के भेदों में प्रमत्त अप्रमत्त भेद नहीं किया गया है। जैसा कि - भगवती सूत्र शतक एक उद्देशक दो में लेश्या के वर्णन में इस प्रकार का पाठ दिया है **"मणुस्सा किरियासु सराग वियराग पमत्ताऽपमत्ता न भाणियव्वा"** ऐसे ही यहाँ पर भी समझ लेना चाहिए।

जोइसिय-वेमाणिया आइल्लियासु तिसु लेस्सासु ण पुच्छिज्जंति।

भावार्थ - ज्योतिष और वैमानिक देवों के विषय में प्रारम्भ की तीन लेश्याओं (कृष्ण, नील और कापोत लेश्या) को लेकर प्रश्न नहीं करना चाहिए।

एवं जहा किण्हलेस्सा विचारिया तहा णीललेस्सा वि विचारेयव्वा।

कठिन शब्दार्थ - विचारिया - विचार किया है, **विचारेयव्वा** - विचार कर लेना चाहिये।

भावार्थ - इसी प्रकार जैसे कृष्णलेश्या वालों चौबीस दण्डकवर्ती जीवों का विचार किया है, उसी प्रकार नीललेश्या वालों का भी विचार कर लेना चाहिए।

काउलेस्सा णेरइएहिंतो आरब्भ जाव वाणमंतरा, णवरं काउलेस्सा णेरइया वेयणाए जहा ओहिया।

भावार्थ - कापोतलेश्या वाले नैरयिकों से प्रारम्भ करके दस भवनपति, पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रियतिर्यंच, मनुष्य एवं वाणव्यन्तरों तक का सप्तद्वारादि विषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेषता यह है कि कापोतलेश्या वाले नैरयिकों का वेदना के विषय में प्रतिपादन समुच्चय (औघिक) नैरयिकों के समान जानना चाहिए।

विवेचन - कापोत लेश्या वाले नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं - १. संज्ञीभूत २. असंज्ञीभूत आदि सारा वर्णन समझना चाहिये। असंज्ञी जीव भी पहली नरक पृथ्वी में उत्पन्न होते हैं जहाँ कि कापोत लेश्या पाई जाती है। अतः कापोत लेश्या वाले नैरयिकों का वेदना विषयक कथन समुच्चय नैरयिकों के समान समझना चाहिये।

तेउलेस्साणं भंते! असुरकुमाराणं ताओ चेव पुच्छाओ।

गोयमा! जहेव ओहिया तहेव, णवरं वेयणाए जहा जोइसिया।

भावार्थ - हे भगवन्! तेजोलेश्या वाले असुरकुमारों के समान आहारादि सप्तद्वार विषयक प्रश्न उसी प्रकार हैं, इनका क्या समाधान है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार समुच्चय असुरकुमारों का आहारादि विषयक कथन किया गया है, उसी प्रकार तेजोलेश्या वाले असुरकुमारों की आहारादि सम्बन्धी वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए। विशेषता यह है कि वेदना के विषय में जैसे ज्योतिषियों की वक्तव्यता कही है, उसी प्रकार यहाँ भी कहनी चाहिए।

पुढवि आउ वणस्सइ पंचेंदिय तिरिक्ख मणुस्सा जहा ओहिया तहेव भाणियव्वा, णवरं मणूसा किरियाहिं जे संजया ते पमत्ता य अपमत्ता य भाणियव्वा, सरागा वीयरागा णत्थि।

भावार्थ - तेजोलेश्या वाले पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, पंचेन्द्रियतिर्यंचों और मनुष्यों का कथन उसी प्रकार करना चाहिए, जिस प्रकार औघिक सूत्रों में किया गया है। विशेषता यह है कि क्रियाओं की अपेक्षा से तेजोलेश्या वाले मनुष्यों के विषय में कहना चाहिए कि जो संयत हैं, वे प्रमत्त और अप्रमत्त दो प्रकार के हैं तथा सरागसंयत और वीतरागसंयत ये दो भेद तेजोलेश्या वाले मनुष्यों में नहीं होते हैं।

वाणमंतरा तेउलेस्साए जहा असुरकुमारा,

भावार्थ - तेजोलेश्या की अपेक्षा से वाणव्यन्तरों का कथन असुरकुमारों के समान समझना चाहिए।

एवं जोइसिय वेमाणिया वि, सेसं तं चेव।

भावार्थ - इसी प्रकार तेजोलेश्या विशिष्ट ज्योतिषी और वैमानिकों के विषय में भी पूर्ववत् कहना चाहिए। शेष आहारादि पदों के विषय में पूर्वोक्त असुरकुमारों के समान ही समझना चाहिए।

विवेचन - ज्योतिषी और वैमानिक में वेदना द्वार इस तरह कहना-ज्योतिषी और वैमानिक के मायी मिथ्यादृष्टि और अमायी सम्यग्दृष्टि के भेद से दो-दो भेद हैं। मायी मिथ्यादृष्टि ज्योतिषी और वैमानिक के साता वेदनीय की अपेक्षा अल्प वेदना है और अमायी सम्यग्दृष्टि के साता वेदनीय की अपेक्षा महावेदना है।

एवं पम्हलेस्सा वि भाणियव्वा, णवरं जेसिं अत्थि। सुक्कलेस्सा वि तहेव जेसिं अत्थि, सव्वं तहेव जहा ओहियाणं गमओ, णवरं पम्हलेस्स-सुक्कलेस्साओ पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिय मणूस वेमाणियाणं चेव, ण सेसाणं ति॥ ४८५॥

भावार्थ - इसी तरह पद्मलेश्या वालों के लिये भी आहारादि के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि जिन जीवों में पद्मलेश्या होती है, उन्हीं में उसका कथन करना चाहिए। शुक्ललेश्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वालों का आहारादि विषयक कथन भी इसी प्रकार का होता है, किन्तु उन्हीं जीवों में कहना चाहिए, जिनमें वह होती है तथा जिस प्रकार विशेषण रहित औघिकों का गम (अभिलाप-पाठ) कहा है, उसी प्रकार पद्मलेश्या-शुक्ल लेश्या वाले जीवों का आहारादि विषयक सब कथन करना चाहिए। इतना विशेष है कि पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या पंचेन्द्रिय तिर्यंचों, मनुष्यों और वैमानिकों में ही होती है, शेष जीवों में नहीं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण आदि लेश्याओं से युक्त नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक में आहार आदि सात द्वारों के विषय में प्ररूपणा की गई है। पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्याओं वाले जीवों के आहार आदि का वर्णन तेजोलेश्या के समान समझना चाहिये। विशेषता यह है कि जिन जीवों में ये दोनों लेश्याएं पाई जाती हैं उन्हीं के विषय में कथन करना चाहिये। ये दोनों लेश्याएं तिर्यंच पंचेन्द्रियों, मनुष्यों और वैमानिक देवों में ही पाई जाती है, शेष जीवों में नहीं।

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तरसमे लेस्सापए पढमो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र के सतरहवें लेश्या पद का प्रथम उद्देसक समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तरसमं लेस्सापयं बीओ उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्या पद-द्वितीय उद्देशक

चौबीस दण्डकों में लेश्याएं

कइ णं भंते! लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छ ल्लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हलेस्सा, णीललेस्सा, काउलेस्सा, तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा॥ ४८६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लेश्याएं कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! लेश्याएं छह कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कृष्ण लेश्या, २. नील लेश्या ३. कापोत लेश्या ४. तेजो लेश्या ५. पद्म लेश्या और ६. शुक्ल लेश्या।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में छह लेश्याएं कही गई हैं। कृष्ण द्रव्य रूप अथवा कृष्ण द्रव्य से उत्पन्न हुई लेश्या, कृष्ण लेश्या है। इसी प्रकार नील लेश्या आदि का अर्थ भी समझ लेना चाहिए।

णेरइयाणं भंते! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तिण्णि० तंजहा - कण्हलेस्सा, णीललेस्सा, काउलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों में तीन लेश्याएं होती हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कृष्ण लेश्या २. नील लेश्या और ३. कापोत लेश्या।

तिरिक्ख जोणियाणं भंते! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छ ल्लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक जीवों में कितनी लेश्याएँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंचयोनिक जीवों में छह लेश्याएं होती हैं, वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या से लेकर शुक्ल लेश्या तक।

एगिंदियाणं भंते! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीवों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीवों में चार लेश्याएं होती हैं। वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या से लेकर तेजो लेश्या तक।

पुढवीकाइयाणं भंते! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! इनमें भी इसी प्रकार चार लेश्याएँ समझनी चाहिए।

आउ वणस्सइ काइयाण वि एवं चेव।

भावार्थ - इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों में भी चार लेश्याएँ जाननी चाहिए।

तेउ वाउ बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियाणं जहा णेरइयाणं।

भावार्थ - तेजस्कायिक, वायुकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों में नैरयिकों की तरह तीन लेश्याएं होती हैं।

पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! छ ल्लेस्सा - कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों में छह लेश्याएं होती हैं, यथा - कृष्णलेश्या से लेकर शुक्ल लेश्या तक।

सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहा णेरइयाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के समान प्रारम्भ की तीन लेश्याएं समझनी चाहिए।

गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! छ ल्लेस्सा-कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में छह लेश्याएं होती हैं - कृष्ण लेश्या से शुक्ल लेश्या तक।

तिरिक्ख जोणिणीणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! छ ल्लेस्साओ एयाओ चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज तिर्यंच योनिक स्त्रियों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये ही कृष्ण आदि छह लेश्याएँ होती हैं।

मणुस्साणं पुच्छा?

गोयमा! छ ल्लेसाओ एयाओ चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये ही कृष्ण आदि छह लेश्याएँ होती हैं।

सम्मुच्छिम मणुस्साणं पुच्छा?

गोयमा! जहा णेरइयाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे नैरयिकों में प्रारम्भ की तीन लेश्याएँ कही हैं, वैसे ही सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में भी होती हैं।

गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं पुच्छा?

गोयमा! छल्लेस्साओ० तंजहा-कण्हलेसा जाव सुक्कलेसा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज मनुष्यों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर-हे गौतम! गर्भज मनुष्यों में छह लेश्याएं होती हैं-कृष्ण लेश्या से लेकर शुक्ल लेश्या तक।

मणुस्सीणं पुच्छा?

गोयमा! एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज मनुष्य स्त्री में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे गर्भज मनुष्यों में छह लेश्याएँ होती हैं इसी प्रकार गर्भज स्त्रियों में भी छह लेश्याएं समझनी चाहिए।

देवाणं पुच्छा?

गोयमा! छ एयाओ चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देवों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये ही छह लेश्याएं होती हैं।

देवीणं पुच्छा?

गोयमा! चत्तारि-कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देवियों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! देवियों में चार लेश्याएँ होती हैं, वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या से लेकर तेजो लेश्या तक।

भवणवासीणं भंते! देवाणं पुच्छा?

गोयमा! एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भवनवासी देवों म कितनी लेश्याएँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार पूर्ववत् इनमें चार लेश्याएं होती हैं।

एवं भवणवासिणीण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार भवनवासी देवियों में भी चार लेश्याएँ समझनी चाहिए।

वाणमंतरदेवाणं पुच्छा?

गोयमा! एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वाणव्यंतर देवों में कितनी लेश्याएं कही गयी हैं?

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार चार लेश्याएं समझनी चाहिए।

एवं वाणमंतरीण वि।

भावार्थ - वाणव्यन्तर देवियों में भी ये ही चार लेश्याएं समझनी चाहिएं।

जोइसियाणं पुच्छा?

गोयमा! एगा तेउलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देवों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देवों में एक मात्र तेजो लेश्या होती है।

एवं जोइसिणीण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार ज्योतिषी देवियों के विषय में जानना चाहिए।

वेमाणियाणं पुच्छा?

गोयमा! तिण्णि० तंजहा-तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देवों में कितनी लेश्याएँ कही गयी हैं?

उत्तर - हे गौतम! वैमानिक देवों में तीन लेश्याएँ कही गयी हैं - १. तेजो लेश्या २. पद्म लेश्या और ३. शुक्ल लेश्या।

वेमाणिणीणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! एगा तेउलेसा॥ ४८७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देवियों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! उनमें एकमात्र तेजो लेश्या होती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों में पाई जाने वाली लेश्याओं का निरूपण किया गया है जिसकी संग्रहणी गाथाएं इस प्रकार हैं -

किण्हा नीला काऊ तेउलेसा य भवणवंतरिया।
जोइस सोहम्मीसाण तेउलेसा मुणेयव्वा॥ १॥
कप्पे सणंकुमारे माहिंदे चेव बंभलोए य।
एएसु पम्हलेसा तेण परं सुक्कलेसा उ॥ २॥
पुढवी-आउ-वणस्सइ बायर पत्तेय लेस चत्तारि।
गब्भ य तिरिनरेसु छल्लेसा तिन्नि सेसाणं॥ ३॥

भावार्थ - कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या भवनपति और वाणव्यंतर देवों में होती है। ज्योतिषियों, सौधर्म और ईशान देवलोक के देवों में एक तेजो लेश्या होती है। सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक के देवों में पद्म लेश्या और आगे के देवलोकों के देवों में शुक्ल लेश्या होती है। बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवों में प्रारंभ की चार लेश्याएं, गर्भज तिर्यंच और मनुष्यों में छहों लेश्याएं और शेष जीवों में प्रथम की तीन लेश्याएं होती है। वैमानिक देवियाँ, प्रथम सौधर्म देवलोक और दूसरे ईशान देवलोक में ही हैं और उनमें एक मात्र तेजो लेश्या ही होती है। आगे के देवलोकों में देवियाँ नहीं पाई जाती है।

सलेशी-अलेशी जीवों का अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! जीवाणं सलेस्साणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साणं अलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा संखिज्ज गुणा, तेउलेस्सा संखिज्ज गुणा, अलेस्सा अणंत गुणा, काउलेस्सा अणंत गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, सलेस्सा विसेसाहिया॥ ४८८॥

कठिन शब्दार्थ - सलेस्साणं - सलेश्य-लेश्या वाले जीवों में, **अलेस्साण** - अलेश्य-लेश्या रहित जीवों में।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन सलेश्य, कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या वाले और अलेश्य जीवों में कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े जीव शुक्ल लेश्या वाले हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले संख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले संख्यात गुणा हैं, उनसे अलेश्य अनन्त गुणा हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले अनन्त गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं और सलेश्य उनसे भी विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सलेशी और अलेशी जीवों के अल्पबहुत्व का कथन किया गया है जो इस प्रकार हैं - सबसे थोड़े जीव शुक्ल लेश्या वाले हैं क्योंकि कितनेक तिर्यंच पंचेन्द्रियों, मनुष्यों और लान्तक देवलोक आदि के देवों में शुक्ल लेश्या पायी जाती है। उनसे पद्म लेश्या वाले जीव संख्यात गुणा हैं क्योंकि संख्यात गुणा तिर्यंच पंचेन्द्रियों, मनुष्यों, सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक कल्पवासी देवों में पद्म लेश्या होती है। उनसे तेजो लेश्या वाले जीव संख्यात गुणा हैं क्योंकि बादर पृथ्वीकाय, अपकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय में तथा संख्यात गुणा तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्यों एवं भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषियों, पहले दूसरे देवलोक के देवों में तेजो लेश्या होती है। उनसे अलेशी-लेश्या रहित जीव अनंत गुणा हैं क्योंकि सिद्ध भगवान् अनन्त गुणा हैं। उनसे भी कापोत लेश्या वाले अनन्त गुणा हैं क्योंकि सिद्धों से भी कापोत लेशी वनस्पतिकायिक जीव अनन्त गुणा हैं। उनसे भी नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं। उनसे कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं क्योंकि क्लिष्ट, क्लिष्टतर अध्यवसाय वाले जीव अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। उनसे भी सलेशी-लेश्या वाले जीव विशेषाधिक हैं क्योंकि उनमें नील लेश्या वाले आदि जीवों का भी समावेश है।

विविध लेश्या वाले चौबीस दण्डक के जीवों का अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! णेरइयाणं कण्हलेस्साणं णीललेस्साणं काउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइया कण्हलेस्सा, णीललेस्सा असंखिज्ज गुणा, काउलेस्सा असंखिज्ज गुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या वाले नैरयिकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक हैं, उनसे असंख्यात गुणा नील लेश्या वाले हैं और उनसे भी असंख्यात गुणा कापोत लेश्या वाले हैं।

विवेचन - नैरयिकों में कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएं पाई जाती हैं। पहले की दो नरक पृथ्वियों में कापोत लेश्या, तीसरी नरक पृथ्वी में मिश्र-कापोत और नील, चौथी में नील, पांचवीं में मिश्र-नील और कृष्ण, छठी में कृष्ण और सातवीं नरक पृथ्वी में परम कृष्ण लेश्या होती है। प्रस्तुत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र में नैरयिकों में तीन लेश्याओं का अल्पबहुत्व कहा है जो इस प्रकार है सबसे थोड़े कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक हैं क्योंकि कितनेक पांचवीं पृथ्वी के नरकावासों में तथा छठी और सातवीं नरक पृथ्वी में कृष्ण लेश्या होती है। उनसे नील लेश्या वाले असंख्यात गुणा हैं क्योंकि कितनेक तीसरी पृथ्वी के नरकावासों में, संपूर्ण चौथी नरक पृथ्वी में और पांचवीं नरक पृथ्वी के कितनेक नरकावासों में पूर्वोक्त से असंख्यात गुणा नैरयिकों में नील लेश्या होती है। उनसे असंख्यात गुणा कापोत लेश्या वाले हैं क्योंकि पहली और दूसरी नरक पृथ्वी में तथा तीसरी नरक पृथ्वी के कितनेक नरकावासों में पूर्वोक्त नैरयिकों से असंख्यात गुणा नैरयिकों में कापोत लेश्या होती है।

एएसि णं भंते! तिरिक्ख जोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा तिरिक्ख जोणिया सुक्कलेस्सा, एवं जहा ओहिया णवरं अलेस्स वज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हें भगवन्! इन कृष्ण लेश्या से लेकर शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंच योनिकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम तिर्यंच शुक्ल लेश्या वाले हैं, इत्यादि जिस प्रकार औघिक (समुच्चय) का कथन किया है उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिए, विशेषता यह है कि तिर्यंचों में अलेश्य नहीं कहना चाहिए। क्योंकि उनमें अलेश्य होना संभव नहीं है।

विवेचन - तिर्यंच योनिकों का अल्पबहुत्व औघिक-सामान्य लेश्या वाले जीवों के अल्प बहुत्व के अनुसार समझना चाहिये परन्तु विशेषता यह है कि यहाँ अलेश्य-लेश्या रहित का कथन नहीं करना चाहिए क्योंकि तिर्यंचों में लेश्या रहित होना असंभव है। तिर्यंच जीवों की अल्पबहुत्व इस प्रकार हैं - सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंच हैं। उनसे संख्यात गुणा पद्म लेश्या वाले हैं। उनसे संख्यात गुणा तेजो लेश्या वाले हैं। उनसे अनंत गुणा कापोत लेश्या वाले हैं। उनसे नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं। उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं और उनसे भी सलेश्य-लेश्या सहित विशेषाधिक हैं।

एएसि णं भंते! एगिंदियाणं कण्हलेस्साणं णीललेस्साणं काउलेस्साणं तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा एगिंदिया तेउलेस्सा, काउलेस्सा अणंत गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या से लेकर तेजो लेश्या तक के एकेन्द्रियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम तेजो लेश्या वाले एकेन्द्रिय हैं, उनसे अनन्त गुणा अधिक कापोत लेश्या वाले एकेन्द्रिय हैं, उनसे नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं और उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं।

विवेचन - सबसे थोड़े तेजो लेश्या वाले एकेन्द्रिय हैं, क्योंकि कितनेक बादर पृथ्वी पानी और वनस्पतिकायिकों के अपर्याप्तावस्था में तेजो लेश्या होती है। उनसे कापोत लेश्या वाले अनन्त गुणा हैं क्योंकि अनंत सूक्ष्म और बादर निगोद जीवों को कापोत लेश्या होती है। उनसे भी नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं। उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार विशेषाधिक हैं।

एएसि णं भंते! पुढवीकाइयाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! जहा ओहिया एगिंदिया, णवरं काउलेस्सा असंखिज्ज गुणा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या से लेकर तेजो लेश्या तक के पृथ्वीकायिकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार समुच्चय एकेन्द्रियों का कथन किया है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिकों के अल्पबहुत्व का कथन करना चाहिए। विशेषता इतनी है कि कापोत लेश्या वाले पृथ्वीकायिक असंख्यात गुणा हैं।

एवं आउकाइयाण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार कृष्णादि लेश्या वाले अप्कायिकों में अल्पबहुत्व का निरूपण भी समझ लेना चाहिए।

एएसि णं भंते! तेउकाइयाणं कण्हलेस्साणं णीललेस्साणं काउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा तेउकाइया काउलेस्सा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाले, नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले तेजस्कायिकों में कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम कापोत लेश्या वाले तेजस्कायिक हैं, उनसे नील लेश्या वाले तेजस्कायिक विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले तेजस्कायिक विशेषाधिक हैं।

एवं वाउकाइयाण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार कृष्णादि लेश्या वाले वायुकायिकों का भी अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएसि णं भंते! वणस्सइकाइयाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य जहा एगिंदियओहियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या से लेकर यावत् तेजो लेश्या वाले वनस्पतिकायिकों में कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार समुच्चय-औधिक एकेन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार वनस्पतिकायिकों का अल्पबहुत्व भी समझ लेना चाहिए।

बेइंदियाणं तेइंदियाणं चउरिंदियाणं जहा तेउकाइयाणं॥ ४८९॥

भावार्थ - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों का अल्पबहुत्व तेजस्कायिकों के समान होता है।

विवेचन - पृथ्वी, अप्, वनस्पतिकायिकों में चार लेश्याएं होने के कारण इनका अल्प बहुत्व समुच्चय एकेन्द्रिय के समान समझ लेना चाहिए। तेउकाय, वायुकाय में तीन लेश्याएं (कृष्ण, नील और कापोत) है उनका अल्प बहुत्व इस प्रकार हैं - सबसे थोड़े कापोत लेश्या वाले, उनसे नील लेश्या वाले विशेषाधिक और उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं। यही अल्प बहुत्व तीन विकलेन्द्रियों में भी समझना चाहिए।

एएसि णं भंते! पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! जहा ओहियाणं तिरिक्ख जोणियाणं, णवरं काउलेस्सा असंखिज्ज गुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वालों से लेकर यावत् शुक्ल लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार औधिक समुच्चय तिर्यंचों का अल्पबहुत्व कहा गया है, उसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का अल्पबहुत्व कहना चाहिए। विशेषता यह है कि कापोत लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंख्यात गुणा हैं।

सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं जहा तेउकाइयाणं।

भावार्थ - कृष्णादि लेश्या वाले सम्मूर्च्छिम-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों का अल्पबहुत्व तेजस्कायिकों के अल्पबहुत्व के समान समझना चाहिए।

गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं जहा ओहियाणं तिरिक्ख जोणियाणं, णवरं काउलेस्सा संखिज्ज गुणा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - कृष्णादि लेश्या वाले गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का अल्पबहुत्व समुच्चय पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अल्पबहुत्व के समान समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि कापोत लेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच संख्यात गुणा कहने चाहिए।

एवं तिरिक्खजोणिणीण वि।

भावार्थ - जैसे गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों का अल्पबहुत्व कहा है, इसी प्रकार गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक स्त्रियों का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

एएसि णं भंते! सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय-तिरिक्ख जोणियाण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा संखिज्जगुणा, तेउलेस्सा संखिज्जगुणा, काउलेस्सा संखिज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्सा सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया असंखिज्ज गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वालों से लेकर शुक्ल लेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों और गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम शुक्ल लेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले संख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले संख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले गर्भज-तिर्यंच पंचेन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले सम्मूर्च्छिम-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं और उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले सम्मूर्च्छिम-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक विशेषाधिक हैं।

विवेचन - कृष्ण आदि लेश्या वाले तिर्यंच पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व समुच्चय तिर्यंचों के अल्प बहुत्व के समान ही है किन्तु कापोत लेश्या वाले असंख्यात गुणा ही समझना अनंत गुणा नहीं क्योंकि सभी तिर्यंच पंचेन्द्रिय मिल कर भी असंख्यात ही हैं।

सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रियों का अल्पबहुत्व तेजस्कायिकों की तरह समझना चाहिए क्योंकि तेजस्कायिकों की तरह इनमें भी प्रथम तीन लेश्याएं ही होती है। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय के सूत्र में तेजो लेश्या वालों की अपेक्षा कापोत लेश्या वाले असंख्यात गुणा कहना चाहिए क्योंकि केवलज्ञानियों ने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों को इतने ही जाने हैं। क्योंकि इससे अधिक होते नहीं हैं। इसी प्रकार तिर्यंच स्त्री के संबंध में भी समझ लेना चाहिये।

एएसि णं भंते! सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं तिरिक्ख जोणिणीण य कण्हलेसाणं जाव सुक्कलेसाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! जहेव पंचमं तहा इमं छट्ठं भाणियव्वं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वालों से लेकर यावत् शुक्ल लेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों और तिर्यंच योनिक स्त्रियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे पंचम कृष्णादि लेश्यायुक्त तिर्यंचयोनिक सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, वैसे ही यह छठा सम्मूर्च्छिम-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और तिर्यंच योनिकों स्त्रियों का कृष्ण लेश्यादि विषयक अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रियों के अल्प बहुत्व के वर्णन में यह छठा सूत्र है और इससे पहले कहा गया पांचवां सूत्र है अतः कहा है कि '**जहेव पंचमं तहा इमं छट्ठं भाणियव्वं**' जैसा पांचवां सूत्र कहा है वैसा ही छठा सूत्र भी कह देना चाहिये।

एएसि णं भंते! गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं तिरिक्ख जोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतिय-पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया सुक्कलेस्सा, सुक्कलेस्साओ तिरिक्ख जोणिणीओ संखिज्ज गुणाओ, पम्हलेस्सा गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया संखिज्जगुणा, पम्हलेस्साओ तिरिक्ख जोणिणीओ संखिज्ज गुणाओ, तेउलेस्सा तिरिक्खजोणिया संखिज्जगुणा, तेउलेस्साओ तिरिक्ख जोणिणीओ संखिज्जगुणाओ, काउलेस्सा संखिज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ संखिज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वालों से लेकर यावत् शुक्ल लेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों और तिर्यंच स्त्रियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम शुक्ल लेश्या वाले गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक हैं, उनसे संख्यात गुणी शुक्ल लेश्या वाली गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियां हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक संख्यात गुणा हैं, उनसे पद्म लेश्या वाली गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले संख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंच संख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली गर्भज तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली गर्भज-पंचेन्द्रिय स्त्रियाँ विशेषाधिक हैं।

विवेचन - इस सातवें सूत्र में गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और तिर्यंच स्त्री का अल्पबहुत्व कहा गया है। सभी लेश्याओं में स्त्रियों की संख्या अधिक है और उस सर्व संख्या से भी तिर्यंच पुरुषों की अपेक्षा तिर्यंच स्त्रियाँ तीन गुणी है क्योंकि "**तिगुणा तिरूव अहिया तिरियाणं इत्थिया मुणेयव्वा**"-तीन गुणी से तीन अधिक तिर्यंच स्त्रियाँ जाननी चाहिए, ऐसा शास्त्र वचन है। अतः इस अल्प बहुत्व में तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यात गुणी अधिक बताई गयी है।

एएसि णं भंते! सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं तिरिक्ख जोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा गब्भवक्कंतिया तिरिक्खजोणिया सुक्कलेसा, सुक्कलेसाओ तिरिक्ख जोणिणीओ संखिज्जगुणाओ, पम्हलेस्सा गब्भवक्कंतिया तिरिक्खजोणिया संखिज्ज गुणा, पम्हलेस्साओ तिरिक्ख जोणिणीओ संखिज्जगुणाओ, तेउलेस्सा गब्भवक्कंतिया तिरिक्खजोणिया संखिज्जगुणा, तेउलेस्साओ तिरिक्ख जोणिणीओ संखिज्जगुणाओ, काउलेस्सा तिरिक्ख जोणिया संखिज्जगुणा, णीललेस्सा० विसेसाहिया, कण्हलेस्सा० विसेसाहिया, काउलेस्साओ० संखिज्ज गुणाओ, णीललेस्साओ० विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ० विसेसाहियाओ, काउलेस्सा सम्मुच्छिम पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया असंखिज्ज गुणा, णीललेस्सा० विसेसाहिया, कण्हलेस्सा० विसेसाहिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वालों से लेकर यावत् शुक्ल लेश्या वाले इन सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों, गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों तथा तिर्यंच योनिक स्त्रियों में कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक हैं, उनसे शुक्ल लेश्या वाली गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियां संख्यात गुणी हैं, उनसे पद्मलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक संख्यात गुणा हैं, उनसे पद्मलेश्या वाली गर्भज-पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियां संख्यात गुणी हैं, उनसे तेजोलेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच संख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियां संख्यात गुणी हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक संख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली तिर्यंच स्त्रियां संख्यात गुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली तिर्यंच स्त्रियां विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली तिर्यंच स्त्रियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच और तिर्यंच स्त्री के संबंध में आठवाँ अल्प बहुत्व का कथन किया गया है।

एएसि णं भंते! पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं तिरिक्ख जोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया सुक्कलेस्सा, सुक्कलेस्साओ संखिज्जगुणाओ, पम्हलेस्सा संखिज्ज गुणा, पम्हलेस्साओ संखिज्जगुणाओ, तेउलेस्सा संखिज्जगुणा, तेउलेस्साओ संखिज्जगुणाओ, काउलेस्साओ संखिज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेसाओ विसेसाहियाओ, काउलेस्सा असंखिज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वालों से लेकर यावत् शुक्ल लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों और तिर्यंच स्त्रियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत्व, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम शुक्ल लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक हैं, उनसे शुक्ल लेश्या वाली पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियां संख्यात गुणी हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच संख्यात गुणा हैं, उनसे पद्म लेश्या वाली पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच संख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियां संख्यात गुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच विशेषाधिक हैं।

विवेचन - इस नौवें अल्पबहुत्व में सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच और तिर्यंच स्त्री विषयक निरूपण किया गया है।

एएसि णं भंते! तिरिक्ख जोणियाणं तिरिक्ख जोणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! जहेव णवमं अप्पाबहुगं तहा इमं पि, णवरं काउलेस्सा तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा। एवं एए दस अप्पाबहुगा तिरिक्ख जोणियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तिर्यंच योनिकों और तिर्यंच योनिक स्त्रियों में से कृष्णलेश्या से लेकर यावत् शुक्ल लेश्या वालों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे नौवां कृष्णादि लेश्या वाले तिर्यंच योनिक सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, वैसे यह दसवां भी समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि - "कापोत लेश्या वाले तिर्यंच योनिक अनन्त गुणा होते हैं", ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार ये दस अल्पबहुत्व तिर्यंचों के कहे गये हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सामान्य तिर्यंच और तिर्यंच स्त्री का दसवां अल्पबहुत्व कहा है। इस प्रकार तिर्यंचों के दस अल्पबहुत्व कहे गये हैं जिनकी संग्रहणी गाथाएँ इस प्रकार हैं -

ओहिय पणिंदि १ सम्मुच्छिमा २ य गब्भे ३ तिरिक्ख इत्थीओ ४।
समुच्छ गब्भ तिरिया ५ मुच्छ तिरिक्खी य ६ गब्भंमि ७॥ १॥
सम्मुच्छिम गब्भ इत्थी ८ पणिंदी तिरिगित्थीया य ९ ओहित्थी १०।
दस अप्प बहुग भेआ तिरियाणं होंति नायव्वा॥ २॥

- १. औधिक सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय २. सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय ३. गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय ४. तिर्यंच स्त्रियाँ ५. सम्मूर्च्छिम और गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय ६. सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और तिर्यंच स्त्री ७. गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और तिर्यंच स्त्री ८. सम्मूर्च्छिम एवं गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और तिर्यंच स्त्री ९. पंचेन्द्रिय तिर्यंच और तिर्यंच स्त्री १०. ओघ-सामान्य तिर्यंच और तिर्यंच स्त्री, ये तिर्यचों के दस अल्पबहुत्व जानना चाहिए।

एवं मणुसाणं वि अप्पाबहुगा भाणियव्वा, णवरं पच्छिमगं अप्पाबहुगं णत्थि॥ ४९०॥

भावार्थ - इसी प्रकार कृष्णादि लेश्या वाले मनुष्यों का भी अल्प बहुत्व कहना चाहिए। परन्तु उनमें अंतिम अल्प बहुत्व नहीं बनती है।

विवेचन - जिस प्रकार तिर्यंचों के दस अल्प बहुत्व कहे हैं उसी प्रकार मनुष्यों के भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अल्पबहुत्व कहना किन्तु अंतिम दसवें अल्पबहुत्व का कथन नहीं करना चाहिये क्योंकि मनुष्य अनन्त नहीं हैं और अनन्त नहीं होने से 'कापोत लेश्या वाले अनन्त गुणा हैं,' यह पद संभव नहीं होता है।

एएसि णं भंते! देवाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखिज्जगुणा, काउलेस्सा असंखिज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, तेउलेस्सा संखिज्ज गुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाले से लेकर शुक्ल लेश्या वाले देवों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले देव हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं और उनसे भी तेजो लेश्या वाले देव संख्यात गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देव संबंधी अल्पबहुत्व का कथन किया गया है। सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले देव हैं क्योंकि लान्तक आदि देवलोकों में ही शुक्ल लेश्या वाले देव होते हैं। उनसे पद्म लेश्या वाले असंख्यात गुणा हैं क्योंकि सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक कल्प में पद्म लेश्या होती है और वे लान्तक आदि देवों की अपेक्षा असंख्यात गुणा हैं। उनसे कापोत लेश्या वाले असंख्यात गुणा हैं क्योंकि सनत्कुमार आदि देवों की अपेक्षा असंख्यात गुणा भवनपति और वाणव्यंतर देवों में कापोत लेश्या संभव है। उनसे भी नील लेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं क्योंकि बहुत से भवनपतियों और वाणव्यंतर देवों में नील लेश्या संभव है। उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले विशेषाधिक हैं क्योंकि अधिकांश भवनपतियों और वाणव्यंतरों में कृष्ण लेश्या होती है। उनसे भी तेजो लेश्या वाले देव संख्यात गुणा हैं क्योंकि कितने ही भवनपतियों, वाणव्यंतरों तथा सभी ज्योतिषियों और सभी सौधर्म और ईशान देवों में तेजो लेश्या होती है।

एएसि णं भंते! देवीणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ देवीओ काउलेस्साओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्साओ संखिज्जगुणाओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाली यावत् तेजो लेश्या वाली देवियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ी कापोत लेश्या वाली देवियाँ हैं, उनसे नील लेश्या वाली देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली देवियां विशेषाधिक हैं और उनसे भी तेजो लेश्या वाली देवियां संख्यात गुणी हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देवी संबंधी अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार है-सबसे थोड़ी देवियाँ कापोत लेश्या वाली है क्योंकि कितनीक भवनपति और वाणव्यंतर की देवियों में कापोत लेश्या होती है। उनसे नील लेश्या वाली देवियाँ विशेषाधिक है क्योंकि बहुत-सी भवनपति और वाणव्यंतर देवियों में नील लेश्या संभव है। उनसे भी कृष्ण लेश्या वाली विशेषाधिक है क्योंकि अधिकांश देवियों में कृष्ण लेश्या होती है। उनसे भी तेजो लेश्या वाली देवियाँ संख्यात गुणी हैं क्योंकि ज्योतिषियों सौधर्म और ईशान देवलोक की सभी देवियों में तेजो लेश्या होती हैं।

दूसरे देवलोक तक ही देवियाँ पाई जाती है इससे आगे के देवलोकों में नहीं अतः उनमें चार लेश्याएं ही होती है। इसीलिए सूत्रकार ने '**जाव तेउलेसाण य**' यावत् तेजो लेश्या वाली यह पाठ भी कहा है।

एएसि णं भंते! देवाणं देवीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखिज्ज गुणा, काउलेस्सा असंखिज्ज गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ देवीओ संखिज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्सा देवा संखिज्ज गुणा, तेउलेस्साओ देवीओ संखिज्जगुणाओ॥ ४९१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाले यावत् शुक्ल लेश्या वाले देवों और देवियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले देव हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली देवियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले देव संख्यात गुणा हैं, उनसे भी तेजो लेश्या वाली देवियाँ संख्यात गुणी हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देव और देवियों का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है - सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले देव हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले देव विशेषाधिक हैं उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले देव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेषाधिक है इसका कारण पूर्वानुसार समझना चाहिए। उनसे भी कापोत लेश्या वाली देवियाँ संख्यातगुणी हैं और वे भवनपति और वाणव्यंतर निकाय के अन्तर्गत जाननी चाहिए क्योंकि ज्योतिषी और वैमानिक देवियों में कापोत लेश्या नहीं होती है। देवियाँ देवों से सामान्य रूप से लगभग बत्तीस गुणी बत्तीस अधिक है। अतः कृष्ण लेश्या वाले देवों से कापोत लेश्या वाली देवियाँ संख्यातगुणी भी घटित होती है उनसे नील लेश्या वाली देवियाँ विशेषाधिक है, उनसे कृष्ण लेश्या वाली विशेषाधिक है। यहाँ भी पूर्वोक्तानुसार कारण समझना चाहिए। उनसे भी तेजो लेश्या वाले देव संख्यात गुणा हैं क्योंकि कितनेक भवनपति, वाणव्यंतर तथा सभी ज्योतिषी और सभी सौधर्म और ईशान देवों के तेजो लेश्या होती है उनसे भी तेजो लेश्या वाली देवियाँ संख्यात गुणी हैं क्योंकि देवों से देवियाँ लगभग बत्तीसगुणी बत्तीस अधिक होती हैं।

एएसि णं भंते! भवणवासीणं देवाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा भवणवासी देवा तेउलेस्सा, काउलेस्सा असंखिज्ज गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाले, यावत् तेजो लेश्या वाले भवनवासी देवों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम तेजो लेश्या वाले भवनवासी देव हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं और उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण आदि लेश्या वाले भवनवासी देवों का अल्प बहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार हैं - सबसे थोड़े भवनवासी देव तेजो लेश्या वाले हैं क्योंकि वे महर्द्धिक (महान् ऋद्धि वाले) हैं और जो महर्द्धिक होते हैं वे थोड़े ही होते हैं। उनसे असंख्यात गुणा कापोत लेश्या वाले होते हैं क्योंकि बहुत से भवनवासी देवों को कापोत लेश्या संभव है। उनसे नील लेश्या वाले विशेषाधिक हैं क्योंकि उनसे भी अधिक भवनवासी देवों को नील लेश्या संभव है। उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं क्योंकि उनसे भी अधिक देवों में कृष्ण लेश्या होती है।

एएसि णं भंते! भवणवासिणीणं देवीण कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! एवं चेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाली यावत् तेजो लेश्या वाली भवनवासी देवियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कृष्ण लेश्या वाले से लेकर तेजो लेश्या पर्यन्त भवनवासी देवों का अल्पबहुत्व कहा है। उसी प्रकार उनकी देवियों का भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

एएसि णं भंते! भवणवासीणं देवाणं देवीण य कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा भवणवासी देवा तेउलेस्सा, भवणवासिणीओ तेउलेस्साओ संखिज्जगुणाओ, काउलेस्सा भवणवासी देवा असंखिज्जगुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ भवणवासिणीओ देवीओ संखिज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या, यावत् तेजो लेश्या वाले भवनवासी देवों और देवियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं।

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े तेजो लेश्या वाले भवनवासी देव हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ संख्यातगुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ विशेषाधिक हैं और उनसे भी कृष्ण लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ विशेषाधिक हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण लेश्या आदि वाले भवनपति देवों और देवियों का शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है। सामान्य रूप से देवों की अपेक्षा देवियाँ प्रत्येक निकाय में लगभग बत्तीस गुणी होती हैं अतः देवों से देवियाँ संख्यात गुणी घटित होती है।

एवं वाणमंतराणं वि तिण्णेव अप्पाबहुया जहेव भवणवासीणं तहेव भाणियव्वा ॥ ४९२ ॥

भावार्थ - भवनवासी देव-देवियों का अल्पबहुत्व कहा है, इसी प्रकार वाणव्यन्तरों के तीनों ही (देवों, देवियों और देव-देवियों का सम्मिलित) प्रकारों का अल्प बहुत्व कहना चाहिए।

एएसि णं भंते! जोइसियाणं देवाणं देवीण य तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जोइसिया देवा तेउलेस्सा, जोइसिणीओ देवीओ तेउलेस्साओ संखिज्जगुणाओ ॥ ४९३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तेजो लेश्या वाले ज्योतिषी देवों-देवियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े तेजो लेश्या वाले ज्योतिषी देव हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली ज्योतिषी देवियां संख्यात गुणी हैं।

एएसि णं भंते! वेमाणियाणं देवाणं तेउलेस्साणं पम्हलेस्साणं सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखिज्ज गुणा, तेउलेस्सा असंखिज्ज गुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तेजो लेश्या वाले, पद्म लेश्या वाले और शुक्ल लेश्या वाले वैमानिक देवों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम शुक्ल लेश्या वाले वैमानिक देव हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले असंख्यात गुणा हैं और उनसे भी तेजो लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं।

एएसि णं भंते! वेमाणियाणं देवाणं देवीण य तेउलेस्साणं पम्हलेस्साणं सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखिज्ज गुणा, तेउलेस्सा असंखिज्ज गुणा, तेउलेस्साओ वेमाणिणीओ देवीओ संखिज्जगुणाओ ॥४९४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन तेजो लेश्या वाले, पद्म लेश्या वाले और शुक्ल लेश्या वाले वैमानिक देवों और देवियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम शुक्ल लेश्या वाले वैमानिक देव हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले वैमानिक देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली वैमानिक देवियाँ संख्यात गुणी हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वैमानिक देव देवी संबंधी अल्पबहुत्व कहा गया है, जो इस प्रकार है- सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले वैमानिक देव हैं क्योंकि लान्तक आदि देवों में ही शुक्ल लेश्या होती है और वे उत्कृष्ट से भी श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रदेश राशि परिमाण है। उनसे पद्म लेश्या वाले असंख्यात गुणा हैं क्योंकि सनत्कुमार माहेन्द्र और ब्रह्मलोक कल्पवासी सभी देवों को पद्म लेश्या होती है और वे श्रेणि के अत्यंत बड़े असंख्यातवें भाग के आकाश प्रदेश प्रमाण है। यानी असंख्यात गुणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अधिक है। उनसे भी तेजो लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं। तेजो लेश्या सौधर्म और ईशान देवों के होती है। अंगुल प्रमाण क्षेत्र की प्रदेश राशि के दूसरे वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणित करने पर जितने प्रदेश होते हैं उतने घनीकृत लोक की एक प्रदेश वाली श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने कुल वैमानिक देव देवियाँ हैं। उसके एक संख्यातवें भाग जितने ईशान कल्प में देव देवियों का समुदाय है उनसे कुछ न्यून बत्तीसवें भाग जितने ईशान कल्प के देव हैं। उनसे भी संख्यात गुणा सौधर्म कल्प के देव हैं अतः पद्म लेश्या वालों से भी तेजो लेश्या वाले देव असंख्यात गुणा हैं।

वैमानिक देवियाँ सौधर्म और ईशान कल्प में ही होती है और वहाँ केवल तेजो लेश्या है। अन्य दूसरी लेश्याएं वहां नहीं होने के कारण अलग से देवियों का सूत्र नहीं कहा है।

तेजो लेश्या वाले देवों से भी तेजो लेश्या वाली वैमानिक देवियाँ संख्यात गुणी हैं क्योंकि देवों की अपेक्षा देवियाँ लगभग बत्तीसगुणी हैं।

एएसि णं भंते! भवणवासीदेवाणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाण य देवाण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखिज्ज गुणा, तेउलेस्सा असंखिज्ज गुणा, तेउलेस्सा भवणवासी देवा असंखिज्ज गुणा, काउलेस्सा असंखिज्ज गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, तेउलेस्सा वाणमंतरा देवा असंखिज्ज गुणा, काउलेस्सा असंखिज्ज गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, तेउलेस्सा जोइसिया देवा संखिज्ज गुणा।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाले यावत् शुक्ल लेश्या वाले भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले वैमानिक देव हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले वैमानिक देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले वैमानिक देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले वाणव्यन्तर देव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले वाणव्यन्तर देव विशेषाधिक हैं, उनसे भी तेजो लेश्या वाले ज्योतिषी देव संख्यात गुणा हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चारों निकायों के देवों का अल्पबहुत्व कहा गया है। जो इस प्रकार है- सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले वैमानिक देव हैं उनसे पद्म लेश्या वाले असंख्यात गुणा हैं उनसे तेजो लेश्या वाले वैमानिक देव असंख्यात गुणा हैं इसका कारण पूर्वोक्तानुसार है। उनसे तेजोलेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यात गुणा हैं क्योंकि अंगुल प्रमाण क्षेत्र के प्रदेशों के प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग समान में जितने प्रदेश होते हैं उतने घनीकृत लोक की सात रज्जु लम्बी एक प्रदेश चौड़ाई वाली श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने दसों निकाय के भवनपति देव देवियों का समुदाय है। उससे कुछ न्यून बत्तीसवें भाग जितने भवनपति देव हैं। ये सौधर्म ईशान देवों से असंख्यात गुण अधिक होने के कारण तेजो लेश्या वाले भवनपति देव असंख्यात गुणा हैं। उनसे कापोत लेश्या वाले भवनपति देव असंख्यात गुणा हैं क्योंकि अल्प ऋद्धि वाले बहुत से देवों को कापोत लेश्या संभव है। उनसे नील लेश्या वाले भवनपति देव विशेषाधिक हैं। इसका कारण पूर्व में बताया गया है उनसे कृष्ण लेश्या वाले भवनपति देव विशेषाधिक हैं। उनसे तेजो लेश्या वाले वाणव्यंतर देव असंख्यात गुणा हैं, क्योंकि घनीकृत लोक की सात रज्जु लम्बी और सात रज्जु चौड़ाई वाले एक प्रतर में संख्यात कोटाकोटी योजन प्रमाण सूची रूप खण्ड जितने होते हैं उतने सब भेद मिलाकर वाणव्यन्तर देव देवी हैं। उनसे कुछ कम बत्तीसवें भाग जितने वाणव्यंतर देव हैं जो भवनपति देवों की अपेक्षा बहुत है अतः कृष्ण लेश्या वाले भवनपति देवों से तेजो लेश्या वाले वाणव्यंतर देव असंख्यात गुणा हैं। उनसे कापोत लेश्या वाले वाणव्यंतर असंख्यात गुणा हैं क्योंकि अल्प ऋद्धि वालों में भी कापोत लेश्या होती है। उनसे नील, लेश्या वाले वाणव्यंतर विशेषाधिक हैं। उनसे भी कृष्ण लेश्या वाले वाणव्यंतर विशेषाधिक हैं। उनसे तेजो लेश्या वाले ज्योतिषी देव संख्यात गुणा हैं क्योंकि एक प्रवर के २५६ अंगुल के वर्ग रूप प्रतर खण्ड जितने होते हैं उतने सब मिलाकर ज्योतिषी देव देवियों का समुदाय है, उनसे कुछ कम बत्तीसवें भाग जितने ज्योतिषी देव हैं। इसलिये कृष्ण लेश्या वाले वाणव्यंतरों से ज्योतिषी देव संख्यात गुणा घटित हो सकते हैं, किन्तु असंख्यात गुणा घटित नहीं होते क्योंकि प्रतर खण्ड रूप प्रमाण संख्यात कोटाकोटी योजन की अपेक्षा २५६ अंगुल संख्यातवें भाग है।

एएसि णं भंते! भवणवासिणीणं वाणमंतरीणं जोइसिणीणं वेमाणिणीण य कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाओ देवीओ वेमाणिणीओ तेउलेस्साओ, भवणवासिणीओ तेउलेस्साओ असंखिज्जगुणाओ, काउलेस्साओ असंखिज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्साओ वाणमंतरीओ देवीओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंखिज्जगुणाओ, काउलेस्साओ असंखिज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्साओ जोइसिणीओ देवीओ संखिज्ज-गुणाओ॥ ४९५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाली से लेकर यावत् तेजो लेश्या वाली भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी एवं वैमानिक देवियां में से कौन देवियां, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ी तेजो लेश्या वाली वैमानिक देवियाँ हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ असंख्यात गुणी हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ असंख्यात गुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली भवनवासी देवियां विशेषाधिक हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ असंख्यात गुणी अधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ असंख्यात गुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ विशेषाधिक हैं। उनसे तेजो लेश्या वाली ज्योतिषी देवियाँ संख्यात गुणी हैं।

एएसि णं भंते! भवणवासीणं जाव वेमाणियाणं देवाण य देवीण य कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा, पम्हलेस्सा असंखिज्ज गुणा, तेउलेस्सा असंखिज्जगुणा, तेउलेस्साओ वेमाणिय देवीओ संखिज्जगुणाओ, तेउलेस्सा भवणवासी देवा असंखिज्ज गुणा, तेउलेस्साओ भवणवासिणिओ देवीओ संखिज्जगुणाओ, काउलेस्सा भवणवासी असंखिज्ज गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ भवणवासिणीओ० संखिज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्सा वाणमंतरा० संखिज्जगुणा, तेउलेस्साओ वाणमंतरीओ० संखिज्जगुणाओ, काउलेस्सा वाणमंतरा असंखिज्ज गुणा, णीललेस्सा विसेसाहिया, कण्हलेस्सा विसेसाहिया, काउलेस्साओ वाणमंतरीओ० संखिज्जगुणाओ, णीललेस्साओ विसेसाहियाओ, कण्हलेस्साओ विसेसाहियाओ, तेउलेस्सा जोइसिया० संखिज्ज गुणा, तेउलेस्साओ जोइसिणीओ० संखिज्जगुणाओ॥ ४९६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वाले से लेकर शुक्ल लेश्या वाले तक के भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों और देवियों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े शुक्ल लेश्या वाले वैमानिक देव हैं, उनसे पद्म लेश्या वाले वैमानिक देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले वैमानिक देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली वैमानिक देवियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले भवनवासी देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले भवनवासी देव विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ संख्यात गुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली भवनवासी देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ संख्यातगुणी हैं, उनसे कापोत लेश्या वाले वाणव्यन्तर देव असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या वाले वाणव्यन्तर देव विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाले वाणव्यन्तर देव विशेषाधिक हैं, उनसे कापोत लेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ संख्यातगुणी हैं, उनसे नील लेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे कृष्ण लेश्या वाली वाणव्यन्तर देवियाँ विशेषाधिक हैं, उनसे तेजो लेश्या वाले ज्योतिषी देव संख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या वाली ज्योतिषी देवियाँ संख्यात गुणी हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चारों निकायों के देव और देवियों का कृष्ण आदि लेश्याओं की अपेक्षा शामिल अल्पबहुत्व कहा गया है।

सलेशी ऋद्धिक जीवों का अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! जीवाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पड्डिया वा महड्डिया वा?

गोयमा! कण्हलेस्सेहिंतो णीललेस्सा महड्डिया, णीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महड्डिया, एवं काउलेस्सेहिंतो तेउलेस्सा महड्डिया, तेउलेस्सेहिंतो पम्हलेस्सा महड्डिया, पम्हलेस्सेहिंतो सुक्कलेस्सा महड्डिया, सव्वप्पड्डिया जीवा कण्हलेस्सा, सव्वमहड्डिया सुक्कलेस्सा॥ ४९७॥

कठिन शब्दार्थ - अप्पड्डिया - अल्प ऋद्धि वाले, **महड्डिया** - महर्द्धिक-महान् ऋद्धि वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाले, यावत् शुक्ल लेश्या वाले जीवों में से कौन, किनसे अल्प ऋद्धि वाले अथवा महती ऋद्धि वाले हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेश्या वालों से नील लेश्या वाले महर्द्धिक होते हैं, नील लेश्या वालों से कापोत लेश्या वाले महर्द्धिक होते हैं, कापोत लेश्या वालों से तेजो लेश्या वाले महर्द्धिक होते हैं, तेजो लेश्या वालों से पद्म लेश्या वाले महर्द्धिक होते हैं और पद्म लेश्या वालों से शुक्ल लेश्या वाले महर्द्धिक होते हैं। कृष्ण लेश्या वाले जीव सबसे अल्प ऋद्धि वाले हैं और शुक्ल लेश्या वाले जीव सबसे महती ऋद्धि वाले हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण आदि लेश्या वाले जीवों की ऋद्धि का कथन किया गया है। इसके अनुसार पूर्व-पूर्व की लेश्या वाले अल्प ऋद्धि वाले और उत्तरोत्तर-आगे आगे की लेश्या वाले जीव महर्द्धिक-महान् ऋद्धि वाले होते हैं।

एएसि णं भंते! णेरइयाणं कण्हलेस्साणं णीललेस्साणं काउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पड्डिया वा महड्डिया वा?

गोयमा! कण्हलेस्सेहिंतो णीललेस्सा महड्डिया, णीललेस्सेहिंतो काउलेस्सा महड्डिया सव्वप्पड्डिया णेरइया कण्हलेस्सा, सव्वमहड्डिया णेरइया काउलेस्सा॥ ४९८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेशी, नीललेशी और कापोत लेशी नैरयिकों में कौन, कितनी अल्प ऋद्धि वाले अथवा महती ऋद्धि वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेशी नैरयिकों से नील लेशी नैरयिक महर्द्धिक है, नील लेशी नैरियकों से कापोत लेशी नैरयिक महर्द्धिक हैं। कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक सबसे अल्प ऋद्धि वाले हैं और कापोत लेश्या वाले नैरयिक सबसे महती ऋद्धि वाले हैं।

एएसि णं भंते! तिरिक्ख जोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव सुक्कलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पड्डिया वा महड्डिया वा?

गोयमा! जहा जीवाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या वाले यावत् शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंचयोनिकों में से कौन, किनसे अल्पर्द्धिक अथवा महर्द्धिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे समुच्चय जीवों की कृष्णादि लेश्याओं की अपेक्षा से अल्पर्द्धिकता-महर्द्धिकता कही है, उसी प्रकार तिर्यंचयोनिकों की कृष्णादि लेश्याओं की अपेक्षा से अल्पर्द्धिकता और महर्द्धिकता कहनी चाहिए।

एएसि णं भंते! एगिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं कण्हलेस्साणं जाव तेउलेस्साण य कयरे कयरेहिंतो अप्पड्डिया वा महड्डिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! कण्हलेस्सेहिंतो एगिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो णीललेस्सा महड्डिया, णीललेस्सेहिंतो तिरिक्ख जोणिएहिंतो काउलेस्सा महड्डिया, काउलेस्सेहिंतो तेउलेस्सा महड्डिया, सव्वप्पड्डिया एगेंदिय तिरिक्ख जोणिया कण्हलेस्सा, सव्वमहड्डिया तेउलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वाले, यावत् तेजो लेश्या वाले एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में से कौन, किससे अल्पर्द्धिक हैं, अथवा महर्द्धिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेश्या वाले एकेन्द्रिय तिर्यंचों की अपेक्षा नील लेश्या वाले एकेन्द्रिय महर्द्धिक हैं, नील लेश्या वाले एकेन्द्रियों से कापोत लेश्या वाले एकेन्द्रिय महर्द्धिक हैं, कापोत लेश्या वालों से तेजो लेश्या वाले एकेन्द्रिय महर्द्धिक हैं। सबसे अल्पऋद्धि वाले कृष्ण लेश्यी एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिक हैं और सबसे महाऋद्धि वाले तेजो लेश्यी एकेन्द्रिय हैं।

एवं पुढवीकाइयाण वि।

भावार्थ - सामान्य एकेन्द्रिय तिर्यंचों की अल्पर्द्धिकता और महर्द्धिकता की तरह कृष्ण आदि चार लेश्या वाले पृथ्वीकायिकों की अल्पर्द्धिकता-महर्द्धिकता के विषय में समझ लेना चाहिए।

एवं एएणं अभिलावेणं जहेव लेस्साओ भावियाओ तहेव णेयव्वं जाव चउरिंदिया।

भावार्थ - इस प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक जिनमें जितनी लेश्याएं जिस क्रम से कही गई हैं, उसी क्रम से पूर्वोक्त आलापक के अनुसार उनकी अल्पर्द्धिकता और महर्द्धिकता समझ लेनी चाहिए।

पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं तिरिक्ख जोणिणीणं सम्मुच्छिमाणं गब्भवक्कंतियाण य सव्वेसिं भाणियव्वं जाव अप्पड्डिया वेमाणिया देवा तेउलेस्सा, सव्वमहड्डिया वेमाणिया देवा सुक्कलेस्सा। केइ भणंति-चउवीसं दंडएणं इड्डी भाणियव्वा॥ ४९१॥

भावार्थ - इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचों, तिर्यंच स्त्रियों, सम्मूर्च्छिमों और गर्भजों-सभी की कृष्ण लेश्या से लेकर शुक्ल लेश्या पर्यन्त यावत् वैमानिक देवों में जो तेजो लेश्या वाले हैं, वे सबसे अल्पर्द्धिक हैं और जो शुक्ल लेश्या वाले हैं, वे सबसे महर्द्धिक हैं। कई आचार्यों का कहना है कि चौवीस दण्डकों को लेकर ऋद्धि का कथन करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डक के जीवों की अल्पर्द्धिकता और महर्द्धिकता की प्ररूपणा की गयी है। इनमें जो कृष्ण लेशी जीव हैं वे सबसे कम ऋद्धि वाले और जो शुक्ल लेशी जीव हैं वे सबसे अधिक ऋद्धि वाले कहे गये हैं।

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तरसमे लेस्सापए बीओ उद्देसओ समत्तो॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र के सतरहवें लेश्या पद का दूसरा उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेस्साएए तइओ उद्देसओ

सत्तरहवाँ लेश्या पद-तृतीय उद्देशक

चौबीस दण्डक के जीवों में उत्पाद

णेरइए णं भंते! णेरइएसु उववज्जइ, अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ?

गोयमा! णेरइए णेरइएसु उववज्जइ, णो अणेरइए णेरइएसु उववज्जइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न होता है, अथवा अनैरयिक (नैरयिव सिवाय) नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न होता है, अनैरयिक नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होता है।

एवं जाव वेमाणियाणं।

भावार्थ - इसी प्रकार असुरकुमार आदि भवनपतियों से लेकर यावत् वैमानिकों की उत्पत्ति सम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकों के जीवों के उत्पाद के विषय में कथन किया गया है। नैरयिक ही नैरयिकों में उत्पन्न होता है अनैरयिक नहीं, क्योंकि नैरयिक भवोपग्राहक आयु ही भव का कारण है अतः जब नरकायु का उदय होता है तभी नरक भव होता है। इसलिये ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से नरकायु आदि के वेदन के प्रथम समय में ही नैरयिक आदि संज्ञा का व्यवहार होने लगता है। नैरयिक ही नरक में उत्पन्न होता है इसके अलावा अन्य नहीं। नैरयिक के समान ही शेष २३ दण्डकों के उत्पाद के विषय में समझ लेना चाहिए।

चौबीस दण्डक के जीवों में उद्वर्त्तन

णेरइए णं भंते! णेरइएहिंतो उववट्टइ, अणेरइए णेरइएहिंतो उववट्टइ?

गोयमा! अणेरइए णेरइएहिंतो उववट्टइ, णो णेरइए णेरइएहिंतो उववट्टइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक नैरयिकों से उद्वर्त्तन करता (निकलता) है, अथवा अनैरयिक (नैरयिक से भिन्न) नैरयिकों से उद्वर्त्तन करता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अनैरयिक नैरयिकों से उद्वर्त्तन करता है, किन्तु नैरयिक नैरयिकों से उद्वर्त्तन नहीं करता है।

एवं जाव वेमाणिए, णवरं जोइसिय-वेमाणिएसु 'चयणं' ति अभिलावो कायव्वो ॥५००॥

भावार्थ - इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक उद्वर्त्तन सम्बन्धी कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि ज्योतिषी और वैमानिकों के विषय में उद्वर्त्तन के स्थान में 'च्यवन' शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डकवर्ती जीवों के उद्वर्त्तन विषयक प्ररूपणा की गयी है। नैरयिक से भिन्न (अनैरयिक) नरक भव से उद्वर्त्तन करता है-निकलता है। इसका आशय यह है कि जब तक किसी जीव के नरकायु का उदय बना हुआ है तब तक वह नैरयिक कहलाता है और जब नरकायु का उदय नहीं रहता तब वह अनैरयिक कहलाता है। अनैरयिक ही नरक से निकलता है नैरयिक नहीं। निष्कर्ष यह है कि आगामी भव की आयु का उदय होने पर जीव वर्तमान भव से उद्वर्त्तन होता (निकलता) है और जिस भव संबंधी आयु का उदय हो उसी नाम से उसका व्यवहार होता है। जैसे नरकायुष्य का उदय होने पर 'यह नैरयिक है' ऐसा व्यवहार होता है। अतः नैरयिकों से अनैरयिक ही उद्वर्त्तता है किन्तु नैरयिक नहीं उद्वर्त्तता। जैसे कैद (जेल) में कैदी (अपराधी) ही जाता है। कैद का समय पूर्ण हो जाने पर कैद से मुक्त होने के समय वह अकैदी हो जाता है। अतः कैद से जाते समय वह अकैदी रूप बाहर निकलता है। कैद में रहते हुए जब तक अपराध की सजा का भुगतान करता है तब तक ही वह कैदी गिना जाता है। सजा पूर्ण होते ही वह अकैदी हो जाता है। इसी तरह यहाँ पर समझना चाहिए। इसी प्रकार असुरकुमार आदि शेष २३ दण्डकों के उद्वर्त्तन के विषय में समझ लेना चाहिये। ज्योतिषियों और वैमानिकों में 'उद्वर्त्तन' के स्थान पर 'च्यवन' कहना चाहिए।

सलेशी जीवों में उत्पाद-उद्वर्त्तन

से णूणं भंते! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेस्से उववट्टइ, जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ?

हंता गोयमा! कण्हलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेस्से उववट्टइ, जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ।

कठिन शब्दार्थ - **जल्लेस्से** - जिस लेश्या में, **तल्लेसे** - उस लेश्या में।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या वाला नैरयिक कृष्ण लेश्या वाले नैरयिकों में ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न होता है? कृष्ण लेश्या वाला ही नैरयिकों में से उद्वृत्तन होता है? अर्थात् - जिस लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन (मरण प्राप्त) करता है?

उत्तर - हाँ, गौतम! कृष्ण लेश्या वाला नैरयिक कृष्ण लेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है, कृष्ण लेश्या वाला होकर ही वहाँ से उद्वृत्त होता है। जिस लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन करता है।

एवं णीललेस्से वि, एवं काउलेस्से वि।

भावार्थ - इसी प्रकार नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले नैरयिक के उत्पाद और उद्वर्त्तन के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

एवं असुरकुमाराण वि जाव थणियकुमारा, णवरं तेउलेस्सा अब्भहिया।

भावार्थ - असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक भी इसी प्रकार से उत्पाद और उद्वर्त्तन का कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि इनके सम्बन्ध में तेजो लेश्या का कथन अधिक करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों और देवों में लेश्या की अपेक्षा से उत्पाद एवं उद्वर्त्तन की प्ररूपणा की गई है। नैरयिकों और देवों में जीव जिस लेश्या वाला होता है वह उसी लेश्या वालों में उत्पन्न होता है तथा उसी लेश्या वाला होकर वहाँ से निकलता (मरता) है। जैसे-कृष्ण लेश्या वाला नैरयिक कृष्ण लेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है और जब उद्वर्त्तन करता है तब कृष्ण लेश्या वाला होकर ही उद्वर्त्तन करता है, अन्य लेश्या वाला होकर नहीं। इसका कारण यह है कि तिर्यंच पंचेन्द्रिय या मनुष्य, तिर्यंच पंचेन्द्रिय आयु या मनुष्यायु के पूरी तरह क्षय होने से अंतर्मुहूर्त्त पहले उसी लेश्या वाला हो जाता है जिस लेश्या वाले नैरयिक में वह उत्पन्न होने वाला है तत्पश्चात् ही वह अप्रतिपतित परिणाम से उस नरकायु का वेदन करता है। इसीलिये कहा है कि कृष्ण लेश्या वाला नैरयिक कृष्ण लेश्या वाले नैरयिकों में ही उत्पन्न होता है, अन्य लेश्या वाले नैरयिकों में नहीं। नैरयिक भव का क्षय होने तक वह कृष्ण लेश्या वाला ही बना रहता है, उसकी लेश्या बदलती नहीं, क्योंकि नैरयिकों और देवों में ऐसा ही नियम है। कृष्ण लेश्या की तरह ही अन्य लेश्या वाले नैरयिकों एवं देवों का उत्पाद व उद्वर्त्तन समझ लेना चाहिए। अंतर इतना है कि नैरयिकों में तीन लेश्या (कृष्ण, नील, कापोत) होती है जबकि असुरकुमार आदि देवों में तेजो लेश्या सहित चार लेश्याएं कहनी चाहिए। क्योंकि उनमें तेजो लेश्या भी होती हैं।

यहाँ पर नैरयिक एवं देवों में पूरे भव तक एक ही प्रकार की (कृष्ण, नील, कापोत एवं तेजोलेश्या में से अपने अपने प्रायोग्य कोई भी एक) लेश्या का रहना बताया है। उसका आशय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिक एवं देवों में द्रव्य लेश्या पूरे भव पर्यन्त तक वही रहती है, बदलती नहीं है। भाव लेश्या तो नैरयिक एवं देवों में भी पूरे भव में कई बार बदल सकती है।

से णूणं भंते! कण्हलेस्से पुढवीकाइए कण्हलेस्सेसु पुढवीकाइएसु उववज्जइ, कण्हलेस्से उववट्टइ, जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ?

हंता गोयमा! कण्हलेस्से पुढवीकाइए कण्हलेस्सेसु पुढवीकाइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेस्से उववट्टइ, सिय णीललेस्से उववट्टइ, सिय काउलेस्से उववट्टइ, सिय जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या वाला पृथ्वीकायिक कृष्ण लेश्या वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है? तथा क्या कृष्ण लेश्या वाला हो कर वहाँ से उद्वर्त्तन करता है? जिस लेश्या वाला हो कर उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या वाला हो कर वहाँ से उद्वर्त्तन करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! कृष्ण लेश्या वाला पृथ्वीकायिक कृष्ण लेश्या वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है, किन्तु उद्वर्त्तन कदाचित् कृष्ण लेश्या वाला हो कर, कदाचित् नील लेश्या वाला होकर और कदाचित् कापोत लेश्या वाला होकर करता है। अर्थात् जिस लेश्या वाला हो कर उत्पन्न होता है, कदाचित् उस लेश्या वाला हो कर मरण करता है और कदाचित् अन्य लेश्या वाला होकर मरण करता है।

एवं णीललेस्साकाउलेस्सासु वि।

भावार्थ - इसी प्रकार नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले पृथ्वीकायिक के उत्पाद और उद्वर्त्तन के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

से णूणं भंते! तेउलेस्से पुढवीकाइए तेउलेस्सेसु पुढवीकाइएसु उववज्जइ पुच्छा।

हंता गोयमा! तेउलेस्से पुढवीकाइए तेउलेस्सेसु पुढवीकाइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेस्से उववट्टइ, सिय णीललेस्से उववट्टइ, सिय काउलेस्से उववट्टइ, तेउलेस्से उववज्जइ, णो चेव णं तेउलेस्से उववट्टइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजो लेश्या वाला पृथ्वीकायिक क्या तेजो लेश्या वाले पृथ्वीकायिकों में ही उत्पन्न होता है? तेजो लेश्या वाला होकर ही उद्वर्त्तन करता है? इत्यादि पूर्ववत् पृच्छा।

उत्तर - हाँ गौतम! तेजो लेश्या वाला पृथ्वीकायिक तेजो लेश्या वाले पृथ्वीकायिकों में ही उत्पन्न होता है, किन्तु उद्वर्त्तन कदाचित् कृष्ण लेश्या वाला हो कर, कदाचित् नील लेश्या वाला हो कर कदाचित् कापोत लेश्या वाला होकर करता है, वह तेजो लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, परन्तु तेजो लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन नहीं करता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं आउकाइया वणस्सइकाइया वि।

भावार्थ - अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों की उत्पाद-उद्वर्त्तन सम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार पृथ्वीकायिकों के समान समझनी चाहिए।

तेउ वाऊ एवं चेव, णवरं एएसिं तेउलेस्सा णत्थि।

भावार्थ - तेजस्कायिकों और वायुकायिकों की उत्पाद-उद्वर्त्तन सम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार है किन्तु विशेषता यह है कि इनमें तेजो लेश्या नहीं होती।

बिय तिय चउरिंदिया एवं चेव तिसु लेस्सासु।

भावार्थ - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों का उत्पाद-उद्वर्त्तन सम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार तीनों (कृष्ण, नील एवं कापोत) लेश्याओं में जानना चाहिए।

पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया मणुस्सा य जहा पुढवीकाइया आइल्लिया तिसु लेस्सासु भणिया तहा छसु वि लेस्सासु भाणियव्वा, णवरं छप्पि लेस्साओ चारेयव्वाओ।

कठिन शब्दार्थ - चारेयव्वाओ - विचरण करा देना चाहिए।

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों और मनुष्यों का उत्पाद उद्वर्त्तन सम्बन्धी कथन भी छहों लेश्याओं में उसी प्रकार है, जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों का उत्पाद उद्वर्त्तन-सम्बन्धी कथन प्रारम्भ की तीन लेश्याओं के विषय में कहा है। विशेषता यही है कि पूर्वोक्त तीन लेश्या के बदले यहाँ छहों लेश्याओं का कथन कहना चाहिए।

विवेचन - पृथ्वीकायिक आदि तिर्यंचों और मनुष्यों की उद्वर्त्तना के विषय में यह एकान्त नियम नहीं है कि जिस लेश्या वालों में वह उत्पन्न हो उसी लेश्या वाला हो कर वहाँ से उद्वर्त्तन करे। वह कदाचित् कृष्ण लेश्या वाला हो कर उद्वर्त्तन करता है कदाचित् नील लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् कापोत लेश्या वाला हो कर उद्वर्त्तन करता तथा कदाचित् वह जिस लेश्या वालों में उत्पन्न होता है उसी लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन करता है क्योंकि तिर्यंचों और मनुष्यों का लेश्या-परिणाम अन्तर्मुहूर्त्त मात्र स्थायी रहता है उसके पश्चात् बदल जाता है। कहा भी है -

अंतोमुहुत्तंमि गए, अंतोमुहुत्तंमि सेसए चेव।
लेसाहिं परिणयाहिं जीवा गच्छंति परलोयं॥

अर्थात् मनुष्य और तिर्यंच आगामी भव की लेश्या का अन्तर्मुहूर्त्त व्यतीत होने के बाद और देव तथा नैरयिक अपने भव की लेश्या का अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर परिणत हुई लेश्या से परलोक जाते हैं ऐसा शास्त्र वचन (उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३४ गाथा ६०) है।

तेजो लेश्या से युक्त होकर पृथ्वीकायिक में उत्पन्न तो होता है लेकिन तेजो लेश्या वाला होकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्वर्त्तन नहीं करता क्योंकि जब भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ईशान कल्पों के देव तेजो लेश्या से युक्त होकर अपने भव का त्याग करके पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं तब कुछ काल तक अपर्याप्त अवस्था में उनमें तेजो लेश्या भी पाई जाती है किन्तु उसके पश्चात् तेजो लेश्या नहीं रहती, क्योंकि पृथ्वीकायिक जीव अपने भव स्वभाव से ही तेजो लेश्या के योग्य द्रव्यों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होते हैं। इसीलिए कहा गया है कि तेजो लेश्या वाला पृथ्वीकायिक में उत्पन्न तो होता है किन्तु तेजो लेश्या युक्त होकर उद्वर्त्तन नहीं करता। जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों की वक्तव्यता कही है उसी प्रकार अप्कायिकों एवं वनस्पतिकायिकों की भी वक्तव्यता कहनी चाहिये क्योंकि अपर्याप्त अवस्था में उनमें भी तेजो लेश्या पाई जाती है। तेजस्कायिकों, वायुकायिकों और तीन विकलेन्द्रियों में तेजो लेश्या संभव नहीं होने से कृष्ण, नील और कापोत इन तीन लेश्या संबंधी वक्तव्यता ही कहनी चाहिए।

वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

भावार्थ - वाणव्यन्तर देवों की उत्पाद-उद्वर्त्तन सम्बन्धी वक्तव्यता असुरकुमारों की वक्तव्यता के समान जाननी चाहिए।

से णूणं भंते! तेउलेस्से जोइसिए तेउलेस्सेसु जोइसिएसु उववज्जइ? जहेव असुरकुमारा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या तेजो लेश्या वाला ज्योतिषी देव तेजो लेश्या वाले ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होता है? क्या वह तेजो लेश्या वाला होकर ही च्यवन करता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसा असुरकुमारों के विषय में कहा गया है, वैसा ही कथन ज्योतिषी के विषय में समझना चाहिए।

एवं वेमाणिया वि, णवरं दोण्हं वि चयंतीति अभिलावो॥ ५०१॥

भावार्थ - इसी प्रकार वैमानिक देवों के उत्पाद और उद्वर्त्तन के विषय में भी कहना चाहिए। विशेषता यह है ज्योतिषी और वैमानिक देवों के लिए 'उद्वर्त्तन करते' हैं, इसके स्थान में 'च्यवन करते' हैं ऐसा अभिलाप करना चाहिए।

से णूणं भंते! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से णेरइए कण्हलेस्सेसु णीललेस्सेसु काउलेस्सेसु णेरइएसु उववज्जइ, कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से उववट्टइ, जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ?

हंता गोयमा! कण्ह णील काउलेस्से उववज्जइ, जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेसे उववट्टइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या वाला नैरयिक क्या क्रमशः कृष्ण लेश्या वाले, नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है? क्या वह क्रमशः कृष्ण लेश्या वाला, नील लेश्या वाला तथा कापोत लेश्या वाला होकर ही वहाँ से उद्वर्त्तन करता है? अर्थात् जो नैरयिक जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, क्या वह उसी लेश्या से युक्त होकर मरण करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! वह क्रमशः कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या वाले नैरयिकों में उत्पन्न होता है और जो नैरयिक जिस लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है, वह उसी लेश्या से युक्त होकर मरण करता है।

से णूणं भंते! कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से असुरकुमारे कण्हलेस्सेसु जाव तेउलेस्सेसु असुरकुमारेसु उववज्जइ?

एवं जहेव णेरइए तहा असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या वाला, यावत् तेजो लेश्या वाला असुरकुमार क्रमशः कृष्ण लेश्या वाले यावत् तेजो लेश्या वाले असुरकुमारों में उत्पन्न होता है? और क्या वह कृष्ण लेश्या वाला यावत् तेजो लेश्या वाला होकर ही असुरकुमारों से उद्वृत्त होता है?

उत्तर - हाँ गौतम! जैसे नैरयिक के उत्पाद-उद्वर्त्तन के सम्बन्ध में कहा, वैसे ही असुरकुमार के विषय में भी यावत् स्तनितकुमार के विषय में भी कहना चाहिए।

से णूणं भंते! कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से पुढवीकाइए कण्हलेस्सेसु जाव तेउलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ? एवं पुच्छा जहा असुरकुमाराणं।

हंता गोयमा! कण्हलेस्से जाव तेउलेस्से पुढविक्काइए कण्हलेस्सेसु जाव तेउलेस्सेसु पुढविक्काइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेस्से उववट्टइ, सिय णीललेस्से उववट्टइ, सिय काउलेस्से उववट्टइ, सिय जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ, तेउलेस्से उववज्जइ, णो चेव णं तेउलेस्से उववट्टइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वाला यावत् तेजो लेश्या वाला पृथ्वीकायिक, क्या क्रमशः कृष्ण लेश्या वाले यावत् तेजो लेश्या वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है? और क्या वह जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वृत्त करता है? इस प्रकार जैसी पृच्छा असुरकुमारों के विषय में की गई है, वैसी ही यहाँ भी समझ लेनी चाहिए।

उत्तर - हाँ गौतम! कृष्ण लेश्या वाला यावत् तेजो लेश्या वाला पृथ्वीकायिक क्रमशः कृष्ण लेश्या वाले यावत् तेजो लेश्या वाले पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है, किन्तु कृष्ण लेश्या में उत्पन्न होने वाला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह पृथ्वीकायिक कदाचित् कृष्ण लेश्यायुक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् नील लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है तथा कदाचित् कापोत लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् जिस लेश्या वाला होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन करता है। विशेषता यह है कि वह तेजो लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न तो होता है, किन्तु तेजो लेश्या वाला होकर उद्वर्त्तन नहीं करता है।

एवं आउकाइया वणस्सइकाइया वि भाणियव्वा।

भावार्थ - अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों के सामूहिक रूप से उत्पाद-उद्वर्त्तन के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

से णूणं भंते! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से तेउकाइए कण्हलेस्सेसु णीललेस्सेसु काउलेस्सेसु तेउकाइएसु उववज्जइ, कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से उववट्टइ, जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ?

हंता गोयमा! कण्हलेस्से णीललेस्से काउलेस्से तेउकाइए कण्हलेस्सेसु णीललेस्सेसु काउलेस्सेसु तेउकाइएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेस्से उववट्टइ, सिय णीललेस्से उववट्टइ सिय काउलेस्से उववट्टइ, सिय जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या वाला तेजस्कायिक, क्रमशः कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या वाले तेजस्कायिकों में ही उत्पन्न होता है? तथा क्या वह क्रमशः कृष्ण लेश्या वाला, नील लेश्या वाला तथा कापोत लेश्या वाला होकर ही उद्वर्त्तन करता है? अर्थात् वह जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, क्या उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या वाला तेजस्कायिक क्रमशः कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या वाले तेजस्कायिकों में उत्पन्न होता है, किन्तु कदाचित् कृष्ण लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् नील लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् कापोत लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है। अर्थात् कदाचित् जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् अन्य लेश्या से युक्त होकर भी उद्वर्त्तन करता है।

एवं वाउकाइय बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिया वि भाणियव्वा।

भावार्थ - इसी प्रकार वायुकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के उत्पाद उद्वर्त्तन के सम्बन्ध में कहना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से णूणं भंते! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए कण्हलेस्सेसु जाव सुक्कलेस्सेसु पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जइ पुच्छा?

हंता गोयमा! कण्हलेस्से जाव सुक्कलेस्से पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिए कण्हलेस्सेसु जाव सुक्कलेस्सेसु पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जइ, सिय कण्हलेस्से उववट्टइ जाव सिय सुक्कलेस्से उववट्टइ, सिय जल्लेस्से उववज्जइ तल्लेस्से उववट्टइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या वाला यावत् शुक्ल लेश्या वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्रमशः कृष्ण लेश्या वाले यावत् शुक्ल लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में उत्पन्न होता है? और क्या उसी कृष्णादि लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन (मरण) करता है? इत्यादि पृच्छा?

उत्तर - हाँ गौतम! कृष्ण लेश्या वाला यावत् शुक्ल लेश्या वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक क्रमशः कृष्ण लेश्या वाले यावत् शुक्ल लेश्या वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में उत्पन्न होता है, किन्तु उद्वर्त्तन (मरण) कदाचित् कृष्ण लेश्या वाला होकर करता है, कदाचित् नील लेश्या वाला होकर करता है, यावत् कदाचित् शुक्ल लेश्या से युक्त होकर करता है, अर्थात् कदाचित् जिस लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है, उसी लेश्या से युक्त होकर उद्वर्त्तन करता है, कदाचित् अन्य लेश्या से युक्त होकर भी उद्वर्त्तन करता है।

एवं मणूसे वि।

भावार्थ - मनुष्य भी इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच के समान छहों लेश्याओं में से किसी भी लेश्या से युक्त होकर उसी लेश्या वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा इसका उद्वर्त्तन भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच के समान समझना चाहिए।

वाणमंतरा जहा असुरकुमारा।

भावार्थ - वाणव्यन्तर देव का सामूहिक लेश्या युक्त उत्पाद और उद्वर्त्तन असुरकुमार की तरह समझना चाहिए।

जोइसिय वेमाणिया वि एवं चेव, णवरं जस्स जल्लेस्सा। दोण्ह वि 'चयणं' ति भाणियव्वं॥ ५०२॥

भावार्थ - ज्योतिषी और वैमानिक देव का उत्पाद-उद्वर्त्तन सम्बन्धी कथन भी असुरकुमारों के समान ही समझना चाहिए। विशेषता यह है कि जिसमें जितनी लेश्याएं हों, उतनी लेश्याओं का कथन करना चाहिए तथा ज्योतिषी और वैमानिकों के लिए उद्वर्त्तन के स्थान में 'च्यवन' शब्द कहना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक से लगाकर वैमानिक पर्यन्त प्रत्येक दण्डक के जीव की संभावित लेश्याओं को लेकर सामूहिक उत्पाद और उद्वर्त्तन की प्ररूपणा की गयी है।

कृष्णादि लेश्या वाले नैरयिकों में अवधिज्ञान दर्शन की क्षमता

कण्हलेस्से णं भंते! णेरइए कण्हलेस्सं णेरइयं पणिहाए ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ, केवइयं खेत्तं पासइ?

गोयमा! णो बहुयं खेत्तं जाणइ, णो बहुयं खेत्तं पासइ, णो दूरं खेत्तं जाणइ, णो दूरं खेत्तं पासइ, इत्तरियमेव खेत्तं जाणइ, इत्तरियमेव खेत्तं पासइ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'कण्हलेस्से णं णेरइए तं चेव जाव इत्तरियमेव खेत्तं पासइ?'

गोयमा! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसम रमणिज्जंसि भूमिभागंसि ठिच्चा सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए णं से पुरिसे धरणितलगयं पुरिसं पणिहाए सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे णो बहुयं खेत्तं जाव पासइ जाव इत्तरियमेव खेत्तं पासइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'कण्हलेस्से णं णेरइए जाव इत्तरियमेव खेत्तं पासइ।'

कठिन शब्दार्थ - **पणिहाए** - प्रणिधाय-अपेक्षा से, **सव्वओ** - सर्वतः सभी (चारों दिशाओं में), **समंता** - समंतात सभी (चारों विदिशाओं में), **ओहिणा** - अवधिज्ञान से, **समभिलोएमाणे** - समवलोकन करता (देखता) हुआ, **इत्तरियं** - थोडा अधिक, **बहुसम रमणिज्जंसि** - बहुत सम एवं रमणीय, **भूमिभागंसि** - भूमि भाग पर, **धरणितलगयं** - भूतल पर स्थित।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वाला नैरयिक कृष्ण लेश्या वाले दूसरे नैरयिक की अपेक्षा अवधिज्ञान के द्वारा सभी दिशाओं और विदिशाओं में देखता हुआ कितने क्षेत्र को जानता है और अवधिदर्शन से कितने क्षेत्र को देखता है?

उत्तर - हे गौतम! एक कृष्णलेशी नैरयिक दूसरे कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा न तो बहुत अधिक क्षेत्र को जानता है और न बहुत अधिक क्षेत्र को देखता है, न बहुत दूरवर्ती क्षेत्र को जानता है और न बहुत दूरवर्ती क्षेत्र को देख पाता है, वह थोड़े से (कुछ) अधिक क्षेत्र को जानता है और थोड़े से ही अधिक क्षेत्र को देख पाता है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण लेश्या युक्त नैरयिक न बहुत क्षेत्र को जानता है यावत् थोड़े से ही क्षेत्र को देख पाता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई पुरुष अत्यन्त सम एवं रमणीय भू-भाग पर स्थित होकर चारों ओर सभी दिशाओं और विदिशाओं में देखे तो वह पुरुष भूतल पर स्थित किसी दूसरे पुरुष की अपेक्षा से सभी दिशाओं विदिशाओं में बार-बार देखता हुआ न तो बहुत अधिक क्षेत्र को जानता है और न बहुत अधिक क्षेत्र देख पाता है, यावत् वह कुछ (थोड़े) ही अधिक क्षेत्र को जानता और देख पाता है। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण लेश्या वाला नैरयिक यावत् कुछ (थोड़े) ही क्षेत्र को देख पाता है।

णीललेस्से णं भंते! णेरइए कण्हलेस्सं णेरइयं पणिहाय ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ, केवइयं खेत्तं पासइ?

गोयमा! बहुतरागं खेत्तं जाणइ, बहुतरागं खेत्तं पासइ, दूरतरं खेत्तं जाणइ, दूरतरं खेत्तं पासइ, वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ, वितिमिरतरागं खेत्तं पासइ, विसुद्धतरागं खेत्तं जाणइ, विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णीललेस्से णं णेरइए कण्हलेस्सं णेरइयं पणिहाय जाव विसुद्धतरागं खेत्तं जाणइ, विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ?'

गोयमा! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पव्वयं दुरूहइ दुरूहित्ता सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए णं से पुरिसे धरणितलगयं पुरिसं पणिहाय सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे बहुतरागं खेत्तं जाणइ जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ,

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'णीललेस्से णेरइए कण्हलेस्से जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ।'

कठिन शब्दार्थ-वितिमिरतरागं - वितिमिर तर-अन्धकार रहित-भ्रान्ति रहित रूप से, **विसुद्धतरागं**-विशुद्धतर-अत्यंत स्पष्ट रूप से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नील लेश्या वाला नैरयिक, कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा सभी दिशाओं और विदिशाओं में अवधि ज्ञान के द्वारा देखता हुआ कितने क्षेत्र को जानता है और कितने क्षेत्र को अवधि दर्शन से देखता है?

उत्तर - हे गौतम! वह नील लेशी नैरयिक कृष्ण लेशी नैरयिक की अपेक्षा बहुतर क्षेत्र को जानता है और बहुतर क्षेत्र को देखता है, दूरतर क्षेत्र को जानता है और दूरतर क्षेत्र को देखता है, वह क्षेत्र को वितिमिरतर जानता है तथा क्षेत्र को वितिमिरतर देखता है, वह क्षेत्र को विशुद्धतर जानता है तथा क्षेत्र को विशुद्धतर रूप से देखता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि नील लेश्या वाला नैरयिक, कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा यावत् क्षेत्र को विशुद्धतर जानता है तथा क्षेत्र को विशुद्धतर देखता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई पुरुष अतीव सम रमणीय भूमिभाग से पर्वत पर चढ़ कर सभी दिशाओं-विदिशाओं में अवलोकन करे, तो वह पुरुष भूतल पर स्थित पुरुष की अपेक्षा, सब तरफ देखता हुआ बहुतर क्षेत्र को जानता-देखता है, यावत् क्षेत्र को विशुद्धतर जानता-देखता है। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि नील लेश्या वाला नैरयिक कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा क्षेत्र को यावत् विशुद्धतर रूप से जानता देखता है।

काउलेस्से णं भंते! णेरइए णीललेस्सं णेरइयं पणिहाय ओहिणा सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे केवइयं खेत्तं जाणइ० पासइ?

गोयमा! बहुतरागं खेत्तं जाणइ० पासइ जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ - 'काउलेस्से णं णेरइए जाव विसुद्धतरागं खेत्तं पासइ?'

गोयमा! से जहाणामए केइ पुरिसे बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ पव्वयं दुरूहइ दुरूहित्ता रूक्खं दुरूहइ दुरूहित्ता दो वि पाए उच्चाविय (उच्चावइत्ता) सव्वओ समंता समभिलोएज्जा, तए णं से पुरिसे पव्वयगयं धरणितलगयं च पुरिसं पणिहाय सव्वओ समंता समभिलोएमाणे समभिलोएमाणे बहुतरागं खेत्तं जाणइ, बहुतरागं खेत्तं पासइ जाव वितिमिरतरागं खेत्तं पासइ?

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-काउलेस्से णं णेरइए णीललेस्सं णेरइयं पणिहाय तं चेव जाव वितिमिरतरागं खेत्तं पासइ'॥ ५०३॥

कठिन शब्दार्थ - **उच्चाविय (उच्चावइत्ता)** - ऊँचा करके।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! कापोत लेश्या वाला नैरयिक नील लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा अवधि ज्ञान से सभी दिशाओं-विदिशाओं में सब ओर देखता हुआ कितने क्षेत्र को जानता है, कितने अधिक क्षेत्र को देखता है?

उत्तर - हे गौतम! वह कापोत लेशी नैरयिक नील लेशी नैरयिक की अपेक्षा बहुतर क्षेत्र को जानता है, बहुतर क्षेत्र को देखता है, दूरतर क्षेत्र को जानता है, दूरतर क्षेत्र को देखता है तथा यावत् क्षेत्र को विशुद्धतर रूप से जानता देखता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते हैं कि कापोत लेशी नैरयिक यावत् विशुद्धतर क्षेत्र को जानता-देखता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई पुरुष अत्यन्त सम एवं रमणीय भूभाग से पर्वत पर चढ़ जाए, फिर पर्वत से वृक्ष पर चढ़ जाए, तदनन्तर वृक्ष पर दोनों पैरों को ऊँचा करके चारों दिशाओं-विदिशाओं में सब ओर जाने-देखे तो वह बहुत क्षेत्र को जानता है, बहुतर क्षेत्र को देखता है यावत् उस क्षेत्र को विशुद्धतर रूप से जानता देखता है। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कापोत लेश्या वाला नैरयिक नील लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा यावत् अधिक क्षेत्र को वितिमिरतर एवं विशुद्धतर रूप से जानता और देखता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण आदि लेश्या वाले नैरयिकों द्वारा अवधिज्ञान-अवधिदर्शन से जानने देखने की क्षमता का निरूपण किया गया है। सातों नरक पृथ्वियों के नैरयिकों का अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र इस प्रकार हैं -

सातवीं नारकी का नैरयिक जघन्य आधा कोस उत्कृष्ट एक कोस, छठी नारकी का नैरयिक जघन्य एक कोस उत्कृष्ट डेढ़ कोस, पांचवीं नारकी का नैरयिक जघन्य डेढ़ कोस उत्कृष्ट दो कोस, चौथी नारकी का नैरयिक जघन्य दो कोस उत्कृष्ट ढाई कोस, तीसरी नारकी का नैरयिक जघन्य ढाई कोस उत्कृष्ट तीन कोस, दूसरी नारकी का नैरयिक जघन्य तीन कोस उत्कृष्ट साढ़े तीन कोस और पहली नारकी का नैरयिक जघन्य साढ़े तीन कोस उत्कृष्ट चार कोस प्रमाण क्षेत्र जानता देखता है। इस विषय में भगवान् महावीर स्वामी और गौतम स्वामी में हुए प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं -

हे भगवन्! दो कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक क्या अवधिज्ञान से समान जानते हैं समान देखते हैं?

हे गौतम! समान जानते हैं और समान देखते हैं और विषम भी जानते तथा विषम भी देखते हैं। एक पुरुष समतल पृथ्वी पर खड़ा होकर देखता है और एक पुरुष नीची जमीन पर खड़ा होकर देखता है। इन दोनों के देखने में जिस तरह अन्तर पड़ता है उसी तरह दो कृष्ण लेश्या वाले में भी आपस में अवधिज्ञान से जानने देखते में अन्तर पड़ता है। विशुद्ध लेश्या वाले की अपेक्षा अविशुद्ध लेश्या वाला कम जानता देखता है और अविशुद्ध लेश्या वाले की अपेक्षा विशुद्ध लेश्या वाला अधिक जानता देखता है।

हे भगवन्! क्या नील लेश्या वाला नैरयिक कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा अधिक जानता देखता है?

हे गौतम! जैसे एक पुरुष पहाड़ पर खड़ा होकर देखता है और एक पृथ्वी पर खड़ा होकर देखता है। इन दोनों में पहाड़ पर खड़ा होकर देखने वाला अधिक क्षेत्र देखता है और अधिक स्पष्ट देखता है। इसी तरह कृष्ण लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा नील लेश्या वाला नैरयिक अधिक एवं विशुद्धतर जानता देखता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन् ! क्या नील लेश्या वाले दो नैरयिक अवधिज्ञान से समान जानते हैं, समान देखते हैं?

हे गौतम! समान जानते हैं समान देखते हैं और विषम भी जानते हैं और विषम भी देखते हैं, जैसे एक पुरुष पर्वत पर खड़ा होकर देखता है और एक पुरुष पर्वत पर पैर ऊँचे करके देखता है। इन दोनों के देखने में जिस तरह अन्तर पड़ता है, इसी तरह नील लेश्या वाले दो नैरयिकों में भी आपस में अवधिज्ञान से जानने देखने में अन्तर पड़ता है। विशुद्ध लेश्या वाले की अपेक्षा अविशुद्ध लेश्या वाला कम जानता देखता है और अविशुद्ध लेश्या वाले की अपेक्षा विशुद्ध लेश्या वाला अधिक जानता देखता है। इसी तरह कापोत लेश्या वाला नैरयिक नील लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा अवधिज्ञान से अधिक एवं विशुद्धतर जानता देखता है। जैसे एक पुरुष पर्वत पर खड़ा होकर देखता है और एक पुरुष पर्वतस्थ (पर्वत पर रहे हुए) वृक्ष पर खड़ा होकर देखता है। इन दोनों में पर्वतस्थ वृक्ष पर खड़ा होकर देखने वाला पुरुष दूसरे की अपेक्षा अधिक और स्पष्ट देखता है। इसी तरह कापोत लेश्या वाला नैरयिक भी नील लेश्या वाले नैरयिक की अपेक्षा विशेष एवं विशुद्धतर जानता देखता है।

कृष्ण आदि लेश्या वाले जीवों में ज्ञान-प्ररूपणा

कण्हलेस्से णं भंते! जीवे कइसु णाणेसु होज्जा?

गोयमा! दोसु वा तिसु वा चउसु वा णाणेसु होज्जा, दोसु होमाणे आभिणिबोहिय सुयणाणे होज्जा, तिसु होमाणे आभिणिबोहिय सुयणाण ओहिणाणेसु होज्जा, अहवा तिसु होमाणे आभिणिबोहिय सुयणाण मणपज्जवणाणेसु होज्जा, चउसु होमाणे आभिणिबोहिय सुय ओहि मणपज्जवणाणेसु होज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वाला जीव कितने ज्ञानों में होता है?

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेश्या वाला जीव दो, तीन अथवा चार ज्ञानों में होता है। यदि दो ज्ञानों में हो तो आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान में होता है, तीन ज्ञानों में हो तो आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञान में होता है अथवा तीन ज्ञानों में हो तो आभिनिबोधिक, श्रुतज्ञान और मनःपर्यवज्ञान में होता है और चार ज्ञानों में हो तो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान में होता है।

एवं जाव पम्हलेस्से।

भावार्थ - इसी प्रकार नील, कापोत और तेजो लेश्या यावत् पद्म लेश्या वाले जीव में पूर्वोक्त सूत्रानुसार ज्ञानों की प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए।

सुक्कलेस्से णं भंते! जीवे कइसु णाणेसु होज्जा?

गोयमा! दोसु वा तिसु वा चउसु वा एगम्मि वा होज्जा, दोसु होमाणे आभिणिबोहिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाण० एवं जहेव कण्हलेस्साणं तहेव भाणियव्वं जाव चउहिं। एगंमि णाणे होमाणे एगंमि केवलणाणे होज्जा॥ ५०४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शुक्ल लेश्या वाला जीव कितने ज्ञानों में होता है?

उत्तर - हे गौतम! शुक्ल लेशी जीव दो, तीन, चार या एक ज्ञान में होता है। यदि दो ज्ञानों में हो तो आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान में होता है, तीन या चार ज्ञानों में हो तो जैसा कृष्ण लेश्या वालों का कथन किया था, उसी प्रकार यावत् चार ज्ञानों में होता है, यहाँ तक कहना चाहिए। यदि एक ज्ञान में हो तो एक केवलज्ञान में होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण आदि लेश्या वाले जीवों में ज्ञान की प्ररूपणा की गयी है।

समुच्चय लेश्या में दो ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान) तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान या मनःपर्यवज्ञान) चार ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान) अथवा एक ज्ञान (केवलज्ञान) हो सकते हैं। कृष्ण लेश्या में दो, तीन, चार ज्ञान पाये जाते हैं। नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या और पद्म लेश्या में भी दो, तीन, चार ज्ञान पाये जाते हैं। शुक्ल लेश्या में दो, तीन, चार और एक ज्ञान पाये जाते हैं। केवलज्ञान शुक्ल लेश्या वालों में ही होता है अन्य किसी में नहीं। यह अन्य लेश्या वालों से शुक्ल लेश्या वाले की विशेषता है।

शंका - मनःपर्यवज्ञान तो अतिविशुद्ध परिणाम वाले अप्रमत्त संयत को उत्पन्न होता है जबकि कृष्ण लेश्या संक्लेशमय परिणाम रूप होती है अतः कृष्ण लेश्या वाले जीव में मनःपर्यवज्ञान कैसे हो सकता है?

समाधान - प्रत्येक लेश्या के अध्यवसाय स्थान असंख्यात लोकाकाश प्रदेश जितने हैं। उनमें से कोई कोई मन्द अनुभाव वाले अध्यवसाय स्थान होते हैं जो प्रमत्त संयत में पाए जाते हैं। यद्यपि मनःपर्यवज्ञान अप्रमत्त संयत को ही उत्पन्न होता है परन्तु उत्पन्न होने के बाद वह प्रमत्त दशा में भी रहता है इस अपेक्षा से कृष्ण लेश्या वाला जीव भी मनःपर्यवज्ञानी हो सकता है।

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तरसमे लेस्सापए तइओ उद्देसओ समत्तो॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र के सत्तरहवें लेश्यापद का तृतीय उद्देशक समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेस्सापए चउत्थो उद्देसओ

लेश्या पद का चतुर्थ उद्देशक

लेश्या पद के चतुर्थ उद्देशक के प्रारंभ में अधिकार प्रतिपादक गाथा इस प्रकार है -

परिणाम वण्ण रस गंध सुद्ध अपसत्थ संकिलिट्ठुण्हा।

गइ परिणाम पएसोगाढ वग्गण ठाणाणमप्पबहुं॥ १॥

भावार्थ - १. परिणाम २. वर्ण, ३. रस ४. गन्ध ५. शुद्ध (और अशुद्ध) ६. प्रशस्त (और अप्रशस्त) ७. संक्लिष्ट (और असंक्लिष्ट) ८. उष्ण (और शीत) ९. गति १०. परिणाम ११. प्रदेश १२. अवगाढ १३. वर्गणा १४. स्थान (प्ररूपणा) और १५. अल्पबहुत्व, ये पन्द्रह अधिकार चतुर्थ उद्देशक में कहे जाएंगे।

१. परिणाम द्वार

कइ णं भंते! लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छल्लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा-कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! लेश्याएँ कितनी प्रकार की होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! लेश्याएँ छह प्रकार की होती हैं, वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

से णूणं भंते! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?

हंता गोयमा! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?'

गोयमा! से जहा णामए खीरे दूसिं पप्प, सुद्धे वा वत्थे रागं पप्प तारूवत्ताए जाव ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - पप्प - पाकर-प्राप्त होकर, **तारूवत्ताए** - तद्रूपतया-उसी रूप में, **दूसिं** - दूष्य-छाछ आदि खटाई का जावण, **रागं** - राग-मजीठ आदि रंग।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या नील लेश्या को प्राप्त हो कर उसी रूप में, उसी के वर्ण रूप में, उसी के गन्ध रूप में, उसी के रस रूप में, उसी के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है?

उत्तर - हाँ, गौतम! कृष्ण लेश्या नील लेश्या को प्राप्त होकर उसी रूप में यावत् पुनः पुनः परिणत होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण लेश्या नील लेश्या को प्राप्त करके उसी रूप में यावत् बार-बार परिणत होती है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे छाछ आदि खटाई का जावण पाकर दूध अथवा शुद्ध वस्त्र, रंग लाल, पीला आदि का सम्पर्क पाकर उस रूप में, उसी के वर्ण-रूप में, उसी के गन्ध-रूप में, उसी के रस-रूप में, उसी के स्पर्श-रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाता है, इसी प्रकार हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण लेश्या नील लेश्या को पा कर उसी के रूप में यावत् पुनः पुनः परिणत होती है।

एवं एएणं अभिलावेणं णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प, काउलेस्सा तेउलेस्सं पप्प, तेउलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प, पम्हलेस्सा सुक्कलेस्से पप्प जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ ॥ ५०५ ॥

भावार्थ - इसी प्रकार पूर्वोक्त अभिलाप (कथन) के अनुसार नील लेश्या कापोत लेश्या को प्राप्त होकर, कापोत लेश्या तेजो लेश्या को प्राप्त होकर, तेजो लेश्या पद्मलेश्या को प्राप्त होकर और पद्म लेश्या शुक्ल लेश्या को प्राप्त होकर उसी के रूप में और यावत् उसी के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में लेश्या परिणाम की प्ररूपणा की गयी है। एक लेश्या का दूसरी लेश्या के रूप में तथा उसी के वर्ण आदि के रूप में परिणत (परिवर्तित) हो जाना लेश्या परिणाम है। यह परिणमन मनुष्य और तिर्यंच की अपेक्षा से कहा है। जब कोई कृष्ण लेश्या के परिणाम वाला तिर्यंच या मनुष्य भवान्तर में जाने वाला होता है और वह नील लेश्या के योग्य द्रव्यों को ग्रहण करता है तब नील लेश्या योग्य द्रव्य के संबंध से वे कृष्ण लेश्या के योग्य द्रव्य तथारूप जीव के परिणाम रूप सहयोगी कारण को प्राप्त कर नील लेश्या के द्रव्य रूप में परिणत हो जाते हैं क्योंकि पुद्गलों का उस उस रूप में परिणत होने का स्वभाव है। इसलिए वह केवल नील लेश्या योग्य द्रव्य की प्रधानता से नील लेश्या के परिणाम वाला होकर काल करके भवान्तर में उत्पन्न होता है। कहा है कि - **"जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ तल्लेस्से उववज्जइ"** जीव जिन लेश्या द्रव्यों को ग्रहण कर काल करता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसी लेश्या के परिणाम वाला होकर उत्पन्न होता है। तथा वही मनुष्य या तिर्यंच उसी भव में रहता हुआ जब कृष्ण लेश्या में परिणत होकर नील लेश्या के रूप में परिणत होता है तब भी कृष्ण लेश्या के द्रव्य तत्काल ग्रहण किए हुए नील लेश्या के द्रव्यों के संबंध से नील लेश्या के द्रव्यों में परिवर्तित हो जाते हैं। इसी बात को सूत्रकार ने दृष्टान्त देकर स्पष्ट किया है। जैसे दूध, छाछ के संयोग से अपना मीठा स्वाद छोड़ कर खट्टा हो जाता है अथवा श्वेत वस्त्र मजीठ आदि रंग के संयोग से मजीठ आदि के वर्ण का हो जाता है। उसी प्रकार कृष्ण लेश्या नील लेश्या को पाकर नील लेश्या रूप में एवं नील लेश्या के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श रूप में बार-बार परिणत होती है।

इसी प्रकार नील लेश्या कापोत लेश्या रूप में, कापोत लेश्या तेजो लेश्या रूप में, तेजो लेश्या पद्म लेश्या रूप में और पद्म लेश्या शुक्ल लेश्या रूप में बार बार परिणत होती है।

से णूणं भंते! कण्हलेस्सा णीललेस्सं काउलेस्सं तेउलेस्सं पम्हलेस्सं सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?

हंता गोयमा! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'कण्हलेस्सा णीललेस्सं जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?'

गोयमा! से जहाणामए वेरुलियमणी सिया कण्हसुत्तए वा णीलसुत्तए वा लोहियसुत्तए वा हालिद्दसुत्तए वा सुक्किल्लसुत्तए वा आइए समाणे तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'कण्हलेस्सा णीललेस्सं जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ॥ ५०६॥'

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या क्या नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या को प्राप्त होकर उन्हीं के स्व रूप में, उन्हीं के वर्ण रूप में, उन्हीं के गन्ध रूप में, उन्हीं के रस रूप में, उन्हीं के स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत होती है?

उत्तर - हाँ, गौतम! कृष्ण लेश्या, नील लेश्या को प्राप्त होकर यावत् शुक्ल लेश्या को प्राप्त हो कर उन्हीं के स्वरूप में यावत् उनमें से किसी भी लेश्या के वर्णादि रूप में पुनः पुनः परिणत होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि कृष्ण लेश्या, नील लेश्या को यावत् शुक्ल लेश्या को प्राप्त होकर उन्हीं के स्वरूप में यावत् उन्हीं के वर्णादि रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई वैडूर्यमणि काले सूत्र में या नीले सूत्र में, लाल सूत्र में या पीले सूत्र में अथवा श्वेत सूत्र में पिरोने पर वह उसी के रूप में यावत् उसी के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है, इसी प्रकार हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण लेश्या, नील लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या को प्राप्त होकर उन्हीं के रूप में यावत् उन्हीं के वर्णादि रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती है।

से णूणं भंते! णीललेस्सा किण्हलेस्सं जाव सुक्कलेस्सं पप्प तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?'

हंता गोयमा! एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नील लेश्या, कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या को पाकर उन्हीं के स्वरूप में यावत् उन्हीं के वर्णादि रूप में बार-बार परिणत होती है?

उत्तर - हे गौतम! ऐसा ही है, जैसा कि ऊपर कहा गया है।

काउलेस्सा किण्हलेस्सं णीललेस्सं तेउलेस्सं पम्हलेस्सं सुक्कलेस्सं, एवं तेउलेस्सा किण्हलेस्सं णीललेस्सं काउलेस्सं पम्हलेस्सं सुक्कलेस्सं, एवं पम्हलेस्सा किण्हलेस्सं णीललेस्सं काउलेस्सं तेउलेस्सं सुक्कलेस्सं।

भावार्थ - इसी प्रकार कापोत लेश्या-कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या को प्राप्त होकर इसी प्रकार तेजो लेश्या-कृष्ण लेश्या, कापोत लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या को प्राप्त होकर, इसी प्रकार पद्म लेश्या-कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या को प्राप्त होकर उनके स्वरूप में तथा उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप में परिणत हो जाती है।

से णूणं भंते! सुक्कलेस्सा किण्हलेस्सं णीललेस्सं काउलेस्सं तेउलेस्सं पम्हलेस्सं पप्प जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?

हंता गोयमा! एवं चेव॥ ५०७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या शुक्ल लेश्या-कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या और पद्म लेश्या को प्राप्त होकर यावत् उन्हीं के स्वरूप में तथा उन्हीं के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप में बार-बार परिणत होती है?

उत्तर - हाँ गौतम! ऐसा ही है, जैसा कि ऊपर कहा गया है।

विवेचन - कृष्ण लेश्या-नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को पाकर नील लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या रूप में एवं उन-उन लेश्याओं के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श रूप में बार-बार परिणत होती है। जैसे वैडूर्यमणि कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत वर्ण के सूत्र (धागे) का संयोग पाकर कृष्ण, नील, रक्त, पीत और श्वेत वर्ण का हो जाता है। कृष्ण लेश्या की तरह शेष लेश्याएं भी अपने से भिन्न पांच लेश्याओं को पाकर उन-उन लेश्याओं के रूप में एवं उनके वर्ण गंध रस और स्पर्श रूप में बार-बार परिणत हो जाती है।

२. वर्ण द्वार

किण्हलेस्सा णं भंते! वण्णेणं केरिसिया पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए जीमूए इ वा अंजणे इ वा खंजणे इ वा कज्जले इ वा गवले इ वा गवलवलए इ वा जंबूफले इ वा अद्दारिट्ठपुप्फे इ वा परपुट्ठे इ वा भमरे इ वा भमरावली इ वा गयकलभे इ वा किण्हकेसे इ वा आगासथिग्गले इ वा किण्हासोए इ वा किण्हकणवीरए इ वा किण्हबंधुजीवए इ वा।

भवे एयारूवे?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, किण्हलेस्सा णं इत्तो अणिट्ठतरिया चेव अकंततरिया चेव अप्पियतरिया चेव अमणुण्णतरिया चेव अमणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता ॥५०८॥

कठिन शब्दार्थ - जीमूए - जीमूत-वर्षा ऋतु के प्रारंभ काल का जल से भरा मेघ, **अंजणे** - अंजन-आँखों में आंजने का सौवीर अंजन, काला सुरमा या अंजन नामक रत्न विशेष, **खंजणे** - खंजन-दीपक-दीवट, के लगा मैल या गाडी की धुरी में लगा हुआ कीट-औंघन, **गवले** - गवल-भैंस का सिंग, **गवलवलए** - गवलवलय-भैंस के सींगों का समूह, **अद्दारिट्ठपुप्फे** - अरीठा या अरीठे का फूल, **परपुट्ठे** - परपुष्ट-कोयल, **भमरावली** - भ्रमरों की पंक्ति, **अणिट्ठतरिया** - अनिष्टतर, **अकंततरिया** - अकांततर-अधिक अकांत-असुंदर, **अप्पियतरिया** - अप्रियतरिका, **अमणुण्णतरिया** - अमनोज्ञतर **अमणामतरिया**-अमनामतर-अत्यधिक अवांछनीय।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वर्ण से कैसी होती है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई जीमूत (वर्षारम्भकालिक मेघ) हो, अंजन हो, खंजन-गाडी की धुरी में लगा हुआ औघन या दीवट के लगा मैल हो, काजल हो, गवल (भैंस का सींग) हो गवलवलय (भैंस के सींगों का समूह) हो, जामुन का फल हो, या अरीठे का फूल हो, कोयल हो, भ्रमर हो, भ्रमरों की पंक्ति हो, हाथी का बच्चा हो, काले केश हों, आकाशथिग्गल (शरदऋत के मेघों के बीच का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकाशखण्ड) हो, काला अशोक हो, काला कनेर हो, अथवा काला बन्धुजीवक (विशिष्ट वृक्ष) हो, इनके समान कृष्ण लेश्या काले वर्ण की है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या वास्तव में इसी रूप की होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। कृष्ण लेश्या इससे भी अनिष्टतर है, अत्यंत अकान्त अत्यंत अप्रिय, अत्यंत अमनोज्ञ और अत्यंत अमनाम वर्ण वाली कही गई है।

णीललेस्सा णं भंते! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए भिंगए इ वा भिंगपत्ते इ वा चासे इ वा चासपिच्छए इ वा सुए इ वा सुयपिच्छे इ वा सामा इ वा वणराई इ वा उच्चंतए इ वा पारेवयगीवा इ वा मोरगीवा इ वा हलहरवसणे इ वा अयसिकुसुमे इ वा वणकुसुमे इ वा अंजणकेसिया कुसुमे इ वा णीलुप्पले इ वा णीलासोए इ वा णीलकणवीरए इ वा णीलबंधुजीवए इ वा।

भवेयारूवे?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे० एत्तो जाव अमणामयरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता ॥५०९॥

कठिन शब्दार्थ - भिंगए - भृंग पक्षी, **चासपिच्छए** - चाष पक्षी की पंख, **सुए** - शुक (तोता), **सामाइ** - श्यामा (प्रियंगुलता), **णीलासोए** - नील अशोक वृक्ष, **उच्चंतए** - उच्चंतक (दांत का रंग)

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नीललेश्या वर्ण से कैसी होती है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई भृंग पक्षी हो, भृंगपत्र हो, अथवा चाष पक्षी (नीलकण्ठ) हो, या चाषपक्षी की पांख हो, या तोता हो, तोते की पांख हो, श्यामा (प्रियंगुलता) हो, अथवा वनराजि हो, या उच्चन्तक (दन्तराग-दांत रंगने का द्रव्य) हो, या कबूतर की ग्रीवा हो, अथवा मोर की ग्रीवा हो, या हलधर (बलदेव) का नील वस्त्र हो, या अलसी का फूल हो, अथवा वण (बाण) वृक्ष का फूल हो, या अंजनकेसिका कुसुम हो, नीलकमल हो अथवा नील अशोक हो, नीला कनेर हो अथवा नीला बन्धुजीवक वृक्ष हो, इनके समान नील लेश्या नीले वर्ण की होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या नील लेश्या वास्तव में इसी रूप की होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। नील लेश्या इससे भी अनिष्टतर, अधिक अकान्त, अधिक अप्रिय, अधिक अमनोज्ञ और अधिक अमनाम वर्ण वाली कही गई है।

काउलेस्सा णं भंते! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! से जहाणामए खइरसारए इ वा कइरसारए इ वा धमाससारे इ वा तंबे इ वा तंब करोडए इ वा तंबच्छि वाडियाए इ वा वाइंगणि कुसुमे इ वा कोइलच्छद कुसुमे इ वा जवासा कुसुमे इ वा।

भवेयारूवे?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। काउलेस्सा णं एत्तो अणिट्ठयरिया जाव अमणामयरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता॥ ५१०॥

कठिन शब्दार्थ - खइरसारए - खदिरसार-खदिर (कत्था) के वृक्ष का सार (मध्यवर्ती) भाग, **तंबकरोडए** - ताम्र करोटक, **वाइंगणि कुसुमे** - बैंगन का फूल।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कापोतलेश्या वर्ण से कैसी होती है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई खदिर का सार भाग हो, करीर सार (कैर का सार भाग) हो, अथवा धमास वृक्ष का सार भाग हो, ताम्बा हो या ताम्बे का कटोरा हो या ताम्बे के वर्ण की फली हो, या बैंगन का फूल हो, कोकिलच्छद (तैलकण्टक) वृक्ष का फूल (अथवा कोयल के शरीर का ताम्रवर्णी अवयव) हो, अथवा जवासा का फूल हो, इनके काले और लाल समान वर्ण वाली कापोतलेश्या होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या कापोत लेश्या वास्तव में इसी रूप की होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। कापोत लेश्या वर्ण से इससे भी अनिष्टतर यावत् अत्यधिक अमनाम कही गयी है।

तेउलेस्सा णं भंते! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए सस रुहिरे इ वा उरब्भ रुहिरे इ वा वराह रुहिरे इ वा संबर रुहिरे इ वा मणुस्स रुहिरे इ वा इंदगोवे इ वा बालेंदगोवे इ वा बालदिवायरे इ वा संझारागे इ वा गुंजद्धरागे इ वा जाइ हिंगुलए इ वा पवालंकुरे इ वा लक्खारसे इ वा लोहियक्खमणी इ वा किमिराग कंबले इ वा गयतालुए इ वा चीणपिट्ठरासी इ वा पारिजायकुसुमे इ वा जासुमणकुसुमे इ वा किंसुय पुप्फरासी इ वा रत्तुप्पले इ वा रत्तासोगे इ वा रत्तकणवीरए इ वा रत्तबंधुजीवए इ वा।

भवेयारूवा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। तेउलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता॥ ५११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - ससरुहिरे - खरगोश का रुधिर (खून), **इंदगोवे** - इन्द्र गोप-वर्षा ऋतु के प्रारम्भ समय में उत्पन्न होने वाला लाल रंग का अमुक प्रकार का कीड़ा, **बालेंदगोवे** - बालेन्द्रगोप-तत्काल जन्मा हुआ इन्द्रगोप, **इट्ठतरिया** - इष्टतर-अधिक इष्ट, **मणामतरिया** - मनामतर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजो लेश्या वर्ण से कैसी होती है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई खरगोश का रुधिर (रक्त) हो, मेष (मेंढे) का रुधिर हो, सूअर का रुधिर (रक्त) हो, सांभर (हिरण की जाति विशेष) का रुधिर हो, मनुष्य का रुधिर हो, या इन्द्रगोप नामक कीड़ा हो, अथवा बाल-इन्द्रगोप हो, या बाल-सूर्य (उगते समय का सूरज) हो, सन्ध्याकालीन लालिमा हो, गुंजा (चिरमी) के आधे भाग की लालिमा हो, उत्तम (जातिमान्) हींगलू हो, प्रवाल (मूंगे) का अंकुर हो, लाक्षारस हो, लोहिताक्षमणि हो, किरमिची रंग का कम्बल हो, हाथी का तालु (तलुआ) हो, चीन नामक लाल द्रव्य के आटे की राशि हो, पारिजात का फूल हो, जपापुष्प हो, किंशुक (टेसु ढाक-पलाश) के फूलों की राशि हो, लाल कमल हो, लाल अशोक हो, लाल कनेर हो, अथवा लाल बन्धुजीवक हो, ऐसे रक्त वर्ण की तेजो लेश्या होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या तेजो लेश्या इसी रूप की होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। तेजो लेश्या इन से भी इष्टतर, अधिक कान्त, अधिक प्रिय, अधिक मनोज्ञ और अधिक मनाम वर्ण वाली होती है।

पम्हलेस्सा णं भंते! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए चंपे इ वा चंपयछल्ली इ वा चंपयभेए इ वा हालिद्दा इ वा हालिद्दगुलिया इ वा हालिद्दभेए इ वा हरियाले इ वा हरियालगुलिया इ वा हरियालभेए इ वा चिउरे इ वा चिउररागे इ वा सुवण्णसिप्पी इ वा वरकणगणिहसे इ वा वरपुरिसवसणे इ वा अल्लइकुसुमे इ वा चंपयकुसुमे इ वा कण्णियारकुसुमे इ वा कुहंडयकुसुमे इ वा सुवण्णजूहिया इ वा सुहिरण्णिया कुसुमे इ वा कोरिंटमल्लदामे इ वा पीयासोगे इ वा पीयकणवीरए इ वा पीयबंधुजीवए इ वा।

भवेयारूवे?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। पम्हलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता॥ ५१२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पद्म लेश्या वर्ण से कैसी होती है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई चम्पा वृक्ष हो, चम्पक वृक्ष की छाल हो, चम्पक का टुकड़ा हो,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हल्दी हो, हल्दी की गुटिका (गोली) हो, हल्दी का खण्ड (टुकडा) हो, हरताल हो, हरताल की गुटिका (गोली) हो, हरताल का टुकड़ा हो, चिकुर नामक पीत वस्तु हो, चिकुर का रंग हो, या स्वर्ण की शुक्ति हो, उत्तम स्वर्ण-निकष (कसौटी पर खींची हुई स्वर्णरेखा) हो, श्रेष्ठ पुरुष (वासुदेव) का पीताम्बर हो, अल्लकी का फूल हो, चम्पा का फूल हो, कनेर का फूल हो, कूष्माण्ड (कोले) की लता का पुष्प हो, स्वर्णयूथिका (जूही) का फूल हो, सुहिरण्यिका-कुसुम हो, कोरंट के फूलों की माला हो, पीत-पीला अशोक हो, पीला कनेर हो, अथवा पीला बन्धुजीवक हो, इनके समान पद्म लेश्या पीले वर्ण की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या पद्म लेश्या वास्तव में ही इसी रूप वाली होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। पद्म लेश्या वर्ण में इनसे भी इष्टतर, यावत् अधिक मनाम (वांछनीय) होती है।

सुक्कलेस्सा णं भंते! केरिसिया वण्णेणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए अंके इ वा संखे इ वा चंदे इ वा कुंदे इ वा दगे इ वा दगरए इ वा दही इ वा दहिघणे इ वा खीरे इ वा खीरपूरए इ वा सुक्कच्छिवाडिया इ वा पेहुणमिंजिया इ वा धंतधोयरुप्पपट्टे इ वा सारयबलाहए इ वा कुमुयदले इ वा पोंडरीयदले इ वा सालिपिट्ठरासी इ वा कुडगपुप्फरासी इ वा सिंदुवारमल्लदामे इ वा सेयासोए इ वा सेयकणवीरे इ वा सेयबंधुजीवए इ वा।

भवेयारूवे?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। सुक्कलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव वण्णेणं पण्णत्ता॥ ५१३॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! शुक्ल लेश्या वर्ण से कैसी होती है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई अंकरत्न हो, शंख हो, चन्द्रमा हो, कुन्द (पुष्प) हो, उदक (स्वच्छ जल) हो, जलकण हो, दही हो, जमा हुआ दही (दधिपिण्ड) हो, दूध हो, दूध का उफान हो, सूखी फली हो, मयूरपिच्छ की मिंजी हो, तपा कर धोया हुआ चांदी का पट्ट हो, शरदऋतु का बादल हो, कुमुद का पत्र हो, पुण्डरीक कमल का पत्र हो, चावलों (शालिधान्य) के आटे का पिण्ड (राशि) हो, कुटज के पुष्पों की राशि हो, सिन्धुवार के श्रेष्ठ फूलों की माला हो, श्वेत अशोक हो, श्वेत कनेर हो, अथवा श्वेत बन्धुजीवक हो, इनके समान शुक्ल लेश्या श्वेत वर्ण की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या शुक्ल लेश्या वास्तव में ऐसे ही रूप वाली होती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। शुक्ल लेश्या इनसे भी वर्ण में इष्टतर यावत् अधिक मनाम होती है।

एयाओ णं भंते! छल्लेस्साओ कइसु वण्णेसु साहिज्जंति?

गोयमा! पंचसु वण्णेसु साहिज्जंति, तंजहा - कण्हलेस्सा कालएणं वण्णेणं साहिज्जइ, णीललेस्सा णीलएणं वण्णेणं साहिज्जइ, काउलेस्सा काललोहिएणं वण्णेणं साहिज्जइ, तेउलेस्सा लोहिएणं वण्णेणं साहिज्जइ, पम्हलेस्सा हालिद्दएणं वण्णेण साहिज्जइ, सुक्कलेस्सा सुक्किल्लएणं वण्णेणं साहिज्जइ॥ ५१४॥

कठिन शब्दार्थ - साहिज्जंति - कही जाती है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ये छहों लेश्याएं कितने वर्णों द्वारा कही जाती है?

उत्तर - हे गौतम! ये पांच वर्णों वाली हैं। वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या काले वर्ण द्वारा कही जाती है, नील लेश्या नीले वर्ण द्वारा कही जाती है, कापोत लेश्या काले और लाल वर्ण द्वारा कही जाती है, तेजो लेश्या लाल वर्ण द्वारा कही जाती है, पद्म लेश्या पीले वर्ण द्वारा कही जाती है और शुक्ल लेश्या श्वेत (शुक्ल) वर्ण द्वारा कही जाती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में छह द्रव्य लेश्याओं के वर्ण का निरूपण किया गया है।

३. रस द्वार

कण्हलेस्सा णं भंते! केरिसिया आसाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए णिंबे इ वा णिंबसारे इ वा णिंबछल्ली इ वा णिंबफाणिए इ वा कुडए इ वा कुडगफलए इ वा कुडगछल्ली इ वा कुडगफाणिए इ वा कडुगतुंबी इ वा कडुगतुंबिफले इ वा खारतउसी इ वा खारतउसीफले इ वा देवदाली इ वा देवदालीपुप्फे इ वा मियवालुंकी इ वा मियवालुंकीफले इ वा घोसाडए इ वा घोसाडईफले इ वा कण्हकंदए इ वा वज्जकंदए इ वा।

भवेयारूवा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, कण्हलेस्सा णं एत्तो अणिट्ठतरिया चेव जाव अमणामतरिया चेव आसाएणं पण्णत्ता॥ ५१५॥

कठिन शब्दार्थ - आसाएणं - आस्वाद-रस से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या आस्वाद (रस) से कैसी कही गयी है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई नीम हो, नीम का सार हो, नीम की छाल हो, नीम का क्वाथ (काढ़ा) हो, अथवा कुटज हो, या कुटज का फल हो, अथवा कुटज की छाल हो या कुटज का क्वाथ (काढ़ा) हो, अथवा कड़वी तुम्बी हो, या कड़वा तुम्बा हो, कड़वी ककड़ी (त्रपुषी) हो, या कड़वी ककड़ी का फल हो, अथवा देवदाली (रोहिणी) हो या देवदाली का पुष्प हो, या मृगवालुंकी हो अथवा मृगवालुंकी का फल हो, या कड़वी घोषातिकी हो, अथवा कड़वी घोषातिकी (तुराई) का फल हो या कृष्णकन्द हो अथवा वज्रकन्द हो, इन वनस्पतियों के कटु रस के समान कृष्ण लेश्या का रस कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या रस से इसी रूप की होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। कृष्ण लेश्या स्वाद में इन से भी अनिष्टतर, अधिक अकान्त, अधिक अप्रिय, अधिक अमनोज्ञ और अतिशय अमनाम है।

णीललेस्साए पुच्छा?

गोयमा! से जहाणामए भंगी इ वा भंगीरए इ वा पाढा इ वा चविया इ वा चित्तामूलए इ वा पिप्पली इ वा पिप्पलीमूलए इ वा पिप्पलीचुण्णे इ वा मिरिए इ वा मिरियचुण्णए इ वा सिंगबेरे इ वा सिंगबेरचुण्णे इ वा।

भवेयारूवा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णीललेस्सा णं एत्तो जाव अमणामतरिया चेव आसाएणं पण्णत्ता ॥५१६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नील लेश्या आस्वाद में कैसी है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई भृंगी (एक प्रकार की मादक वनस्पति) हो, अथवा भृंगी का कण (रज) हो, या पाठा नामक वनस्पति हो या चविता हो अथवा चित्रमूलक वनस्पति हो, या पिप्पलीमूल (पीपरामूल) हो, या पीपल हो, अथवा पीपल का चूर्ण हो, मिर्च हो या मिर्च का चूरा हो, शृंगबेर (अदरक) हो या शृंगबेर का चूर्ण हो, इन सबके रस के समान नील लेश्या का रस कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या नील लेश्या रस से इसी प्रकार की होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। नील लेश्या रस में इससे भी अनिष्टतर, अधिक अकान्त, अधिक अप्रिय, अधिक अमनोज्ञ और अत्यधिक अमनाम कही गयी है।

काउलेस्साए पुच्छा?

गोयमा! से जहाणामए अंबाण वा अंबाडगाण वा माउलुंगाण वा बिल्लाण वा **कविट्ठाण वा भद्दाण (भट्ठाण, भच्चाण) वा फणसाण वा दाडिमाण वा पारेवयाण**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वा अक्खोडयाण वा चोराण वा बोराण वा तिंदुयाण वा अपक्काणं अपरियागाणं वण्णेणं अणुववेयाणं गंधेणं अणुववेयाणं फासेणं अणुववेयाणं।

भवेयारूवा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे जाव एत्तो अमणामतरिया चेव काउलेस्सा अस्साएणं पण्णत्ता॥ ५१७॥

कठिन शब्दार्थ - अपक्काणं - अपक्व, **अपरियागाणं** - पूरे पके हुए न हों।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कापोत लेश्या आस्वाद में कैसी है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई आम्रों का, आम्राटक के फलों का, बिजौरों का, बिल्वफलों (बेल के फलों) का, कवीठों का, भट्टों का, पनसों (कटहलों) का, दाडिमों (अनारों) का, पारावत नामक फलों का, अखरोटों का, प्रौढ़-बड़े बेरों का, बेरों का, तिन्दुकों के फलों का, जो कि अपक्व हों, पूरे पके हुए न हों, वर्ण से रहित हों, गन्ध से रहित हों और स्पर्श से रहित हों, इनके आस्वाद-रस के समान कापोत लेश्या का रस-स्वाद का कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या कापोत लेश्या रस से इसी प्रकार की होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। कापोत लेश्या स्वाद में इनसे भी अनिष्टतर यावत् अत्यधिक अमनाम कही गयी है।

तेउलेस्सा णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! से जहाणामए अंबाण वा जाव पक्काणं परियावण्णाणं वण्णेणं उववेयाणं पसत्थेणं जाव फासेणं जाव एत्तो मणामयरिया चेव तेउलेस्सा आसाएणं पण्णत्ता॥ ५१८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजो लेश्या आस्वाद में कैसी है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे किन्हीं आम्रों के यावत् (आम्राटकों से लेकर) तिन्दुकों तक के फल जो कि परिपक्व हों, पूर्ण परिपक्व अवस्था को प्राप्त हों, परिपक्व अवस्था के प्रशस्त वर्ण से, गन्ध से और स्पर्श से युक्त हों, इनका जैसा स्वाद होता है, वैसा ही तेजो लेश्या का है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या तेजो लेश्या आस्वाद से इसी प्रकार की होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। तेजो लेश्या स्वाद में इनसे भी इष्टतर यावत् अधिक मनाम होती है।

पम्हलेस्साए पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! से जहाणामए चंदप्पभा इ वा मणसिला इ वा वरसीधू इ वा वरवारुणी इ वा पत्तासवे इ वा पुप्फासवे इ वा फलासवे इ वा चोयासवे इ वा आसवे इ वा महू इ वा मेरए इ वा कविसाणए इ वा खज्जूरसारए इ वा मुद्दियासारए इ वा सुपक्कखोयरसे इ वा अट्ठपिट्ठणिट्ठिया इ वा जंबुफलकालिया इ वा वरप्पसण्णा इ वा आसला मंसला पेसला ईसिं ओट्ठवलंबिणी ईसिं वोच्छेयकडुई ईसिं तंबच्छिकरणी उक्कोसमयपत्ता वण्णेणं उववेया जाव फासेणं आसायणिज्जा वीसायणिज्जा पीणणिज्जा विंहणिज्जा दीवणिज्जा दप्पणिज्जा मयणिज्जा, सव्विंदियगायपल्हायणिज्जा।

भवेयारूवा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, पम्हलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव जाव मणामतरिया चेव आसाएणं पण्णत्ता॥५१९॥

कठिन शब्दार्थ - आसायणिज्जा - आस्वादन करने योग्य, **वीसायणिज्जा** - विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य, **पीणणिज्जा** - प्रीणनीय-तृप्तिकारक, **विंहणिज्जा** - बृंहणीय-वृद्धिकारक, **दीवणिज्जा** - उद्दीपन करने वाली, **दप्पणिज्जा** - दर्पनीय-दर्पजनक, **मयणिज्जा** - मदजनक, **सव्विंदिय गाय पल्हायणिज्जा** - सभी इन्द्रियों और गात्र (शरीर) को आह्लादजनक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पद्म लेश्या का आस्वाद कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई चन्द्रप्रभा नामक मदिरा, मणिशलाका मद्य, श्रेष्ठ सीधु नामक मद्य हो, उत्तम वारुणी (मदिरा) हो, धातकी के पत्तों से बनाया हुआ आसव हो, पुष्पों का आसव हो, फलों का आसव हो, चोय नाम के सुगन्धित द्रव्य से बना आसव हो, अथवा सामान्य आसव हो, मधु (मद्य) हो, मैरेयक या कापिशायन नामक मद्य हो, खजूर का सार हो, द्राक्षा सार हो, सुपक्व इक्षुरस हो, अथवा शास्त्रोक्त अष्टविध पिष्टों द्वारा तैयार की हुए वस्तु हो, या जामुन के फल की तरह काली स्वादिष्ट वस्तु हो, या उत्तम प्रसन्ना नाम की मदिरा हो, जो अत्यन्त स्वादिष्ट हो, प्रचुर रस से युक्त हो, रमणीय हो अतएव आस्वादयुक्त होने से झटपट ओठों से लगा ली जाए अर्थात् जो मुखमाधुर्यकारिणी हो तथा जो पीने के पश्चात् (इलायची लौंग आदि द्रव्यों के मिश्रण के कारण) कुछ तीखी-सी हो, जो आँखों को ताम्रवर्ण की बना दे तथा उत्कृष्ट मादक हो, जो प्रशस्त वर्ण, गन्ध और स्पर्श से युक्त हो, जो आस्वादन करने योग्य हो, विशेष रूप से आस्वादन करने योग्य हो, जो तृप्तिकारक हो, वृद्धिकारक हो, उद्दीपन करने वाली, दर्पजनक, मदजनक तथा सभी इन्द्रियों और शरीर (गात्र) को आह्लादजनक हो, इनके रस के समान पद्म लेश्या का आस्वाद होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! क्या पद्म लेश्या का आस्वाद ऐसा ही होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। पद्म लेश्या तो स्वाद (रस) में इससे भी इष्टतर यावत् अत्यधिक मनाम कही गयी है।

सुक्कलेस्सा णं भंते! केरिसिया अस्साएणं पण्णत्ता?

गोयमा! से जहाणामए गुले इ वा खंडे इ वा सक्करा इ वा मच्छंडिया इ वा पप्पडमोयए इ वा भिसकंदए इ वा पुप्फुत्तरा इ वा पउमुत्तरा इ वा आयंसिया इ वा सिद्धत्थिया इ वा आगासफालिओवमा इ वा उवमा इ वा अणोवमा इ वा।

भवेयारूवा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, सुक्कलेस्सा णं एत्तो इट्ठतरिया चेव० पियतरिया चेव० मणामयरिया चेव आसाएणं पण्णत्ता॥ ५२०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शुक्ल लेश्या आस्वाद में कैसी है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे कोई गुड़ हो, खांड-देशी शक्कर हो, शक्कर हो, मिश्री (मत्स्यण्डी) हो हो, पर्पट मोदक (एक प्रकार का मोदक अथवा मिश्री का पापड़ और लड्डू) हो, भिस कन्द हो, पुष्पोत्तर नामक मिष्टान्न हो, पद्मोत्तरा नाम की मिठाई हो, आदंशिका नामक मिठाई हो या सिद्धार्थिका नाम की मिठाई हो, आकाशस्फटिकोपमा नामक मिठाई हो, अथवा अनुपमा नामक मिष्टान्न हो, इनके स्वाद के समान शुक्ल लेश्या का आस्वाद (रस) कहा गया है।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या शुक्ल लेश्या स्वाद में ऐसी ही होती है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। शुक्ल लेश्या स्वाद में इनसे भी इष्टतर, अधिक कान्त (कमनीय) अधिक प्रिय एवं अत्यधिक मनोज्ञ, मनाम कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में छह लेश्याओं के रसों का निरूपण किया गया है।

४. गंध द्वार

कइ णं भंते! लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तओ लेस्साओ दुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हलेस्सा, णीललेस्सा, काउलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दुर्गन्ध वाली कितनी लेश्याएँ कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! तीन लेश्याएं दुर्गन्ध वाली कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कइ णं भंते! लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! तओ लेस्साओ सुब्भिगंधाओ पण्णत्ताओ। तंजहा - तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कितनी लेश्याएँ सुगन्ध वाली कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! तीन लेश्याएँ सुगन्ध वाली कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रारंभ की तीन लेश्याएं दुर्गन्ध वाली और अंत की तीन लेश्याएं सुगंध वाली कही गयी है। उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३४ गाथा १६-१७ में इन लेश्याओं की गंध के बारे में इस प्रकार वर्णन किया गया है -

जह गोमडस्स गंधो, सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स।

एत्तो वि अणंतगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं॥ १६॥

अर्थात् - जिस प्रकार गाय के मृतक कलेवर की, कुत्ते के मृतक शरीर की और सांप के मृतक शरीर की दुर्गन्ध होती है उससे भी अनंतगुण दुर्गन्ध अप्रशस्त लेश्याओं (क्रमशः कृष्ण लेश्या नील लेश्या और कापोत लेश्या) की होती है।

जह सुरहिकुसुम गंधो, गंधवासाण पिस्समाणाणं।

एत्तो वि अणंतगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि॥ १७॥

अर्थात् - जैसी सुगन्धित फूलों की सुगन्ध होती है या पीसे जाते हुए चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों की जैसी सुगन्ध होती है उससे भी अनन्त गुण सुगन्ध तीनों प्रशस्त लेश्याओं (तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या) की होती है।

५-६-७-८-९ शुद्ध-प्रशस्त-संक्लिष्ट-उष्ण-गति द्वार

एवं तओ अविसुद्धाओ, तओ विसुद्धाओ, तओ अप्पसत्थाओ, तओ पसत्थाओ, तओ संकिलिट्ठाओ, तओ असंकिलिट्ठाओ, तओ सीयलुक्खाओ, तओ णिद्धुण्हाओ, तओ दुग्गइ गामियाओ, तओ सुगई गामियाओ॥ ५२१॥

कठिन शब्दार्थ - दुग्गइ गामियाओ - दुर्गति गामिनी (दुर्गति में ले जाने वाली), **सुगई गामियाओ**- सुगतिगामिनी (सुगति में ले जाने वाली)।

भावार्थ - इसी प्रकार पूर्ववत् क्रमशः तीन लेश्याएं अविशुद्ध और तीन विशुद्ध हैं, तीन अप्रशस्त हैं और तीन प्रशस्त हैं, तीन संक्लिष्ट हैं और तीन असंक्लिष्ट हैं, तीन शीत और रूक्ष स्पर्श वाली हैं और तीन उष्ण और स्निग्ध स्पर्श वाली हैं तथा तीन दुर्गतिगामिनी और तीन सुगतिगामिनी हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या, ये तीन लेश्याएं क्रमशः अविशुद्ध, अप्रशस्त, संक्लिष्ट, शीत और रूक्ष स्पर्श वाली तथा दुर्गति में ले जाने वाली होती है। तेजो लेश्या, पद्म लेश्या, शुक्ल लेश्या, ये तीन लेश्याएं विशुद्ध, प्रशस्त, असंक्लिष्ट, उष्ण और स्निग्ध स्पर्शवाली तथा सुगति में ले जाने वाली होती है।

१०. परिणाम द्वार

कण्हलेस्सा णं भंते! कइविहं परिणामं परिणमइ?

गोयमा! तिविहं वा णवविहं वा सत्तावीसविहं वा एक्कासीइविहं वा बेतेयालीसतविहं वा बहुयं वा बहुविहं वा परिणामं परिणमइ, एवं जाव सुक्कलेस्सा ॥५२२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या कितने प्रकार के परिणाम में परिणत होती है?

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेश्या तीन प्रकार के, नौ प्रकार के, सत्ताईस प्रकार के, इक्यासी प्रकार के या दो सौ तेतालीस प्रकार के अथवा बहुत-से या बहुत प्रकार के परिणाम में परिणत होती है। कृष्ण लेश्या के परिणामों के कथन की तरह नील लेश्या से लेकर शुक्ल लेश्या तक के परिणामों का भी कथन करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में लेश्याओं का परिणाम बतलाया गया है। प्रत्येक लेश्या के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ऐसे तीन भेद होते हैं। इन तीन भेदों में भी अपने अपने स्थानों में जब तरतमता का विचार किया जाता है तब यह जघन्य आदि प्रत्येक भी अपने अपने में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट भेद वाले हो जाते हैं। इस प्रकार तीन को तीन से गुणा करने पर ९ भेद हो जाते हैं। इन नौ में फिर जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद करने पर २७ भेद हो जाते हैं। इन २७ को फिर जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तीन से गुणा करने पर ८१ भेद हो जाते हैं और इन ८१ को फिर इन जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट से गुणा करने पर २४३ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक लेश्या के परिणाम बहुत भेदों वाले हो जाते हैं।

११. प्रदेश द्वार

कण्हलेस्सा णं भंते! कइपएसिया पण्णत्ता?

गोयमा! अणंतपएसिया पण्णत्ता, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या कितने प्रदेश वाली कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेश्या अनन्त प्रदेशों वाली कही गयी है क्योंकि कृष्ण लेश्या योग्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परमाणु अनन्तानन्त संख्या वाले होते हैं। इसी प्रकार नील लेश्या से यावत् शुक्ल लेश्या तक प्रदेशों का कथन करना चाहिए।

विवेचन - कृष्ण आदि छहों लेश्याओं में से प्रत्येक के योग्य परमाणु अनन्त अनन्त होने से उन्हें अनन्त प्रदेशी कहा है।

१२. अवगाढ़ द्वार

कण्हलेस्सा णं भंते! कइपएसोगाढा पण्णत्ता?

गोयमा! असंखिज्ज पएसोगाढा पण्णत्ता, एवं जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या आकाश के कितने प्रदेशों में अवगाढ़ (व्याप्त करके रही हुई) है?

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेश्या असंख्यात आकाश प्रदेशों में अवगाढ़ है। इसी प्रकार शुक्ल लेश्या तक असंख्यात प्रदेशावगाढ़ समझनी चाहिए।

विवेचन - यद्यपि एक-एक लेश्या की वर्गणाएं अनन्त-अनन्त हैं फिर भी उन सब का अवगाहन असंख्यात आकाश प्रदेशों में ही हो जाता है। क्योंकि सम्पूर्ण लोकाकाश के असंख्यात ही प्रदेश हैं इसलिए कृष्ण आदि लेश्याएं असंख्यात प्रदेशावगाढ़ कही गई है।

१३. वर्गणा द्वार

कण्हलेस्साए णं भंते! केवइयाओ वग्गणाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अणंताओ वग्गणाओ पण्णत्ताओ। एवं जाव सुक्क लेस्साए॥ ५२३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या की कितनी वर्गणाएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेश्या की अनन्त वर्गणाएं कही गई हैं। इसी प्रकार यावत् शुक्ल लेश्या तक की वर्गणाओं का कथन करना चाहिए।

विवेचन - औदारिक शरीर आदि के योग्य परमाणुओं के समूह के समान कृष्ण लेश्या के योग्य परमाणुओं के समूह को कृष्ण लेश्या की वर्गणा कहा गया है। जो वर्णादि के भेद से अनंत होती है। कृष्ण लेश्या की तरह ही शेष सभी लेश्याओं की भी वर्गणाएं अनंत-अनंत होती हैं।

१४ लेश्या स्थान द्वार

केवइया णं भंते! कण्हलेस्सा ठाणा पण्णत्ता?

गोयमा! असंखिज्जा कण्हलेस्सा ठाणा पण्णत्ता। एवं जाव सुक्कलेस्सा॥ ५२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्णलेश्या के स्थान (तर-तम रूप भेद) कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! कृष्ण लेश्या के असंख्यात स्थान कहे गए हैं। इसी प्रकार शुक्ल लेश्या तक के स्थानों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

विवेचन - लेश्या के प्रकर्ष-अपकर्ष कृत अर्थात् विशुद्धि और अविशुद्धि की तरतमता से होने वाले भेदों को लेश्या स्थान कहते हैं। एक एक लेश्या के तरतम भेद रूप स्थान, काल की अपेक्षा से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालों के समयों के बराबर है। क्षेत्र से असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर है। इसलिए कहा जाता है कि असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के जितने समय होते हैं अथवा असंख्यात लोकों के जितने प्रदेश होते हैं उतने ही लेश्या के स्थान हैं। किन्तु विशेषता यह है कि कृष्ण आदि तीन अशुभ भाव लेश्याओं के स्थान संक्लेश रूप और तेजो लेश्या आदि तीन शुभ भाव लेश्याओं के स्थान असंक्लेश रूप-विशुद्ध होते हैं।

१५. अल्पबहुत्व द्वार

एएसि णं भंते! कण्हलेस्सा ठाणाणं जाव सुक्कलेस्सा ठाणाण य जहण्णगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णगा कण्हलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णगा तेउलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णगा पम्हलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णगा सुक्कलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्साठाणा पएसट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णगा कण्हलेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णगा तेउलेस्साए ठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णगा पम्हलेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णगा सुक्कलेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, दव्वट्ठपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं कण्हलेस्सा, तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा, जहण्णगा सुक्कलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्साठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए जहण्णकाउलेस्साठाणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पएसट्ठयाए अणंतगुणा, जहण्णया णीललेस्साठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं जाव सुक्कलेस्साठाणा॥ ५२५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या के जघन्य स्थानों में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य तथा प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्य की अपेक्षा से, सबसे थोड़े जघन्य कापोत लेश्या स्थान हैं, उनसे नील लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे कृष्ण लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे पद्म लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे शुक्ल लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा से - सबसे थोड़े कापोत लेश्या के जघन्य स्थान हैं, उनसे नील लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे कृष्ण लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे तेजो लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे पद्म लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे शुक्लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं।

द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से-सबसे कम कापोत लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से हैं, उनसे नील लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, उनसे जघन्य कृष्ण लेश्या स्थान, तेजो लेश्या स्थान, पद्म लेश्या स्थान तथा इसी प्रकार शुक्ल लेश्या स्थान द्रव्य की अपेक्षा से क्रमशः असंख्यात गुणा हैं। द्रव्य की अपेक्षा से शुक्ल लेश्या के जघन्य स्थानों से, कापोत लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्त गुणा हैं, उनसे नील लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या एवं शुक्ल लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा हैं।

एएसि णं भंते! कण्हलेस्साठाणाणं जाव सुक्कलेस्साठाणाण य उक्कोसगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा उक्कोसगा काउलेस्साठाणा दव्वट्ठयाए, उक्कोसगा णीललेस्साठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्जगुणा, एवं जहेव जहण्णगा तहेव उक्कोसगा वि, णवरं उक्कोस त्ति अभिलावो॥ ५२६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट स्थानों से लेकर यावत् शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े कापोत लेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से हैं। उनसे नील लेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं। इसी प्रकार जघन्य स्थानों के अल्पबहुत्व की तरह उत्कृष्ट स्थानों का भी अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि 'जघन्य' शब्द के स्थान में यहाँ 'उत्कृष्ट' शब्द कहना चाहिए।

एएसि णं भंते! कण्हलेस्सठाणाणं जाव सुक्कलेस्सठाणाण य जहण्णउक्कोसगाणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं कण्हतेउपम्हलेस्सठाणा, जहण्णगा सुक्कलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए उक्कोसा काउलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्जगुणा, उक्कोसा णीललेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं कण्हतेउपम्हलेस्सट्ठाणा, उक्कोसा सुक्कलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा। पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सठाणा पएसट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं जहेव दव्वट्ठयाए तहेव पएसट्ठयाए वि भाणियव्वं, णवरं पएसट्ठयाएत्ति अभिलावविसेसो। दव्वट्ठपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा जहण्णगा काउलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए, जहण्णगा णीललेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं कण्हतेउपम्हलेस्सट्ठाणा, जहण्णया सुक्कलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए उक्कोसा काउलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, उक्कोसा णीललेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं कण्हतेउपम्हलेस्सट्ठाणा, उक्कोसगा सुक्कलेस्सठाणा दव्वट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, उक्कोसएहिंतो सुक्कलेस्सठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए जहण्णगा काउलेस्सठाणा पएसट्ठयाए अणंतगुणा, जहण्णगा णीललेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं कण्हतेउपम्हलेस्सट्ठाणा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णगा सुक्कलेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, जहण्णएहिंतो सुक्कलेस्सठाणेहिंतो पएसट्ठयाए उक्कोसा काउलेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, उक्कोस्सया णीललेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा, एवं कण्ह-तेउपम्हलेस्सट्ठाणा, उक्कोस्सया सुक्कलेस्सठाणा पएसट्ठयाए असंखिज्ज गुणा॥ ५२७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या के जघन्य और उत्कृष्ट स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों (उभय) की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े द्रव्य की अपेक्षा से कापोत लेश्या के जघन्य स्थान हैं, उनसे नील लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इस प्रकार कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा हैं। द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य शुक्ल लेश्या स्थानों से उत्कृष्ट कापोत लेश्या स्थान असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट स्थान उत्तरोत्तर द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं।

प्रदेशों की अपेक्षा से सबसे कम कापोत लेश्या के जघन्य स्थान हैं, उनसे नील लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार जैसे द्रव्य की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का कथन किया गया है, वैसे ही प्रदेशों की अपेक्षा से भी अल्पबहुत्व कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहाँ 'प्रदेशों की अपेक्षा से' ऐसा कथन करना चाहिए। द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से सबसे थोड़े कापोत लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से हैं, उनसे नील लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा हैं। द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य शुक्ल लेश्या स्थानों से उत्कृष्ट कापोत लेश्या स्थान असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के जघन्य स्थान द्रव्य की अपेक्षा से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा हैं। द्रव्य की अपेक्षा से जघन्य शुक्ल लेश्या स्थानों से उत्कृष्ट कापोत लेश्या स्थान असंख्यात गुणा हैं, उनसे नील लेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या एवं शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट स्थान द्रव्य की अपेक्षा से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा हैं। द्रव्य की अपेक्षा से उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या स्थानों से जघन्य कापोत लेश्या स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्त गुणा हैं, उनसे जघन्य नील लेश्या प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या एवं शुक्ल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेश्या के जघन्य स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा हैं। प्रदेश की अपेक्षा से जघन्य शुक्ल लेश्या स्थानों से, उत्कृष्ट कापोत लेश्या स्थान प्रदेशों से असंख्यात गुणा हैं, उनसे उत्कृष्ट नील लेश्या स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या एवं शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट स्थान प्रदेशों की अपेक्षा से उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में छहों लेश्याओं के जघन्य और उत्कृष्ट स्थानों का द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य तथा प्रदेशों की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का कथन किया गया है।

जो जघन्य लेश्या स्थान रूप परिणाम के कारण हों, वे जघन्य और उत्कृष्ट लेश्या स्थान रूप परिणाम के कारण हों, वे उत्कृष्ट कहलाते हैं। जो जघन्य स्थानों के समीपवर्ती मध्यम स्थान हैं, उनका समावेश जघन्य में और जो उत्कृष्ट स्थानों के समीपवर्ती है उनका समावेश उत्कृष्ट में हो जाता है। ये एक-एक स्थान अपने एक ही मूल स्थान के अन्तर्गत होते हुए भी परिणाम गुण भेद के कारण असंख्यात हैं। आत्मा में जघन्य एक गुण अधिक, दो गुण अधिक लेश्या द्रव्य रूप उपाधि के कारण असंख्यात लेश्या परिणाम विशेष होते हैं। व्यवहार दृष्टि से वे सभी अल्प गुण वाले होने से जघन्य कहलाते हैं। उनके कारण भूत द्रव्यों के स्थान भी जघन्य कहलाते हैं। इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थान भी असंख्यात समझ लेने चाहिए।

जघन्य और उत्कृष्ट स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों (शामिल) की अपेक्षा से सबसे कम कापोत लेश्या के स्थान हैं उनसे नील लेश्या, कृष्ण लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या एवं शुक्ल लेश्या के स्थान उत्तरोत्तर प्रायः असंख्यात गुणा हैं क्वचित् प्रदेशों की अपेक्षा शुक्ल लेश्या स्थानों की अपेक्षा कापोत लेश्या स्थान अनंत गुणा कहे गये हैं।

यहाँ पर जघन्य और उत्कृष्ट स्थानों में द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कापोत लेश्या के स्थान सबसे थोड़े बताये गये हैं। इसका कारण इसकी स्थिति थोड़ी होने से और अशुभ पुद्गल होने से इसके द्रव्य प्रदेश थोड़े होते हैं तथा अशुभ लेश्याओं में शीत और रूक्ष पुद्गलों की बहुलता होती है। तीनों अशुभ लेश्याओं में कापोत लेशया की स्थिति सब से थोड़ी होने से उसके द्रव्य तथा प्रदेश थोड़े होते हैं।

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तरसमे लेस्सापए चउत्थो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती के सत्तरहवें लेश्या पद का चतुर्थ उद्देशक समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेस्सापए पंचमो उद्देसओ

लेश्या पद का पांचवां उद्देशक

लेश्याओं के भेद

कइ णं भंते! लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छल्लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लेश्याएँ कितनी हैं?

उत्तर - हे गौतम! लेश्याएँ छह हैं - कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

से णूणं भंते! कण्हलेस्सा णीललेस्सा णीललेस्सं पप्प तारूवत्ताए तावण्णत्ताए तागंधत्ताए तारसत्ताए ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?

इत्तो आढत्तं जहा चउत्थओ उद्देसओ तहा भाणियव्वं जाव वेरुलिय मणि दिट्ठंतो त्ति ॥५२८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या नील लेश्या को प्राप्त होकर उसी के स्वरूप में, उसी के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के रूप में पुनः पुनः परिणत हो जाती हैं?

उत्तर - हे गौतम! यहाँ से प्रारम्भ करके यावत् वैडूर्यमणि के दृष्टान्त तक जैसे चतुर्थ उद्देशक में कहा है, वैसे ही कहना चाहिए।

लेश्याओं के परिणाम भाव

से णूणं भंते! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?

हंता गोयमा! कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए, णो तावण्णत्ताए, णो तागंधत्ताए, णो तारसत्ताए, णो ताफासत्ताए भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ०?

गोयमा! आगार भाव मायाए वा से सिया, पलिभाग भाव मायाए वा से सिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कण्हलेस्सा णं सा, णो खलु सा णीललेस्सा, तत्थ गया उस्सक्कइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'कण्हलेस्सा णीललेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।'

कठिन शब्दार्थ - आगार भाव मायाए - आकार भाव (मणी आदि का आकार) मांत्र से अथवा दर्पण आदि के बिना होने वाली छाया से, **पलिभाग भाव मायाए** - प्रतिभाग भाव (प्रतिबिम्ब-झांई-छाया) मात्र से अथवा दर्पण आदि में पड़ने वाली छाया, **उस्सक्कइ** - उत्कर्ष को प्राप्त होती है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या नील लेश्या को प्राप्त होकर नील लेश्या के स्वभाव रूप में तथा उसी के वर्ण रूप में, गन्ध रूप में, रस रूप में एवं स्पर्श रूप में बार-बार परिणत नहीं होती है?

उत्तर - हाँ, गौतम! कृष्ण लेश्या को प्राप्त होकर न तो उनके स्वभाव रूप में, न उसके वर्ण रूप में, न इसके गन्ध रूप में, न उसके रस रूप में और न उसके स्पर्श रूप में बार-बार परिणत होती हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण लेश्या नील लेश्या को प्राप्त होकर न तो उसके स्वरूप में यावत् न उसके वर्ण-गन्ध-रस स्पर्श रूप में बार-बार परिणत होती है?

उत्तर - हे गौतम! वह कृष्ण लेश्या आकार भावमात्र से हो, अथवा प्रतिभाग भावमात्र (प्रति बिम्बमात्र) से नील लेश्या होती है। वास्तव में यह कृष्ण लेश्या ही रहती है, वह नील लेश्या नहीं हो जाती। वह कृष्ण लेश्या वहाँ रही हुई उत्कर्ष को प्राप्त होती है, इसी कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कृष्ण लेश्या नील लेश्या को प्राप्त होकर न तो उसके स्वरूप में यावत् न ही उसके वर्ण-गन्ध-रस स्पर्श रूप में बारबार परिणत होती है।

से णूणं भंते! णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?

हंता गोयमा! णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ?'

गोयमा! आगार भाव मायाए वा सिया, पलिभाग भाव मायाए वा सिया। णीललेस्सा णं सा, णो खलु सा काउलेस्सा, तत्थगया ओसक्कइ उस्सक्कइ वा, से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'णीललेस्सा काउलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव भुज्जो-भुज्जो परिणमइ'।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नील लेश्या, कापोत लेश्या को प्राप्त होकर न तो उसके स्वरूप में यावत् न ही उसके वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रूप में बारबार परिणत होती हैं?

उत्तर - हाँ, गौतम! नील लेश्या कापोत लेश्या को प्राप्त होकर न उसके स्वरूप में यावत् न ही उसके वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रूप में बारबार परिणत होती है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि नील लेश्या, कापोत लेश्या को प्राप्त होकर न उसके स्वरूप में, यावत् पुनःपुनः परिणत होती है?

उत्तर - हे गौतम! वह नील लेश्या आकारभावमात्र से ही अथवा प्रतिबिम्बमात्र से कापोतलेश्या होती है, वास्तव में वह नील लेश्या ही रहती है, वास्तव में वह कापोत लेश्या नहीं हो जाती। वहाँ रही हुई वह नील लेश्या घटती-बढ़ती रहती है। इसी कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि नील लेश्या कापोत लेश्या को प्राप्त होकर न तो तद्रूप में यावत् न ही उसके वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रूप में बारबार परिणत होती है।

एवं काउलेस्सा तेउलेस्सं पप्प, तेउलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प, पम्हलेस्सा सुक्कलेस्सं पप्प।

भावार्थ - इसी प्रकार कापोत लेश्या तेजो लेश्या को प्राप्त होकर, तेजो लेश्या पद्म लेश्या को प्राप्त होकर और पद्म लेश्या शुक्ल लेश्या को प्राप्त होकर उसी के स्वरूप में, अर्थात् वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रूप में परिणत नहीं होती, ऐसा पूर्वोक्त युक्तिपूर्वक समझना चाहिए।

से णूणं भंते! सुक्कलेस्सा पम्हलेस्सं पप्प णो तारूवत्ताए जाव परिणमइ?

हंता गोयमा! सुक्कलेस्सा तं चेव।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'सुक्कलेस्सा जाव णो परिणमइ?'

गोयमा! आगार भाव मायाए वा जाव सुक्कलेस्सा णं सा, णो खलु सा पम्हलेस्सा, तत्थ गया ओसक्कइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'जाव णो परिणमइ' ॥५२९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या शुक्ल लेश्या, पद्म लेश्या को प्राप्त होकर उसके स्वरूप में यावत् उसके वर्ण-गंध-रस-स्पर्श रूप में पुनः पुनः परिणत नहीं होती?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हाँ, गौतम! शुक्ल लेश्या पद्म लेश्या को पा कर उसके स्वरूप में परिणत नहीं होती, इत्यादि सब पूर्ववत् कहना चाहिए।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि शुक्ल लेश्या पद्म लेश्या को प्राप्त होकर यावत् उसके स्वरूप में तथा उसके वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रूप में परिणत नहीं होती?

उत्तर - हे गौतम! आकारभावमात्र से अथवा प्रतिबिम्बमात्र से यावत् वह शुक्ल लेश्या पद्म लेश्या जैसी प्रतीत होती है वह वास्तव में शुक्ल लेश्या ही है, निश्चय ही वह पद्म लेश्या नहीं होती। शुक्ल लेश्या वहाँ स्व-स्वरूप में रहती हुई अपकर्ष हीनभाव को प्राप्त होती है। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि यावत् शुक्ल लेश्या पद्म लेश्या को प्राप्त होकर उसके स्वरूप में परिणत नहीं होती।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण आदि लेश्या के परिणाम भाव का दूसरी लेश्या में परिणत होने का निषेध किया गया है।

शंका - चतुर्थ उद्देशक में तो कृष्ण आदि लेश्याओं का नील आदि लेश्याओं के स्वरूप तथा उनके वर्ण, गंध, रस स्पर्श रूप में परिणत होने का कहा है जबकि यहाँ उसका निषेध किया गया है। ऐसा पूर्वापर विरोधी कथन क्यों कहा गया है?

समाधान - चतुर्थ उद्देशक में परिणमन का जो विधान किया गया है वह तिर्यंचों और मनुष्यों की अपेक्षा से है जबकि इस पांचवें उद्देशक में परिणमन का जो निषेध किया गया है वह देवों और नैरयिकों की अपेक्षा से है। इस प्रकार दोनों कथन विभिन्न अपेक्षाओं से होने के कारण पूर्वापर विरोधी नहीं है। देव और नैरयिक अपने पूर्व भव के अंतिम अन्तर्मुहूर्त्त से लेकर आगामी भव के प्रथम अंतर्मुहूर्त्त तक उसी लेश्या में अवस्थित होते हैं अर्थात् जो लेश्या पूर्वभव के अंतिम अन्तर्मुहूर्त्त में थी वही लेश्या वर्तमान देवभव या नैरयिक भव में भी कायम रहती है और आगामी भव के प्रथम अंतर्मुहूर्त्त में भी रहती है। इस कारण देवों और नैरयिकों के कृष्ण लेश्या आदि के द्रव्यों का परस्पर संपर्क होने पर भी वे एक दूसरे को अपने स्वरूप में परिणत नहीं करते। उनमें लेश्या का परिणमन आकार भाव मात्र से ही अथवा प्रतिबिम्ब मात्र से ही होता है। जैसे दर्पण आदि पर प्रतिबिम्ब पड़ने पर दर्पण आदि उस वस्तु जैसे प्रतीत होने लगते हैं। दर्पण अपने आप में दर्पण ही रहता है, उसमें प्रतिबिम्बित होने वाली वस्तु नहीं बन जाता। इसी प्रकार कृष्ण लेश्या के साथ नील लेश्या के द्रव्यों का संपर्क होने पर कृष्ण लेश्या पर नील लेश्या के द्रव्यों का प्रतिबिम्ब पड़ता है तो वह नील लेश्या सी प्रतीत होती है किन्तु वास्तव में वह नील लेश्या में परिणत नहीं होती, वह कृष्ण लेश्या ही बनी रहती है। क्योंकि उसने अपने स्वरूप का त्याग नहीं किया है। कृष्ण लेश्या से नील लेश्या विशुद्ध होने के कारण कृष्ण लेश्या अपने स्वरूप में स्थित रहती हुई नील लेश्या के आकार भाव मात्र या प्रतिबिम्ब मात्र को धारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करती हुई किंचित् विशुद्ध हो जाती है इसीलिए कहा गया है कि उस रूप में रहती हुई कृष्ण लेश्या उत्कर्ष को प्राप्त होती है किन्तु शुक्ल लेश्या से पद्म लेश्या हीन परिणाम वाली होने से पद्म लेश्या की निकटता से उसके आकार भाव या प्रतिबिम्ब मात्र को धारण करके कुछ अविशुद्ध हो जाती है यानी अपकर्ष को प्राप्त हो जाती है।

नैरयिक एवं देवों में द्रव्य लेश्या अवस्थित होती है। भाव लेश्या कभी थोड़ी देर (अन्तर्मुहूर्त्त) के लिए बदल सकती है फिर वापिस द्रव्य लेश्या जैसी भाव लेश्या बन जाती है। जैसे तेज वर्षा होने पर वर्षा का पानी एवं पडनाल का पानी दोनों बराबर चालू रहते हैं परन्तु अचानक वर्षा बन्द हो जाने पर भी परनाल तो कुछ समय तक बहना चालू ही रहता है। वर्षा थोड़ी देर बाद पुनः चालू हो जाने पर भी परनाल की वही स्थिति बनी रहती है। इसी प्रकार वर्षा होने के समान यहाँ पर भाव लेश्या समझना चाहिए तथा परनाल पड़ने की तरह द्रव्य लेश्या समझना चाहिए।

जैसे नाली में काला पानी बहता है उसमें दूसरा साफ पानी भी मिलकर वैसा ही काला बन जाता है। वैसे ही नाली के पानी के समान द्रव्य लेश्या एवं साफ पानी के समान भाव लेश्या समझना चाहिए।

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तरसमे लेस्सापए पंचमो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ सत्तरहवें लेश्यापद का पंचम उद्देशक समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेस्सापए छट्ठो उद्देसओ

लेश्या पद का छठा उद्देशक

लेश्या भेद

कइ णं भंते! लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लेश्याएँ कितनी कही गयी हैं?

उत्तर - हे गौतम! लेश्याएँ छह कही गई हैं - कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

मनुष्यों में लेश्याएं

मणुस्साणं भंते! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हलेस्सा जाव सुक्कलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों में छह लेश्याएं होती हैं, वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

मणुस्सीणं भंते! पुच्छा?

गोयमा! छल्लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हा जाव सुक्का।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यस्त्रियों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यस्त्रियों में छह लेश्याएं होती हैं - कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

कम्मभूमय मणुस्साणं भंते! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छ लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हा जाव सुक्का।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्मभूमिक मनुष्यों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! कर्मभूमिक मनुष्यों में छह लेश्याएँ होती हैं। वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

एवं कम्मभूमय मणुस्सीण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार कर्मभूमिक मनुष्यस्त्रियों की भी लेश्याविषयक प्ररूपणा करनी चाहिए।

भरहेरवय मणुस्साणं भंते! कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! छल्लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा-कण्हा जाव सुक्का।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र के मनुष्यों में कितनी लेश्याएं पाई जाती हैं?

उत्तर - हे गौतम! भरत क्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र के मनुष्यों में छह ही लेश्याएँ होती हैं। यथा - कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

एवं मणुस्सीण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार इन क्षेत्रों की मनुष्यस्त्रियों में भी छह लेश्याओं की प्ररूपणा करनी चाहिए।

पुव्वविदेह अवरविदेहे कम्म भूमय मणुस्साणं कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! छल्लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हा जाव सुक्का।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पूर्वविदेह और अपरविदेह के कर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी लेश्याएं होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! पूर्वविदेह और अपरविदेह के कर्मभूमिज मनुष्यों में छह लेश्याएँ कही गई हैं- कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

एवं मणुस्सीण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार इन दोनों क्षेत्रों की मनुष्यस्त्रियों में भी छह लेश्याएं समझनी चाहिए।

अकम्म भूमय मणुस्साणं पुच्छा?

गोयमा! चत्तारि लेस्साओ पण्णत्ताओ। तंजहा - कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अकर्मभूमिज मनुष्यों में कितनी लेश्याएं कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! अकर्मभूमिज मनुष्यों में चार लेश्याएँ कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या यावत् तेजो लेश्या।

एवं अकम्मभूमय मणुस्सीण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार अकर्मभूमिज मनुष्यस्त्रियों में भी चार लेश्याएँ कहनी चाहिए।

एवं अंतरदीवग मणुस्साणं, मणुस्सीण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार अन्तरद्वीपज मनुष्यों में और मनुष्यस्त्रियों में भी चार लेश्याएँ समझनी चाहिए।

हेमवय एरण्णवय अकम्मभूमय मणुस्साणं मणुस्सीण य कइ लेस्साओ पण्णत्ताओ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! चत्तारि, तंजहा-कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! हेमवत और ऐरण्यवत अकर्मभूमिज मनुष्यों और मनुष्यस्त्रियों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! इन दोनों क्षेत्रों के अकर्मभूमिज मनुष्यों और मनुष्य स्त्रियों में चार लेश्याएँ होती हैं। वे इस प्रकार हैं - कृष्णलेश्या यावत् तेजोलेश्या।

हरिवास रम्मय अकम्मभूमय मणुस्साणं मणुस्सीण य पुच्छा?

गोयमा! चत्तारि, तंजहा - कण्हलेस्सा जाव तेउलेस्सा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! हरिवर्ष और रम्यकवर्ष के अकर्मभूमिज मनुष्यों और मनुष्यस्त्रियों में कितनी लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! इन दोनों क्षेत्रों के अकर्मभूमिज पुरुषों और स्त्रियों में चार लेश्याएं होती हैं। वे इस प्रकार हैं - कृष्ण लेश्या यावत् तेजोलेश्या।

देवकुरु उत्तरकुरु अकम्मभूमय मणुस्सा एवं चेव।

भावार्थ - देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के अकर्मभूमिज मनुष्यों में भी इसी प्रकार चार लेश्याएं जाननी चाहिए।

एएसिं चेव मणुस्सीणं एवं चेव।

भावार्थ - इन पूर्वोक्त दोनों क्षेत्रों की मनुष्यस्त्रियों में भी इसी प्रकार चार लेश्याएँ समझनी चाहिए।

धायइसंड पुरिमद्धे वि एवं चेव, पच्छिमद्धे वि, एवं पुक्खरद्धे वि भाणियव्वं ॥५३०॥

भावार्थ - धातकीखण्ड के पूर्वार्द्ध में तथा पश्चिमार्द्ध में भी मनुष्यों और मनुष्यस्त्रियों में इसी प्रकार चार लेश्याएँ कहनी चाहिए। इसी प्रकार पुष्करार्द्ध द्वीप में भी कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज मनुष्यों और उनकी स्त्रियों में कितनी लेश्याएं पाई जाती है, इसका कथन किया गया है कर्मभूमिज मनुष्यों और स्त्रियों में छह लेश्याएं तथा अकर्मभूमिज मनुष्यों और स्त्रियों में पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या को छोड़ कर शेष चार लेश्याएं पाई जाती हैं।

लेश्या की अपेक्षा गर्भोत्पत्ति

कण्हलेस्से णं भंते! मणुस्से कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हंता गोयमा! जणेज्जा।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वाला मनुष्य कृष्ण लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! कृष्ण लेश्या वाले मनुष्य कृष्ण लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है।

कण्हलेस्से णं भंते! मणुस्से णीललेस्सं गब्भं जणेज्जा?

हंता गोयमा! जणेज्जा जाव सुक्कलेसं गब्भं जणेज्जा। णीललेस्से० मणुस्से कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा?

हंता गोयमा! जणेज्जा, एवं णीललेस्से मणुस्से जाव सुक्कलेस्सं गब्भं जणेज्जा, एवं काउलेस्सेणं छप्पि आलावगा भाणियव्वा। तेउलेस्साण वि पम्हलेस्साण वि सुक्कलेस्साण वि, एवं छत्तीसं आलावगा भाणियव्वा।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वाला मनुष्य नील लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! कृष्ण लेश्या वाला मनुष्य नील लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार कृष्ण लेश्या वाले पुरुष से कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या वाले गर्भ की उत्पत्ति के विषय में भी आलापक कहने चाहिए।

इसी प्रकार कृष्णलेश्या वाले पुरुष की तरह नील लेश्या वाले, कापोत लेश्या वाले, तेजो लेश्या वाले, पद्म लेश्या वाले और शुक्ल लेश्या वाले प्रत्येक मनुष्य से इस प्रकार पूर्वोक्त छहों लेश्या वाले गर्भ की उत्पत्ति सम्बन्धी छह-छह आलापक होने से सब छत्तीस आलापक हुए।

कण्हलेस्सा णं भंते! इत्थिया कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा?

हंता गोयमा! जणेज्जा। एवं एए वि छत्तीसं आलावगा भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या कृष्ण लेश्या वाली स्त्री कृष्ण लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करती हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! उत्पन्न करती है। इसी प्रकार पूर्ववत् ये भी छत्तीस आलापक कहने चाहिए।

कण्हलेस्से णं भंते! मणुस्से कण्हलेस्साए इत्थियाए कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा?

हंता गोयमा! जणेज्जा, एवं एए छत्तीसं आलावगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कृष्ण लेश्या वाला मनुष्य क्या कृष्ण लेश्या वाली स्त्री से कृष्ण लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! वह उत्पन्न करता है। इस प्रकार पूर्ववत् ये भी छत्तीस आलापक हुए।

कम्मभूमय कण्हलेस्से णं भंते! मणुस्से कण्हलेस्साए इत्थियाए कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हंता गोयमा! जणेज्जा, एवं एए छत्तीसं आलावगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कर्मभूमिक कृष्ण लेश्या वाला मनुष्य कृष्ण लेश्या वाली स्त्री से कृष्ण लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! वह उत्पन्न करता है। इस प्रकार पूर्वोक्तानुसार ये भी छत्तीस आलापक हुए।

अकम्मभूमय कण्हले से णं भंते! मणुस्से अकम्मभूमय कण्हलेस्साए इत्थियाए अकम्मभूमय कण्हलेस्सं गब्भं जणेज्जा?

हंता गोयमा! जणेज्जा, णवरं चउसु लेस्सासु सोलस आलावगा, एवं अंतरदीवगाण वि॥ ५३१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अकर्मभूमिक कृष्ण लेश्या वाला मनुष्य अकर्मभूमिक कृष्ण लेश्या वाली स्त्री से अकर्मभूमिक कृष्ण लेश्या वाले गर्भ को उत्पन्न करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! वह उत्पन्न करता है। विशेषता यह है कि इनमें पाई जाने वाली चार लेश्याओं से सम्बन्धित कुल १६ आलापक होते हैं। इसी प्रकार अन्तर द्वीपज कृष्णलेश्यादि वाले मनुष्य से भी अन्तर द्वीपज कृष्णलेश्यादि वाली स्त्री से अन्तर द्वीपज कृष्णलेश्यादि वाले गर्भ की उत्पत्ति सम्बन्धी सोलह आलापक होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में लेश्या को लेकर गर्भोत्पत्ति संबंधी प्ररूपणा की गयी है। कृष्ण लेश्या वाला मनुष्य अपनी लेश्या वाले गर्भ के अलावा अन्य पांचों लेश्याओं वाले गर्भ को उत्पन्न करता है। इस अपेक्षा से कृष्ण लेश्या से छह लेश्यात्मक गर्भ के उत्पन्न होने संबंधी छह आलापक हुए। इसी प्रकार कृष्ण आदि छहों लेश्याओं वाली स्त्रियों से प्रत्येक लेश्या वाले गर्भ की उत्पत्ति संबंधी ३६ आलापक होते हैं। कृष्ण आदि लेश्या वाले पुरुष द्वारा, कृष्ण आदि लेश्या वाली स्त्री से कृष्ण आदि लेश्या वाले गर्भ की उत्पत्ति संबंधी भी ३६ आलापक होते हैं। चार लेश्याएं होने के कारण अकर्मभूमिक, अंतरद्वीपज कृष्ण आदि लेश्या वाले पुरुष द्वारा अकर्मभूमिज अंतरद्वीपज कृष्ण आदि लेश्या वाली स्त्री से इसी प्रकार की लेश्या वाले गर्भ की उत्पत्ति संबंधी १६-१६ आलापक होते हैं।

॥ छट्ठो उद्देसओ समत्तो॥

॥ छठा उद्देशक समाप्त॥

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तरसमं लेस्सापयं समत्तं॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का सत्तरहवाँ लेश्यापद सम्पूर्ण॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठारसमं कायट्ठिइपयं

अठारहवाँ कायस्थिति पद

सतरहवें लेश्या पद में लेश्या परिणाम का कथन किया गया है। परिणाम की समानता से इस अठारहवें पद में कायस्थिति परिणाम का कथन किया जाता है। जिसमें विषय प्रतिपादक दो संगृहणी गाथाएं इस प्रकार हैं -

कायस्थिति पद के २२ द्वार

जीव गइंदिय काए जोए वेए कसाय लेस्सा य।

सम्मत्त णाण दंसण संजय उवओग आहारे॥ १॥

भासग परित्त पज्जत्त सुहुम सण्णी भवऽत्थि चरिमे य।

एएसिं तु पयाणं कायठिई होइ णायव्वा॥ २॥

भावार्थ - १. जीव २. गति ३. इन्द्रिय ४. काय ५. योग ६. वेद ७. कषाय ८. लेश्या ९. सम्यक्त्व १०. ज्ञान ११. दर्शन १२. संयत १३. उपयोग १४. आहार १५. भाषक १६. परित्त १७. पर्याप्त १८. सूक्ष्म १९. संज्ञी २०. भव (सिद्धिक) २१. अस्ति (काय) और २२. चरम, इन पदों की कायस्थिति जाननी चाहिए।

विवेचन - यहाँ काय का अर्थ है पर्याय। पर्याय सामान्य विशेष के भेद से दो प्रकार की है। जीव की जीवत्व रूप पर्याय सामान्य है और नरक तिर्यंच आदि रूप पर्याय विशेष पर्याय है। सामान्य अथवा विशेष पर्याय की अपेक्षा जीव का निरन्तर होना कायस्थिति है। काय स्थिति और भव स्थिति में अंतर इस प्रकार है -

प्रश्न - काय स्थिति किसे कहते हैं?

उत्तर - किसी एक ही काय (निकाय) में मर कर पुनः उसी में जन्म ग्रहण करने की स्थिति को काय स्थिति कहते हैं। जैसे पृथ्वीकाय आदि के जीवों का पृथ्वीकाय आदि से चव कर पुनः पृथ्वीकाय आदि में ही उत्पन्न होना।

प्रश्न - भव स्थिति किसे कहते हैं?

उत्तर - जिस भव में जीव उत्पन्न होता है उसके उसी भव की स्थिति को भव स्थिति कहते हैं।

मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच लगातार सात आठ जन्मों तक मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंच हो सकते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं इसलिए उनके काय स्थिति और भव स्थिति दोनों होती है। देव और नैरयिक मृत्यु के बाद देव और नैरयिक नहीं बनते अतः उनकी भवस्थिति होती है, कायस्थिति नहीं होती।

१. जीव द्वार

जीवे णं भंते! जीवे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सव्वद्धं॥ दारं १॥५३२॥

कठिन शब्दार्थ - सव्वद्धं - सर्वदा-सर्वकाल।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव कितने काल तक जीव (जीवपर्याय में) रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव सदा काल जीव ही रहता है। ॥ प्रथम द्वार॥ १॥

विवेचन - जो चेतना युक्त हो तथा द्रव्य प्राण और भाव प्राण वाला हो, उसे 'जीव' कहते हैं। द्रव्य प्राण दस हैं। वे इस प्रकार हैं -

पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वास निःश्वास मथान्यदायुः।

प्राणाः दशैते भगवद्भिरुक्ताः, तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा॥

१. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण २. रसनेन्द्रिय बल प्राण ३. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण ४. चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण ५. श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण ६. काय बल प्राण ७. वचन बल प्राण ८. मन बल प्राण ९. श्वासोच्छ्वास बल प्राण १०. आयुष्य बल प्राण।

भाव प्राण चार हैं - अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तराय (अनन्त शक्ति-अनन्त आत्म सामर्थ्य) और अव्याबाध सुख। सिद्ध भगवंतों में ये चार भाव प्राण होते हैं। संसारी जीव द्रव्य प्राणों के सद्भाव में सदैव जीवित रहते हैं जबकि सिद्ध जीव द्रव्य प्राणों से रहित होने पर भी अनन्त ज्ञानादि रूप भाव प्राणों के सद्भाव से सदैव जीवित रहते हैं अतएव जीव में जीवन पर्याय सर्वकाल भावी है।

आगम में सिद्धों के भाव प्राणों का कहीं पर भी उल्लेख नहीं हुआ है, प्राचीन ग्रन्थों में सिद्धों के चार भाव प्राणों का वर्णन मिलता है। अपेक्षा विशेष से इस प्रकार से कहना अनुचित नहीं लगता है।

आगम में "अनन्त सुख" के स्थान पर "अव्याबाध सुख" इन शब्दों का ही अनेकों स्थलों पर प्रयोग हुआ है। 'अनन्त शक्ति' या 'अनन्त आत्म सामर्थ्य' के स्थान पर 'अनन्तराय, क्षीणान्तराय, निरन्तराय' इन शब्दों का प्रयोग हुआ है। अतः ग्रन्थोक्त चार भाव प्राणों का नाम बताते हुए इन दो आगमोक्त नामों को बोलना उचित रहता है।

२. गति द्वार

णेरइए णं भंते! णेरइए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक नारकत्व रूप (नारकपर्याय) में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जघन्य दस हजार वर्ष तक, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम तक नैरयिक पर्याय से युक्त रहता है।

विवेचन - नैरयिक की भव स्थिति, जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम ही होती है एवं वही उसकी कायस्थिति है क्योंकि नैरयिक भव का स्वभाव ही ऐसा है कि नरक से निकला हुआ जीव अगले भव में पुनः नरक में उत्पन्न नहीं होता है।

तिरिक्खजोणिए णं भंते! तिरिक्खजोणिए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा असंखिज्जा पोग्गल परियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखिज्जइभागो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक कितने काल तक तिर्यंच योनिक रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक तिर्यंच रूप में रहता है। काल से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तक, क्षेत्र से अनन्त लोक, असंख्यात पुद्गलपरावर्त्तनों तक तिर्यंच तिर्यंच ही बना रहता है। वे पुद्गल परावर्त्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग जितने समझने चाहिए।

विवेचन - जब कोई देव, मनुष्य या नैरयिक तिर्यंच रूप में उत्पन्न होता है और वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त रह कर फिर देव, मनुष्य या नैरयिक भव में जन्म ले लेता है उस अवस्था में जघन्य कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त की होती है तथा जो तिर्यंच, तिर्यंच भव को त्याग कर लगातार तिर्यंच भव में ही उत्पन्न होते रहते हैं, बीच में किसी अन्य भव में उत्पन्न नहीं होते, वे अनन्तकाल तक तिर्यंच ही बने रहते हैं। उस अनन्तकाल की प्ररूपणा काल और क्षेत्र से यों दो प्रकार से कही गयी है - काल से अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी तथा क्षेत्र की अपेक्षा अनन्त लोक की अर्थात् प्रति समय एक-एक आकाश प्रदेश निकालते हुए जितने काल में लोक प्रमाण अनन्त आकाश खंड खाली हों उतने काल की यानी अनन्त लोकाकाश प्रमाण आकाश खंडों के प्रदेश प्रमाण समयों की। काल की अपेक्षा असंख्यात पुद्गल परावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण अर्थात् आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय होते हैं उतने पुद्गल परावर्तन की तिर्यंच की कायस्थिति है। तिर्यंच की यह कायस्थिति वनस्पति की अपेक्षा समझनी चाहिए।

यहाँ पर तिर्यंच की कायस्थिति असंख्यात पुद्गल परावर्तनों की बताई गयी है। इसमें क्षेत्र पुद्गल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परावर्तन वाले असंख्य पुद्गल परावर्तन समझने चाहिए। आगे भी जिन बोलों की कायस्थिति देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन एवं आधा तथा अढाई पुद्गल परावर्तन आदि बताई गयी है। वहाँ सर्वत्र क्षेत्र पुद्गल परावर्तन से ही उसका माप समझना चाहिए।

क्षेत्र पुद्गल परावर्तन का वर्णन आगम में नहीं आया है किन्तु पांचवें कर्म ग्रन्थ में आया है। टीकाकार भी उसी के अनुसार यहाँ पर मानते हैं।

तिरिक्खजोणिणी णं भंते! तिरिक्खजोणिणी त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडि पुहुत्तमब्भहियाइं।

कठिन शब्दार्थ - पुव्वकोडि पुहुत्तमब्भहियाइं - पृथक्त्व कोटि (करोड़) पूर्व अधिक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचनी कितने काल तक तिर्यंचनी रूप में रहती है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंचनी जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पृथक्त्वकोटि पूर्व अधिक तीन पल्योपम तक तिर्यंचनी रहती है।

एवं मणुस्से वि।

भावार्थ - मनुष्य की कायस्थिति के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

मणुस्सी वि एवं चेव।

भावार्थ - इसी प्रकार मानुषी स्त्री की कायस्थिति के विषय में भी समझना चाहिए।

विवेचन -तिर्यंच स्त्री की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की कही है। संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों की कायस्थिति उत्कृष्ट आठ भवों की है। क्योंकि **'नर तिरियाण सतट्ठ भवा'** मनुष्य और तिर्यंचों की सात आठ भव की कायस्थिति है - ऐसा शास्त्र वचन है। यहाँ उत्कृष्ट काय-स्थिति का विचार होने से आठ भव यथासंभव उत्कृष्ट स्थिति वाले ग्रहण करना चाहिए। असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले जीव (युगलिक) मर कर देवलोक में उत्पन्न होते हैं किन्तु तिर्यंच में उत्पन्न नहीं होते अतः पूर्व कोटि के आयुष्य वाले सात भव और अंतिम आठवां भव देवकुरु आदि का। इस प्रकार पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम होते हैं।

जिस प्रकार तिर्यंच स्त्री के विषय में कहा गया है उसी प्रकार मनुष्य और मानुषी स्त्री के विषय में भी समझ लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मनुष्य सूत्र में और मानुषी सूत्र में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की काय स्थिति कहनी चाहिए।

देवे णं भंते! देवेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहेव णेरइए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देव कितने काल तक देव बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसा नैरयिक के विषय में कहा, वैसा ही देव की कायस्थिति के विषय में भी कहना चाहिए।

विवेचन - देवों की कायस्थिति जघन्य १० हजार वर्ष उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की है क्योंकि देव अपने भव से च्यव कर पुनः तत्काल देव रूप में उत्पन्न नहीं होते। जैसा कि कहा है - **'न देवो देवेसु उववज्जइ'** - देव, देव में उत्पन्न नहीं होते, ऐसा शास्त्र वचन है। इसलिए देवों की जो भवस्थिति होती है वही कायस्थिति होती है।

देवी णं भंते! देवी त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देवी, देवी के पर्याय में कितने काल तक रहती है?

उत्तर - हे गौतम! देवी जघन्य दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम तक देवी रूप में रहती है।

विवेचन - देवियों की उत्कृष्ट कायस्थिति ५५ पल्योपम की कही गयी है क्योंकि देवियों की उत्कृष्ट भवस्थिति इतनी ही है। यह कथन ईशान देवलोक की देवी की अपेक्षा समझना, इसके अलावा दूसरी देवी की स्थिति इतनी नहीं होती है।

सिद्धे णं भंते! सिद्धे त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सिद्ध जीव कितने काल तक सिद्ध पर्याय से युक्त रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध जीव सादि अपर्यवसित (अनन्त) होता है। अर्थात्-सिद्ध पर्याय सादि है, किन्तु अन्त रहित है।

विवेचन - सिद्ध की कायस्थिति सादि अनन्त है क्योंकि सिद्धत्व पर्याय का क्षय नहीं होता। जन्म मरण का कारण रागादि है जो सिद्ध भगवान् में नहीं होते क्योंकि रागादि के निमित्तभूत कर्म परमाणुओं का वे सर्वथा क्षय कर चुके हैं, अतः सिद्ध पर्याय की आदि है किन्तु अन्त नहीं।

णेरइय अपज्जत्तए णं भंते! णेरइय अपज्जत्तए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं, एवं जाव देवी अपज्जत्तिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक नैरयिक जीव अपर्याप्तक नैरयिक पर्याय में कितने काल तक रहता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक नैरयिक जीव अपर्याप्तक नैरयिक पर्याय में जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त तक रहता है।

इसी प्रकार तिर्यंचयोनिक-तिर्यंचनी, मनुष्य-मनुष्यणी, देव और देवी की अपर्याप्तक अवस्था अन्तर्मुहूर्त्त तक ही रहती है।

विवेचन - चारों गति के अपर्याप्तक जीवों की जघन्य उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है।

णेरइयपज्जत्तए णं भंते! णेरइयपज्जत्तए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहूत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहूत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक नैरयिक कितने काल तक पर्याप्तक नैरयिक पर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक नैरयिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम तक पर्याप्तक नैरयिक रूप में बना रहता है।

विवेचन - पर्याप्तक नैरयिक की काय स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही है क्योंकि प्रथम का अंतर्मुहूर्त्त अपर्याप्त अवस्था में व्यतीत होने के कारण अंतर्मुहूर्त्त न्यून कहा गया है।

तिरिक्खजोणिय पज्जत्तए णं भंते! तिरिक्खजोणिय पज्जत्तए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहूत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक तिर्यंचयोनिक कितने काल तक पर्याप्तक तिर्यंच रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक तिर्यंच योनिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम तक पर्याप्तक तिर्यंच रूप में रहता है।

विवेचन - पर्याप्तक तिर्यंच योनिक की उत्कृष्ट कायस्थिति उत्कृष्ट आयुष्य वाले देव कुरु आदि क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तिर्यंचों की अपेक्षा समझनी चाहिए।

एवं तिरिक्खजोणिणिपज्जत्तिया वि।

भावार्थ - इसी प्रकार पर्याप्तक तिर्यंचनी की कायस्थिति के विषय में भी समझना चाहिए।

एवं मणुस्से वि मणुस्सी वि एवं चेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - पर्याप्तक मनुष्य और मनुष्यणी की कायस्थिति के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

देवपज्जत्तए जहा णेरइयपज्जत्तए।

भावार्थ - पर्याप्तक देव की कायस्थिति के विषय में पर्याप्तक नैरयिक की कायस्थिति के समान समझना चाहिए।

देवीपज्जत्तिया णं भंते! देवीपज्जत्तिय त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहूत्तूणाइं॥ दारं २॥ ५३३॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक देवी, पर्याप्तक देवी के रूप में कितने काल तक रहती है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक देवी जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम तक पर्याप्तक देवी-पर्याय में रहती है। ॥ द्वितीय द्वार॥ २॥

विवेचन - यहाँ पर गति द्वार में जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक की कायस्थिति बतलाई गयी है वहाँ पर एक भव की अपेक्षा ये ही कायस्थिति होने से उसे 'करण पर्याप्त और करण अपर्याप्तक' की अपेक्षा समझना चाहिए। आहार, शरीर और इन्द्रिय इन तीन पर्याप्तियों के पूर्ण होने के पूर्व तक सभी जीव 'करण अपर्याप्तक' कहलाते हैं। इसके बाद इन्द्रिय पर्याप्ति के पूर्ण होने पर वे जीव 'करण पर्याप्तक' कहलाते हैं।

३. इंद्रिय द्वार

सइंदिए णं भंते! सइंदिएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सेन्द्रिय (इन्द्रिय सहित) जीव सेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सेन्द्रिय जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - १. अनादि-अनन्त और २. अनादि-सान्त।

विवेचन - जो जीव इन्द्रिय सहित होते हैं वे सेन्द्रिय कहलाते हैं। इन्द्रिय दो प्रकार की कही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गई हैं - द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। भावेन्द्रिय भी दो प्रकार के कही गई हैं - १. लब्धि इन्द्रिय और २. उपयोग इन्द्रिय। यहाँ लब्धि रूप भावेन्द्रिय समझना क्योंकि वह विग्रह गति में भी होती है और इन्द्रिय पर्याप्तक में भी होती है तभी उपरोक्त उत्तर घटित हो सकता है। जो संसारी हैं वे अवश्य सेन्द्रिय होते हैं और संसार अनादि है इसलिए सेन्द्रिय अनादि है। उनमें भी जो कभी सिद्ध नहीं होंगे वे अभव्य जीव अनादि अनन्त होते हैं क्योंकि उनके सेन्द्रियपने का कभी अभाव नहीं होता। जो सिद्ध होंगे ऐसे भव्य जीवों की अपेक्षा अनादि सान्त कहा है क्योंकि मुक्ति अवस्था में सेन्द्रियपने पर्याय का अभाव होता है।

एगिंदिए णं भंते! एगिंदिए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइ कालो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल-वनस्पतिकाल पर्यन्त एकेन्द्रिय रूप में रहता है।

विवेचन - उत्कृष्ट वनस्पतिकाल जितना अनंत काल कहा है। वनस्पतिकाल इस प्रकार समझना-काल से अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी, क्षेत्र से अनंत लोक अथवा असंख्यात पुद्गल परावर्तन काल जानना और वे असंख्यात पुद्गल परावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं।

बेइंदिए णं भंते! बेइंदिए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्ज कालं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव बेइन्द्रिय रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक बेइन्द्रिय रूप में रहता है।

एवं तेइंदियचउरिंदिए वि।

भावार्थ - इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय की तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय रूप में अवस्थिति के विषय में समझना चाहिए।

विवेचन - तीन विकलेन्द्रियों की उत्कृष्ट काय-स्थिति संख्यात काल की कही गयी है। संख्यात काल अर्थात् संख्यात हजार वर्ष समझना क्योंकि '**विगलिंदियाण य वाससहस्सा संखिज्जा**' विकलेन्द्रियों के संख्यात हजार वर्ष होते हैं-ऐसा शास्त्र वचन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदिए णं भंते! पंचिंदिए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट सहस्त्र (हजार) सागरोपम से कुछ अधिक काल तक पंचेन्द्रिय रूप में रहता है।

विवेचन - पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट कायस्थिति कुछ अधिक हजार सागरोपम प्रमाण कही गयी है जो नारक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देव भव में भ्रमण करने की अपेक्षा समझना चाहिए क्योंकि इससे अधिक काल नहीं होता है।

अणिंदिए णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव कितने काल तक अनिन्द्रिय बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अनिन्द्रिय सादि-अनन्त काल तक अनिन्द्रिय रूप में रहता है।

विवेचन - जो जीव द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय से रहित होते हैं वे अनिन्द्रिय कहलाते हैं। ऐसे जीव सिद्ध ही हैं। सिद्ध सादि अनन्त काल पर्यंत है अतः अनिन्द्रिय की कायस्थिति सादि अनन्त काल की कही है।

यद्यपि तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान वाली केवलज्ञानी आत्माएं भी अनिन्द्रिय ही होती है। किन्तु उनकी स्थिति मनुष्य भव की अपेक्षा क्रमशः देशोन करोड़ पूर्व और अन्तर्मुहूर्त्त जितनी ही होने से उनकी यहाँ पर विवक्षा नहीं की गयी है अथवा उनका अनिन्द्रियपना और सिद्धों का अनिन्द्रियपना दोनों को सम्मिलित करके यहाँ पर कायस्थिति समझनी चाहिए।

सइंदिय अपज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सेन्द्रिय-अपर्याप्तक कितने काल तक सेन्द्रिय-अपर्याप्तक रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सेन्द्रिय-अपर्याप्तक जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त तक सेन्द्रिय अपर्याप्तक रूप में रहता है।

विवेचन - यहाँ लब्धि की अपेक्षा से पर्याप्तक और अपर्याप्तक समझना चाहिए क्योंकि लब्धि अपर्याप्तक की भी जघन्य उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त ही होती है।

अपने-अपने योग्य पर्याप्तियों को उस भव में अवश्य ही पूर्ण करने वाले जीव 'लब्धि पर्याप्तक'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहलाते हैं। चाहे वे जीव वर्तमान में अपर्याप्तक ही क्यों न हो? स्व योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करेंगे अर्थात् पूर्ण किये बिना ही काल करने वाले वे जीव 'लब्धि अपर्याप्तक' कहलाते हैं।

एवं जाव पंचिंदियअपज्जत्तए।

भावार्थ - इसी प्रकार एकेन्द्रिय-अपर्याप्तक से लेकर यावत् पंचेन्द्रिय-अपर्याप्तक तक अपर्याप्त रूप में अवस्थिति (रहने) के विषय में समझना चाहिए।

सइंदियपज्जत्तए णं भंते! सइंदियपज्जत्तए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! सेन्द्रिय-पर्याप्तक, सेन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सेन्द्रिय-पर्याप्तक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट शतपृथक्त्व सागरोपम से कुछ अधिक काल तक सेन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में बना रहता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सेन्द्रिय पर्याप्तक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट कुछ अधिक शत पृथक्त्व सागरोपम की कही गयी है। यहाँ लब्धि की अपेक्षा पर्याप्तक समझना चाहिए और वह पर्याप्तपना विग्रह गति में भी करण अपर्याप्तक को भी संभव है तभी उत्कृष्ट कायस्थिति घटित हो सकती है अन्यथा करण पर्याप्तक का उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त्त न्यून ३३ सागरोपम प्रमाण होने से पूर्वोक्त उत्तर घटित नहीं हो सकता।

एगिंदियपज्जत्तए णं भंते! पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय-पर्याप्तक कितने काल तक एकेन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय पर्याप्तक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक एकेन्द्रिय पर्याप्तक रूप में बना रहता है।

विवेचन - एकेन्द्रिय पर्याप्तक उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष तक एकेन्द्रिय पर्याप्तक रूप से बना रहता है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट भव स्थिति २२ हजार वर्ष की, अप्कायिक की ७ हजार वर्ष की, तेजस्कायिक की तीन अहोरात्रि, वायुकायिक की ३ हजार वर्ष की और वनस्पतिकायिक की १० हजार वर्ष की कही गयी है। इनके कितनेक निरन्तर पर्याप्तक भव मिल कर भी संख्यात हजार वर्ष ही होते हैं। अतः एकेन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजार वर्षों की कही गयी है।

पृथ्वीकाय आदि पर्याप्तकों के उत्कृष्ट स्थिति के तो लगातार आठ भव ही होते हैं। जघन्य एवं मध्यम स्थिति के अनेकों भव हो सकते हैं किन्तु उन सब भवों की स्थिति भी उत्कृष्ट स्थिति के आठ भवों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के बराबर ही हो सकती है। इस तरह पांचों स्थावरों के पर्याप्तकों के लगातार होने वाले अनेकों भवों को मिलाकर भी एकेन्द्रिय पर्याप्तक की उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात हजारों वर्षों की ही होती है।

बेइंदियपज्जत्तए णं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वासाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय-पर्याप्तक, बेइन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय-पर्याप्तक, बेइन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट संख्यात वर्षों तक रहता है।

विवेचन - बेइन्द्रिय पर्याप्तक के भी उत्कृष्ट स्थिति के लगातार आठ भव ही होते हैं। जघन्य मध्यम स्थिति के पर्याप्तक भव अनेकों हो सकते हैं। किन्तु वे भी आठ भवों की उत्कृष्ट स्थिति के बराबर होने की ही संभावना है।

तेइंदियपज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं , उक्कोसेणं संखिज्जाइं राइंदियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेइन्द्रिय-पर्याप्तक, तेइन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में कितने काल तक बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! तेइन्द्रिय-पर्याप्तक, तेइन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट संख्यात रात्रि-दिन (अहोरात्र) तक रहता है।

विवेचन - तेइन्द्रिय की उत्कृष्ट भवस्थिति ४९ दिन होने से कितनेक निरंतर पर्याप्तक भवों के मिलाने से भी संख्यात दिवस ही होते हैं इसलिए तेइन्द्रिय की उत्कृष्ट कायस्थिति संख्यात रात्रि दिन की ही कही गयी है।

चउरिंदियपज्जत्तए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जा मासा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय-पर्याप्तक, चउरिन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! चउरिन्द्रिय-पर्याप्तक, चउरिन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट संख्यात मास तक रहता है।

विवेचन - चउरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट भवस्थिति छह मास होने से कितनेक निरंतर पर्याप्तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवों को मिलाने से भी संख्यात महीने ही होते हैं इसीलिए चउरिन्द्रिय की उत्कृष्ट काय स्थिति संख्यात मास कही गई है।

पंचिंदिय पज्जत्तए णं भंते! पंचिंदिय पज्जत्तएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवम सयपुहुत्तं॥ दारं ३॥ ५३४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय-पर्याप्तक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट सौ पृथक्त्व (नौ सौ) सागरोपमों तक पंचेन्द्रियपर्याप्तक पर्याय में रहता है। ॥ तृतीयद्वार॥ ३॥

४. काय द्वार

सकाइए णं भंते! सकाइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सकाइए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सकायिक जीव सकायिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अनादि अनन्त और २. अनादि-सान्त।

विवेचन - जो काय सहित हो वह सकायिक कहलाता है। काय-शरीर के पांच भेद हैं - १. औदारिक २. वैक्रिय ३. आहारक ४. तैजस और ५. कार्मण। किन्तु यहाँ काय शब्द से तैजस और कार्मण शरीर ही समझना क्योंकि ये दोनों शरीर संसार पर्यन्त निरन्तर होते हैं। यदि ऐसा नहीं माने तो विग्रह गति में वर्तते हुए और शरीर पर्याप्ति से अपर्याप्त जीव के इन दो शरीरों के अलावा शरीर नहीं होने से वे अकायिक कहलाएंगे फलस्वरूप मूल सूत्र में कथित सकायिक के दो भेद घटित नहीं होंगे। मूल में सकायिक के दो भेद कहे गये हैं - १. अनादि अपर्यवसित और २. अनादि सपर्यवसित। इसमें जो जीव संसार का अन्त नहीं करते हैं वे अनादि अनंत हैं क्योंकि उनकी काय-तैजस कार्मण शरीर निरन्तर होने से उनका कभी व्यवच्छेद (अभाव) नहीं होता। जो जीव मोक्ष प्राप्त करेंगे वे अनादि सान्त हैं क्योंकि मोक्ष अवस्था में जीव इन शरीरों से सर्वथा रहित हो जाता है।

पुढविक्काइए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखिज्जकालं, असंखिज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखिज्जा लोगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल तक लगातार पृथ्वीकायिक पर्याय युक्त रहता है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक अर्थात् काल की अपेक्षा-असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक और क्षेत्र से-असंख्यात लोक तक अर्थात् असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण तक पृथ्वीकायिक पर्याय वाला बना रहता है।

एवं आउ तेउ वाउ क्काइया वि।

भावार्थ - इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक अपने-अपने पर्यायों से युक्त रहते हैं।

वणस्सइकाइया णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, असंखिज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखिज्जइभागो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीव कितने काल तक लगातार वनस्पतिकायिक पर्याय में रहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिक जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक, उत्कृष्ट अनन्तकाल तक वनस्पतिकायिक पर्याय युक्त बने रहते हैं। वह अनन्तकाल, काल से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी परिमित एवं क्षेत्र से अनन्त लोक प्रमाण या असंख्यात पुद्‌गलपरावर्त्तन समझना चाहिए। वे पुद्‌गलपरावर्त्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग-प्रमाण जितने होते हैं।

तसकाइए णं भंते! तसकाइएत्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवम सहस्साइं संखिज्ज वासमब्भहियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! त्रसकायिक जीव त्रसकायिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! त्रसकायिक जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त काल तक और उत्कृष्ट संख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम तक त्रसकायिक रूप में लगातार बना रहता है।

विवेचन - एक हजार सागरोपम जितना पंचेन्द्रिय में रहकर फिर विकलेन्द्रिय में जाकर पुनः पंचेन्द्रिय में एक हजार सागरोपम के लगभग रह जाने रूप विकलेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय में गमनागमन करते हुए दो हजार सागरोपम संख्यात वर्ष अधिक तक एक जीव त्रसकाय में रह सकता है इसके बाद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो उसे स्थावर बनना ही पड़ता है। अतः त्रसकाय की कायस्थिति दो हजार सागरोपम संख्यात वर्ष अधिक बताई गयी है।

अकाइए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! अकाइए साइए अपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अकायिक (सिद्ध भगवान्) कितने काल तक अकायिक रूप में बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अकायिक जीव सादि-अनन्त काल तक होते हैं।

सकाइयअपज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सकायिक अपर्याप्तक कितने काल तक सकायिक अपर्याप्तक रूप में लगातार रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सकायिक अपर्याप्तक जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त तक सकायिक अपर्याप्तक रूप में लगातार रहता है।

एवं जाव तसकाइयअपज्जत्तए।

भावार्थ - इसी प्रकार अप्कायिक अपर्याप्तक से लेकर त्रसकायिक अपर्याप्तक तक समझना चाहिए।

सकाइयपज्जत्तएणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवम सयपुहुत्तं साइरेगं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सकायिक पर्याप्तक के विषय में भी पूर्ववत् पृच्छा है, उसका क्या समाधान है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सौ सागरोपम पृथक्त्व तक वह सकायिक पर्याप्तक रूप में रहता है।

पुढवीकाइए पज्जत्तएणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव के विषय में भी पूर्ववत् पृच्छा है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक पृथ्वीकायिक पर्याप्तक रूप में बना रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - यहाँ पर उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों में २२ हजार वर्षों से आठ गुणी स्थिति अर्थात् १७६००० (एक लाख छियत्तर हजार) वर्षों जितनी समझनी चाहिए।

एवं आऊ वि।

भावार्थ - इसी प्रकार अप्कायिक पर्याप्तक के विषय में भी समझना चाहिए।

विवेचन - अप्कायिक पर्याप्तक जीवों की उत्कृष्ट संख्याता हजारों वर्षों की स्थिति में सात हजार वर्षों से आठ गुणी अर्थात् ५६ हजार वर्षों की समझनी चाहिए।

तेउकाइए पज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं राइंदियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक पर्याप्तक कितने काल तक लगातार तेजस्कायिक पर्याप्तक बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात रात्रि-दिन तक वह तेजस्कायिक-पर्याप्तक रूप में बना रहता है।

विवेचन - यहाँ पर भी उत्कृष्ट स्थिति तीन अहोरात्रि के आठ गुणी अर्थात् २४ अहोरात्रि जितनी समझनी चाहिए।

वाउकाइयपज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक पर्याप्तक के विषय में भी इसी प्रकार की पृच्छा है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक वह वायुकायिक पर्याप्तक पर्याय में रहता है।

विवेचन - यहाँ पर भी उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्षों से आठ गुणी अर्थात् चौबीस हजार वर्षों तक की समझनी चाहिए।

वणस्सइ काइय पज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक पर्याप्तक के विषय में भी पूर्ववत् प्रश्न है।

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिक पर्याप्तक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक वनस्पतिकायिक पर्याप्तक पर्याय में बना रहता है।

विवेचन - यहाँ पर भी उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्षों से आठ गुणी अर्थात् अस्सी हजार वर्षों की समझनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तसकाइय पज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं॥ ५३५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! त्रसकायिक-पर्याप्तक कितने काल तक त्रसकायिक पर्याय में बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपम-पृथक्त्व तक वह पर्याप्त त्रसकायिक रूप में रहता है।

सुहुमे णं भंते! सुहुमेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखिज्ज कालं, असंखिज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखिज्जा लोगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म जीव कितने काल तक सूक्ष्म रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक अर्थात् काल से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणियों तक और क्षेत्र से असंख्यात लोक तक सूक्ष्म जीव सूक्ष्मपर्याय में बना रहता है।

सुहुम पुढविक्काइए, सुहुम आउकाइए, सुहुम तेउकाइए सुहुम वाउकाइए, सुहुम वणस्सइकाइए सुहुम णिगोदे वि जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं, असंखिज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखिज्जा लोगा।

भावार्थ - इसी प्रकार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एवं सूक्ष्म निगोद भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक अर्थात् काल से असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक एवं क्षेत्र से असंख्यात लोक तक ये स्व-स्वपर्याय में बने रहते हैं।

सुहुमे णं भंते! अपज्जत्तए त्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक रूप में कितने काल तक लगातार रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक रूप में जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक ही रहता है।

पुढविकाइय आउकाइय तेउकाइय वाउकाइय वणस्सइकाइयाण य एवं चेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक की कायस्थिति के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

पज्जत्तयाण वि एवं चेव।

भावार्थ - इन पूर्वोक्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि के पर्याप्तकों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए।

विवेचन - यहाँ पर सूक्ष्म के सात बोलों में सूक्ष्म वनस्पतिकाय और सूक्ष्म निगोद के दो बोल बताये गये हैं। उनका आशय इस प्रकार समझना चाहिए- सूक्ष्म वनस्पतिकाय के बोल में सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीवों की कायस्थिति बताई गयी है। एवं सूक्ष्म निगोद के बोल में सूक्ष्म वनस्पतिकाय जीवों के शरीर की प्रधानता से कायस्थिति बताई गयी है। अर्थात् दोनों बोलों में जीव की कायस्थिति ही होने पर भी एक बोल में जीव की प्रधानता ली गयी है। दूसरे बोल में शरीर की प्रधानता ली गयी है।

बायरे णं भंते! बायरेत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं, असंखिज्जाओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! बादर जीव, बादर जीव के रूप में लगातार कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक अर्थात् काल से असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक, क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग-प्रमाण बादर जीव के रूप में लगातार रहता है।

बायर पुढविकाइए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरि सागरोवम कोडाकोडीओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर पृथ्वीकायिक बादर पृथ्वीकायिक रूप में कितने काल तक लगातार रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर पृथ्वीकायिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सत्तर कोडाकोडी सागरोपम तक बादर पृथ्वीकायिक रूप में लगातार रहता है।

एवं बायर आउक्काइए वि बायर तेउकाइए वि, बायर वाउकाइए वि।

भावार्थ - इसी प्रकार बादर अप्कायिक, बादर तेजस्कायिक एवं बादर वायुकायिक के विषय में भी समझना चाहिए।

बायर वणस्सइकाइए णं भंते! बायर वणस्सइकाइए त्ति पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं जाव खेत्तओ अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर वनस्पतिकायिक बादर वनस्पतिकायिक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर वनस्पतिकायिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक अर्थात् काल से असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक, क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग-प्रमाण बादर वनस्पतिकायिक के रूप में बना रहता है।

पत्तेयसरीर बायरवणस्सइ काइए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरि सागरोवम कोडाकोडीओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक उक्त स्वपर्याय में कितने काल तक लगातार रहता है?

उत्तर - हे गौतम! प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट सत्तर कोटाकोटी सागरोपम तक प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक रूप में बना रहता है।

णिगोए णं भंते! णिगोए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अड्डाइज्जा पोग्गलपरियट्टा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! निगोद, निगोद के रूप में कितने काल तक लगातार रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक, उत्कृष्ट अनन्तकाल तक, काल से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक, क्षेत्र से ढाई पुद्‌गल परावर्तन तक निगोद, निगोदपर्याय में बना रहता है।

विवेचन - यहाँ पर निगोद शब्द से सूक्ष्म निगोद और बादर निगोद दोनों को मिलाकर समुच्चय निगोद की कायस्थिति समझना चाहिए।

बादरणिगोदे णं भंते! बादरणिगोदे त्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्तरि सागरोवम कोडाकोडीओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर निगोद, बादर निगोद के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर निगोद जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट सत्तर कोटाकोटी सागरोपम तक बादर निगोद के रूप में बना रहता है।

विवेचन - यहाँ पर बादर निगोद शब्द से साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के शरीरों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कायस्थिति समझना चाहिए। जिनके असंख्याता (औदारिक) शरीर एकत्रित होने पर दृष्टि गोचर हो सकते हैं। ऐसे आलू प्याज आदि कन्दमूलों को साधारण वनस्पतिकाय कहा जाता है।

बायर तसकाइए णं भंते! बायरतसकाइएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखिज्जवासमब्भहियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर त्रसकायिक बादर त्रसकायिक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर त्रसकायिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यातवर्ष अधिक दो हजार सागरोपम तक बादर त्रसकायिक-पर्याय वाला बना रहता है।

विवेचन - पूर्व में आये हुए "त्रसकायिक" एवं यहाँ पर आये हुए "बादर त्रसकायिक" दोनों शब्द एकार्थक हैं किन्तु यहाँ पर बादरों के बोलों का वर्णन होने से अन्य बोलों के साथ-साथ इस बोल के भी बादर विशेषण लगा दिया गया है। यह बादर विशेषण 'स्वरूप दर्शक' विशेषण समझना चाहिए।

एएसिं चेव अपज्जत्तगा सव्वे वि जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - इन पूर्वोक्त सभी बादर जीवों के अपर्याप्तक जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त काल तक अपने-अपने पूर्व पर्यायों में बने रहते हैं।

बायरपज्जत्तए णं भंते! बायरपज्जत्तए त्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवम सयपुहुत्तं साइरेगं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर पर्याप्तक, बादर पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर पर्याप्तक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक शत सागरोपम पृथक्त्व तक बादर पर्याप्तक के रूप में रहता है।

बायर पुढविकाइय पज्जत्तए णं भंते! बायर० पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक कितने काल तक बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर पृथ्वीकायिक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात हज़ार वर्षों तक बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक रूप में रहता है।

एवं आउकाइए वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार बादर अप्कायिक के विषय में भी समझना चाहिए।

तेउकाइयपज्जत्तए णं भंते! तेउकाइयपज्जत्तएत्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं राइंदियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक पर्याप्तक बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! तेजस्कायिक पर्याप्तक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्यात रात्रि-दिन तक तेजस्कायिक पर्याप्तक के रूप में रहता है।

वाउकाइय वणस्सइकाइय पत्तेय सरीर बायर वणस्सइ काइए पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक कितने काल तक अपने-अपने पर्याय में रहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्षों तक अपने-अपने पर्याय में रहते हैं।

णिओयपज्जत्तए बायर णिओयपज्जत्तए पुच्छा?

गोयमा! दोण्ह वि जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! निगोद पर्याप्तक और बादर निगोद पर्याप्तक कितने काल तक निगोद पर्याप्तक और बादर निगोद पर्याप्तक के रूप में रहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ये दोनों जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त तक स्व-स्व पर्याय में बने रहते हैं।

बायर तसकाइय पज्जत्तए णं भंते! बायर तसकाइय पज्जत्तए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं ॥ दारं ४॥ ५३६ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर त्रसकायिक पर्याप्तक बादर त्रसकायिक पर्याप्तक के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर त्रसकायिक पर्याप्तक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक शत सागरोपम पृथक्त्व पर्यन्त बादर त्रसकायिक पर्याप्तक के रूप में बना रहता है। ॥ चतुर्थ द्वार ॥ ४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. योग द्वार

सजोगी णं भंते! सजोगि त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सजोगी दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सयोगी जीव कितने काल तक सयोगीपर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सयोगी जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अनादि-अपर्यवसित और २. अनादि-सपर्यवसित।

विवेचन - मन, वचन और काया का व्यापार योग कहलाता है। जो योग सहित है वह सयोगी कहलाता है। सयोगी जीव के दो भेद हैं - अनादि अनंत और अनादि सान्त। जो जीव कभी मोक्ष में नहीं जायेंगे वे सदैव किसी न किसी योग से सयोगी होंगे अतः अनादि अनन्त हैं। जो जीव मोक्ष में जायेंगे वे अनादि सान्त सयोगी हैं क्योंकि मुक्त अवस्था में योग का सर्वथा अभाव होता है।

मणजोगी णं भंते! मणजोगि त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनोयोगी कितने काल तक मनोयोगी अवस्था में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! मनोयोगी जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक मनोयोगी अवस्था में रहता है।

विवेचन - मनोयोगी जीव की कायस्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही है। जब कोई जीव औदारिक काय योग से प्रथम समय में मन के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके दूसरे समय में उन्हें मन रूप में परिणत करके त्यागता है और तीसरे समय में रुक जाता है या मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तब वह एक समय तक मनोयोगी रहता है। क्योंकि प्रथम ग्रहण के समय औदारिक योग वाला होता है, दूसरे समय मनोयोग वाला होता है और तीसरे समय रुक जाता है या मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की होती है क्योंकि मनोयोग्य पुद्गलों को निरंतर ग्रहण करते और त्यागते हुए अंतर्मुहूर्त्त पश्चात् अवश्य ही जीव उससे स्वभावतः रुक जाता है। इसके पश्चात् पुनः मनोयोग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है और छोड़ता है परन्तु काल की सूक्ष्मता के कारण कदाचित् उसका संवेदन (अनुभव) नहीं होता। इसलिए उत्कृष्ट से मनोयोगी अंतर्मुहूर्त्त तक होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं वइजोगी वि।

भावार्थ - इसी प्रकार वचनयोगी का वचनयोगी रूप में रहने का काल समझना चाहिए।

विवेचन - वचन योगी जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त तक वचन योगी अवस्था में रहता है। जीव प्रथम समय में काययोग से भाषा योग्य द्रव्यों को ग्रहण करता है, दूसरे समय में उन्हें भाषा रूप में परिणत करके त्यागता है और तीसरे समय में रुक जाता है या मरण को प्राप्त हो जाता है इसलिए एक समय वचन योग वाला होता है। उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक भाषा द्रव्यों को निरंतर ग्रहण करने और छोड़ने के बाद रुक जाता है क्योंकि जीव का स्वभाव ही ऐसा है अतः वचन योगी की उत्कृष्ट कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त होती है।

कायजोगी णं भंते! कायजोगि० ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! काययोगी, काययोगी के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक वह काययोगीपर्याय में रहता है।

विवेचन - काययोगी की जघन्य कायस्थिति अंतर्मुहूर्त्त है। बेइन्द्रिय आदि जीवों को वचन योग भी होता है और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को मनोयोग भी होता है किन्तु जब वचन योग और मनयोग होता है तब काय योग की प्रधानता नहीं होती। अतः वह सादि सान्त होने से जघन्य अंतर्मुहूर्त्त तक काय योग में रहता है। उत्कृष्ट स्थिति वनस्पतिकाल पर्यंत होती है। वनस्पतिकाल का परिमाण पूर्व में बताया जा चुका है। वनस्पतिकायिक जीवों में केवल काययोग ही पाया जाता है, वचन योग और मन योग नहीं होता है। इसलिए शेष योगों का अभाव होने से कायस्थिति पर्यन्त निरन्तर काय योग ही रहता है।

अजोगी णं भंते! अजोगित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं ५॥ ५३७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अयोगी, अयोगीपर्याय में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अयोगी, अयोगीपर्याय में सादि-अपर्यवसित (अनन्त) काल तक है।

॥ पंचमद्वार॥ ५॥

विवेचन - योग रहित जीव अयोगी कहलाते हैं। ऐसे अयोगी (सिद्ध) जीव सादि अनन्त हैं अतः अयोगी की कायस्थिति सादि अनन्त काल कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६. वेद द्वार

सवेदए णं भंते! सवेदए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सवेदए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ उस्सप्पिणी ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सवेदी जीव कितने काल तक सवेदी रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सवेदक जीव तीन प्रकार के कहे गए हैं। यथा - १. अनादि-अनन्त, २. अनादि-सान्त और ३. सादि-सान्त। उनमें से जो सादि-सान्त है, वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट से अनन्तकाल तक निरन्तर सवेदकपर्याय से युक्त रहता है। अर्थात् उत्कृष्टतः काल से अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणियों तक तथा क्षेत्र की अपेक्षा से देशोन अपार्द्ध (अर्ध) पुद्गलपरावर्त्तन तक जीव सवेदी रहता है।

विवेचन - वेद सहित जीव सवेदी (सवेदक) कहलाता है। सवेदक तीन प्रकार के कहे गये हैं -

१. अनादि अनन्त - जिसकी आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं, जो जीव कभी भी उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी प्राप्त नहीं करेगा। वह अनादि अनंत कहलाता है उसके वेद के उदय का कभी विच्छेद नहीं होगा।

२. अनादि सान्त - जिसकी आदि न हो पर अन्त हो। जो जीव कभी न कभी उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी प्राप्त करेगा किन्तु जिसने अभी तक कभी भी श्रेणी प्राप्त नहीं की है वह अनादि सान्त सवेदक है। ऐसे जीव के उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी के प्राप्त होने पर वेदोदय का विच्छेद हो जाता है

३. सादि सान्त - जिसकी आदि भी है और अन्त भी है, जो उपशम श्रेणी को प्राप्त कर वहाँ वेद के उदय से रहित होकर पुनः उपशम श्रेणी से गिरते हुए वेदोदय वाला होता है वह सादि सान्त है। सादि सान्त सवेदक की कायस्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त कही गयी है वह इस प्रकार है - जब कोई जीव उपशम श्रेणी को प्राप्त कर तीनों प्रकार के वेदों को उपशांत कर वेदोदय रहित होकर पुनः श्रेणि से गिरते सवेदक अवस्था को प्राप्त कर जल्दी से उपशम श्रेणी को (कर्म ग्रंथ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की मान्यतानुसार क्षपक श्रेणि को) प्राप्त करके तीनों वेदों का अन्तर्मुहूर्त्त में ही उपशम (या क्षय) कर देता है तब वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त तब सवेदी होता है। उत्कृष्ट कायस्थिति देशोन - कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल की कही गयी है क्योंकि उपशम श्रेणी से गिरा हुआ उत्कृष्ट इतने काल तक ही संसार में परिभ्रमण करता है अतः सादि सान्त सवेदक का उत्कृष्ट कालमान इतना ही घटित होता है।

इत्थिवेदए णं भंते! इत्थिवेदएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दसुत्तरं पलिओवमसयं पुव्वकोडि पुहुत्तमब्भहियं १, एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अट्ठारस पलिओवमाइं पुव्वकोडि पुहुत्त मब्भहियाइं २, एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउदस पलिओवमाइं पुव्वकोडि पुहुत्त मब्भहियाइं ३, एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पलिओवमसयं पुव्वकोडि पुहुत्त मब्भहियं ४, एगेणं आएसेणं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पलिओवम पुहुत्तं पुव्वकोडि पुहुत्त मब्भहियं ५।

कठिन शब्दार्थ - आएसेणं - आदेश (अपेक्षा) से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्त्रीवेदक जीव स्त्रीवेदक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! १. एक आदेश (अपेक्षा) से वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम तक २. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम तक ३. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम तक ४. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम तक ५. एक अपेक्षा से जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक पल्योपमपृथक्त्व तक स्त्रीवेदी स्त्रीवेदीपर्याय में लगातार रहता है।

विवेचन - स्त्री वेदी की पांच आदेशों (अपेक्षाओं) से कायस्थिति इस प्रकार घटित होती है- सभी में जघन्य कायस्थिति एक समय की कही है जो इस प्रकार समझना चाहिए- कोई स्त्री उपशम श्रेणी में तीनों वेदों को उपशम करके वेद रहित होकर उस श्रेणी से गिरते स्त्री वेद का उदय एक समय अनुभव कर दूसरे समय काल करके देवों में उत्पन्न होती है वहाँ उसे पुरुषवेद प्राप्त होता है किन्तु स्त्री वेद नहीं। इस प्रकार जघन्य से एक समय मात्र स्त्रीवेद होता है। पांच आदेशानुसार स्त्री वेदी की उत्कृष्ट कायस्थिति इस प्रकार होती है -

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

१. प्रथमादेश से - कोई जीव करोड़ पूर्व की आयुष्य वाली मनुष्य स्त्रियों से या तिर्यंच स्त्रियों में पांच छह भव करके ईशान कल्प में ५५ पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली अपरिगृहीता देवियों में देवी रूप में उत्पन्न हो और आयु का क्षय होने पर वहाँ से च्यव कर पुनः करोड पूर्व आयुष्य वाली मनुष्य स्त्री में या तिर्यंच स्त्री रूप में उत्पन्न हो उसके पश्चात् पुनः दूसरी बार ईशान कल्प में ५५ पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली अपरिगृहीता देवियों में देवीरूप में उत्पन्न हो तो उसके बाद उसे स्त्रीवेद के अलावा दूसरे वेद की प्राप्ति होती है। इस प्रकार पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक एक सौ दस पल्योपम की स्त्रीवेद की उत्कृष्ट कायस्थिति सिद्ध होती है।

२. द्वितीय आदेश से - कोई जीव करोड़ पूर्व की आयुष्य वाली मनुष्य स्त्री या तिर्यंच स्त्री में पांच छह भव करके पूर्वोक्तानुसार ईशान देवलोक में दो बार उत्कृष्ट स्थिति वाली देवियों में उत्पन्न हो वह भी परिगृहीता देवियों में ही उत्पन्न हो, अपरिगृहीता देवियों में नहीं तो स्त्री वेदी की उत्कृष्ट काय स्थिति पूर्व कोटि पृथक्त्व अधिक अठारह पल्योपम की सिद्ध होती है।

३. तृतीय आदेश से - कोई जीव सौधर्म देव लोक में सात पल्योपम की उत्कृष्ट आयुष्य वाली परिगृहीता देवियों में दो बार उत्पन्न हो तो तृतीय अपेक्षा से पूर्व कोटी पृथक्त्व अधिक चौदह पल्योपम की स्त्रीवेद की काय स्थिति होती है।

४. चतुर्थ आदेश से - कोई जीव सौधर्म देवलोक में पचास पल्योपम की उत्कृष्ट आयुष्य वाली अपरिगृहीता देवियों में पूर्वोक्तानुसार दो बार देवी रूप में उत्पन्न हो तो स्त्रीवेदी की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक सौ पल्योपम की सिद्ध हो जाती है।

५. पंचम आदेश से - अनेक भवों में भ्रमण करते हुए स्त्रीवेद की उत्कृष्ट स्थिति का विचार करें तो पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक पल्योपम पृथक्त्व की स्थिति होती है इससे अधिक नहीं, क्योंकि करोड़ पूर्व की आयुष्य वाली मनुष्य या तिर्यंच स्त्री में सात भव करके आठवें भव में देवकुरु आदि क्षेत्रों में तीन पल्योपम वाली स्त्रियों में स्त्रीरूप से उत्पन्न हो और वहाँ से काल करके सौधर्म देवलोक में उत्कृष्ट तीन पल्योपम स्थिति वाली देवियों में देवी रूप से उत्पन्न हो तो उसके बाद अवश्य ही वह जीव दूसरे वेद को प्राप्त हो जाता है। इस अपेक्षा से स्त्रीवेदी की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक पल्योपम पृथक्त्व सिद्ध हो जाती है।

स्त्रीवेद की कायस्थिति पांच प्रकार की बतलाई गयी है- इसका कारण पूर्वों से प्रज्ञापना सूत्र के निर्यूहण समय में विद्यमान आचार्यों में परस्पर अपेक्षा भेद से पांच प्रकार के मत थे। अतः प्रज्ञापना सूत्र को निबद्ध करते समय पांचों मतों को ज्यों के त्यों रख दिये। टीकाकार तो इन आदेशों को "आर्य श्याम" द्वारा प्ररूपित ही मानते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

[आचार्य स्कन्दिल की माथुरी वाचना को व्यवस्थित रूप से लिपिबद्ध करने वाले आचार्य देवर्द्धिगणि थे तथा उनके समय में ही आचार्य नागार्जुन की वलभी वाचना को लिपिबद्ध करने वाले 'कालकाचार्य (चतुर्थ)' और इनके उपप्रमुख-'वादिवैताल शान्तिसूरि' थे। देवर्द्धिगणि आचार्य कालक से भी ज्यादा ज्ञानी थे। अतः इनकी प्रधानता से शास्त्र लिपिबद्ध किये गये तथा वलभी वाचना को "पाठान्तर" रूप से स्वीकार किया गया। इस कारण से वर्तमान के ३२ आगमों में अनेक जगह पर 'पाठान्तर' एवं 'मतान्तर' मिलते हैं।]

उनमें से पहले अपेक्षा वादियों का कथन है कि-स्त्रीवेद के आठ भवों में से कोई जीव ५-६ भव कर्मभूमि स्त्रियों के या तिर्यंचणियों के (करोड़-करोड़ पूर्व की स्थिति के) करें एवं दो भव 'दूसरे देवलोक' की अपरिगृहीता देवियों के करे तब स्त्रीवेद की उत्कृष्ट स्थिति ११० पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व अधिक होती है।' दूसरे अपेक्षावादी 'दूसरे देवलोक की परिगृहीता देवी के दो भव मान कर १८ पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व कायस्थिति मानते हैं।' तीसरे अपेक्षावादी 'पहले देवलोक की परिगृहीता देवी के ही दो भव मानकर १४ पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व स्थिति मानते हैं।' चौथे अपेक्षावादी 'पहले देवलोक की अपरिगृहीता देवी के ही दो भव मानकर १०० पल्योपम प्रत्येक करोड़ पूर्व अधिक स्थिति मानते हैं।' पांचवें अपेक्षावादियों के मत से 'पहले ५-६ भव कर्म भूमि (करोड़ पूर्व की) मनुष्यणियों के या तिर्यंचणियों के करा कर फिर सातवां भव तीन पल्योपम की स्थिति वाली मनुष्यणी या तिर्यंचणी का तथा आठवां भव-पहले दूसरे देवलोक में एक पल्योपम की स्थिति वाली देवी का करा कर टीकाकार 'प्रत्येक (चार) पल्योपम प्रत्येक (छह) करोड़ पूर्व स्त्री वेद की उत्कृष्ट कायस्थिति मानते हैं।' परन्तु पूज्य गुरुदेव बहुश्रुत पंडित रत्न श्री समर्थमल जी म. सा. तीन पल्योपम 'युगलिनी के' तथा तीन पल्योपम 'देवी के' इस प्रकार छह पल्योपम 'प्रत्येक' में लेते थे। क्योंकि भगवती सूत्र शतक २४ में युगलिक का कालादेश-छह पल्योपम का बताया ही है। अतः छह पल्योपम कहने में कोई बाधा नहीं आती है एवं पहले सात भव कर्मभूमि स्त्रियों के करने में बाधा नहीं होने से प्रत्येक करोड़ पूर्व (७ करोड़ पूर्व) कर्म भूमिज स्त्रियों के कुल ९ भव होना संभव है।

क्योंकि अन्य चार मतों में कर्मभूमि मनुष्य या तिर्यंचणी के ५-६ भव करके दो भव देवी के बीच में एक भव कर्म भूमि मनुष्य या तिर्यंचणी का ऐसे ९ भव तो माने ही है। फिर अवश्य ही वेदान्तर होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरिसवेदए णं भंते! पुरिसवेदए त्ति कालओ केवच्चिइं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवम सयपुहुत्तं साइरेगं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पुरुषवेदक जीव पुरुषवेदक रूप में लगातार कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! पुरुष वेदक जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम शत-पृथक्त्व तक वह पुरुषवेदक रूप में रहता है।

विवेचन - पुरुषवेदी की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक शत सागरोपम पृथक्त्व कही गयी है। जब कोई जीव अन्य वेद वाले जीवों से निकल कर पुरुष वेद में उत्पन्न होकर वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त अपना सर्वायुष्य पूर्ण कर अन्य गति में अन्यवेदी में उत्पन्न हो तब पुरुष वेद की अंतर्मुहूर्त्त की जघन्य स्थिति घटित होती है। उत्कृष्ट स्थिति तो स्पष्ट है।

णपुंसग वेदए णं भंते! णपुंसग वेदए त्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं वणस्सइ कालो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नपुंसक वेदक लगातार कितने काल तक नपुंसक वेदक पर्याय युक्त बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यन्त नपुंसक वेदक लगातार नपुंसक वेदक रूप में रहता है।

विवेचन - नपुंसक वेद सूत्र में जघन्य एक समय की कायस्थिति स्त्रीवेद के अनुसार समझनी चाहिए और उत्कृष्ट स्थिति वनस्पतिकाल समझना चाहिए। वनस्पतिकाल का परिमाण पूर्व में कहा जा चुका है।

अवेयए णं भंते! अवेयए त्ति पुच्छा?

गोयमा! अवेयए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥ दारं ६॥ ५३८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अवेदक, अवेदक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अवेदक दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. सादि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपर्यवसित (अनन्त) और २. सादि-सपर्यवसित (सान्त)। उनमें से जो सादि-सान्त है, वह जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक निरन्तर अवेदक रूप में रहता है। ॥ छठा द्वार ॥ ५ ॥

विवेचन - वेद रहित जीव (अवेदक) दो प्रकार के कहे गये हैं - १. सादि अनन्त और २. सादि सान्त। उनमें से जो जीव क्षपक श्रेणी प्राप्त करके वेद रहित हो जाते हैं वे सादि अनन्त कहलाते हैं क्योंकि क्षपक श्रेणी से जीव पतित नहीं होता। जो जीव उपशम श्रेणी प्राप्त करके वेदोदय रहित होते हैं वे सादि सान्त हैं। सादि सान्त अवेदक की कायस्थिति जघन्य एक समय की कही गयी है। जब कोई जीव एक समय वेदोदय रहित होकर दूसरे समय मृत्यु को प्राप्त कर देवलोक में देवरूप में उत्पन्न होता है तब वह पुरुष वेद का उदय होने से सवेदक हो जाता है इस कारण अवेदक की जघन्य स्थिति एक समय की कही गयी है। उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त्त कही गई है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् श्रेणी से पतित होने पर उसके अवश्य कोई भी एक वेद का उदय हो जाता है।

७. कषाय द्वार

सकसाई णं भंते! सकसाइत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सकसाई तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए जाव अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! सकषायी जीव कितने काल तक सकषायी रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सकषायी जीव तीन प्रकार के कहे हैं, वे इस प्रकार हैं - १. अनादि-अपर्यवसित २. अनादि-सपर्यवसित और ३. सादि-सपर्यवसित। इनमें से जो सादि-सपर्यवसित हैं, उसका कथन सादि-सपर्यवसित सवेदक के कथनानुसार यावत् क्षेत्रतः देशोन अपार्द्ध (अर्ध) पुद्गलपरावर्तन तक कहना चाहिए।

कोहकसाई णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं, एवं जाव माण माया कसाई।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! क्रोधकषायी क्रोधकषायी पर्याय से युक्त कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! क्रोध कषायी जघन्य से भी और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त्त तक क्रोध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषायी रूप में रहता है। इसी प्रकार मान कषायी और मायाकषायी की कालावस्थिति कहनी चाहिए।

विवेचन - कषाय सहित जीव सकषायी कहलाता है। सकषायी के सवेदक की तरह ही तीन भेद होते हैं। अतः सारा वर्णन सवेदी की तरह समझना चाहिये। क्रोध, मान और माया कषाय में से किसी एक कषाय का उदय जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त तक ही रह सकता है क्योंकि जीव का स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए कहा है कि क्रोध आदि कषाय का उदय अंतर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं रहता।

लोभकसाई णं भंते! लोभकसाइत्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लोभकषायी, लोभकषायी के रूप में कितने काल तक लगातार रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक लोभ कषायी निरन्तर लोभ कषाय पर्याय से युक्त रहता है।

विवेचन - लोभ कषायी की कायस्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही है जब कोई उपशमक जीव उपशम श्रेणी के अंत में उपशांत वीतराग हो कर श्रेणी से गिरता हुआ लोभ के अणुओं का प्रथम समय वेदन करता हुआ काल करके देवलोक में उत्पन्न होता है और वहाँ उत्पन्न होता हुआ क्रोध कषायी या मान कषायी या माया कषायी होता है तब एक समय तक ही लोभ कषाय में रहने से लोभ कषाय की स्थिति एक समय की होती है।

शंका - यदि ऐसा है तो लोभ कषायी की तरह क्रोध आदि कषाय के लिए भी एक समय क्यों नहीं कहा गया है?

समाधान - जीव स्वभाव से ही ऐसा नहीं होता है। श्रेणी से गिरता हुआ जीव माया के वेदन के प्रथम समय में, मान के वेदन के प्रथम समय में, क्रोध के वेदन के प्रथम समय में यदि काल करे और काल करके देवलोक में उत्पन्न हो तो भी स्वभाव से जिस कषाय के उदय के साथ जीव ने काल किया था वही कषाय आगामी भव में भी अंतर्मुहूर्त्त तक वेदी जाती है इसी से यह प्रमाणित होता है कि क्रोध, मान और माया कषाय अन्तर्मुहूर्त्त तक रहती है।

श्रेणी चढ़ते हुए लोभ कषाय की एक समय की स्थिति क्रोध और मान से लोभ में जाने की अपेक्षा तो घटित नहीं होती। लेकिन माया से जाने की अपेक्षा घटित हो सकती है। क्योंकि श्रेणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में क्रोध उदय के बाद तत्काल लोभ का उदय नहीं होता है। क्रोध उदय विच्छेद के बाद अन्तर्मुहूर्त्त तक मान का उदय रहता है। फिर मानोदय विच्छेद के बाद अन्तर्मुहूर्त्त तक माया का उदय रहता है। माया के उदय का विच्छेद होने के बाद फिर लोभ का उदय हो सकता है। माया के बाद लोभ में एक समय रह कर जीव काल कर सकता है। काल करने के बाद पुनः माया का उदय हो जावे तो लोभ कषाय की एक समय की स्थिति घटित हो जाती है। लेकिन जीवाभिगम सूत्र में क्रोध मान माया इन तीनों कषायों का अन्तर जघन्य एक समय का बताया है। अतः तथास्वभाव से ही लोभ कषाय की एक समय की स्थिति होती है। बिना श्रेणी के भी स्वभाव से ही लोभ का उदय जघन्य एक समय में बदल सकता है। ऐसा मानना उचित लगता है।

अकसाई णं भंते! अकसाइत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! अकसाई दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥ दारं ७॥ ५३९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अकषायी, अकषायी के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अकषायी दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सादि-अपर्यवसित और २. सादि-सपर्यवसित। इनमें से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक अकषायी रूप में रहता है। ॥ सप्तम द्वार॥ ७॥

विवेचन - अकषायी सूत्र भी अवेदक की तरह समझ लेना चाहिए।

८. लेश्या द्वार

सलेसे णं भंते! सलेसे त्ति पुच्छा?

गोयमा! सलेसे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सलेश्यजीव सलेश्य-अवस्था में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सलेश्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अनादि-अपर्यवसित और २. अनादि-सपर्यवसित।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जो जीव लेश्या से युक्त हों वे सलेश्य कहलाते हैं। सलेश्य दो प्रकार के कहे गये हैं - १. अनादि अपर्यवसित और २. अनादि सपर्यवसित। जो कभी भी संसार का अन्त नहीं करते वे अनादि अपर्यवसित और जो संसार से पार हो सकते हैं वे अनादि सपर्यवसित कहलाते हैं।

कण्हलेस्से णं भंते! कण्हलेस्से त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्त-मब्भहियाइं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! कृष्णलेश्या वाला जीव कितने काल तक कृष्णलेश्या वाला रहता है?

उत्तर - हे गौतम! कृष्णलेश्या वाला जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम तक लगातार कृष्णलेश्या वाला रहता है।

विवेचन - तिर्यंचों और मनुष्यों के लेश्या सम्बन्धी द्रव्य अंतर्मुहूर्त से प्रारम्भ हो कर परभव (अगले भव) के प्रथम अन्तर्मुहूर्त तक रहते हैं उसके बाद अवश्य ही बदल जाते हैं किन्तु नैरयिकों और देवों में लेश्या सम्बन्धी द्रव्य पूर्वभव संबंधी अंतिम अन्तर्मुहूर्त से प्रारम्भ होकर परभव के प्रथम अन्तर्मुहूर्त तक स्थायी रहते हैं। इसलिए लेश्याओं का जघन्य काल सर्वत्र मनुष्यों और तिर्यंचों की अपेक्षा से तथा उत्कृष्ट काल देवों और नैरयिकों की अपेक्षा समझना चाहिए। प्रस्तुत सूत्र में कृष्ण लेश्या की जो उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम कही गयी है वह सातवीं नरक पृथ्वी की अपेक्षा समझनी चाहिये। क्योंकि उसमें रहे हुए नैरयिक कृष्ण लेश्या वाले होते हैं और उनकी उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागरोपम की कही गयी है। पूर्वभव का अंतिम और परभव का प्रथम यों दो अंतर्मुहूर्त होते हैं वे दोनों मिल कर भी अन्तर्मुहूर्त जितने ही होते हैं क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के भी असंख्य भेद होते हैं।

णीललेस्से णं भंते! णीललेस्से त्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमा संखिज्जइ भाग मब्भहियाइं।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नीललेश्या वाला जीव कितने काल तक नीललेश्या वाला रहता है?

उत्तर - हे गौतम! नीललेश्या वाला जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम तक लगातार नीललेश्या वाला रहता है।

विवेचन - नील लेश्या की उत्कृष्ट कायस्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागरोपम की कही गयी है। यह पांचवीं नरक पृथ्वी की अपेक्षा समझनी चाहिये क्योंकि पांचवीं नरक के प्रथम प्रस्तट (पाथड़े) में नील लेश्या होती है। वहाँ उत्कृष्ट स्थिति इतनी ही है। पूर्व भव का चरम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और परभव का प्रथम अंतर्मुहूर्त्त अधिक है इन दोनों अन्तर्मुहूर्त का समावेश पल्योपम के असंख्यातवें भाग में हो जाता है। अतः उसकी अलग से विवक्षा नहीं की गयी है।

काउलेस्से णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं पलिओवमा संखिज्जइ भाग मब्भहियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कापोतलेश्या वाला जीव कितने काल तक कापोतलेश्या वाला रहता है?

उत्तर - हे गौतम! कापोतलेश्या वाला जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम तक कापोतलेश्या वाला लगातार रहता है।

विवेचन - कापोत लेश्या की उत्कृष्ट कायस्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागरोपम तीसरी नरक पृथ्वी की अपेक्षा समझनी चाहिये क्योंकि तीसरी नरक पृथ्वी के प्रथम प्रस्तट में कापोत लेश्या होती है और उसमें इतनी ही उत्कृष्ट स्थिति संभव है।

तेउलेस्से णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं पलिओवमा संखिज्जइ भाग मब्भहियाइं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! तेजो लेश्या वाला जीव कितने काल तक तेजो लेश्या वाला रहता है?

उत्तर - हे गौतम! तेजो लेश्या वाला जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम तक तेजो लेश्यायुक्त रहता है।

विवेचन - तेजो लेशी की उत्कृष्ट कायस्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागरोपम की कही है यह ईशान देवलोक की देवी की अपेक्षा समझनी चाहिये क्योंकि उनमें तेजो लेश्या होती है और उनकी उत्कृष्ट स्थिति भी इतनी ही है।

पम्हलेस्से णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्त मब्भहियाइं।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! पद्म लेश्या वाला जीव कितने काल तक पद्म लेश्या वाला रहता है।

उत्तर - हे गौतम! पद्म लेश्या वाला जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस सागरोपम तक पद्म लेश्या युक्त रहता है।

विवेचन - पद्म लेशी की उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस सागरोपम की कही है यह ब्रह्मलोक कल्प के देवों की अपेक्षा समझनी चाहिये क्योंकि उनमें पद्म लेश्या होती है और उनकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट स्थिति भी इतनी ही है। पूर्व भव और उत्तर भव के दोनों अन्तर्मुहूर्त्त का समावेश एक ही अन्तर्मुहूर्त में हो जाने के कारण अन्तर्मुहूर्त्त अधिक कहा गया है।

सुक्कलेस्से णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्त मब्भहियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शुक्ल लेश्या वाला जीव कितने काल तक शुक्ल लेश्या वाला रहता है?

उत्तर - हे गौतम! शुक्ल लेश्या वाला जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम तक शुक्ललेश्या वाला रहता है।

विवेचन - शुक्ललेशी की उत्कृष्ट कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम की कही गयी है, यह अनुत्तर विमानवासी देवों की अपेक्षा समझनी चाहिये क्योंकि उनकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की होती है।

अलेस्से णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं ८॥ ५४०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अलेश्यी जीव कितने काल तक अलेश्यी रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अलेश्यी अवस्था सादि-अपर्यवसित है। ॥ अष्टम द्वार॥ ८॥

विवेचन - अलेशी-लेश्या रहित जीव अयोगी केवली और सिद्ध होते हैं वे सदा काल लेश्यातीत रहते हैं इसलिए अलेशी अवस्था को सादि अपर्यवसित कहा गया है।

९. सम्यक्त्व द्वार

सम्मद्दिट्ठी णं भंते! सम्मद्दिट्ठित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! सम्मद्दिट्ठी दुविहे पण्णत्ते। तंजहा-साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक सम्यग्दृष्टि रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सम्यग्दृष्टि जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. सादि-अपर्यवसित और २. सादि-सपर्यवसित। इनमें से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक सादि-सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि रूप में रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जिनकी दृष्टि सम्यग्, यथार्थ या अविपरीत हो अथवा जिनप्रणीत तत्त्वों पर जिसकी श्रद्धा, प्रतीति और रुचि सम्यक् हो, उसे सम्यग् दृष्टि कहते हैं। सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के कहे गये हैं - १. सादि अपर्यवसित - जिसे क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है वह सादि अपर्यवसित सम्यग्दृष्टि है क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व का नाश नहीं होता है। २. सादि सपर्यवसित - जिसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है वह सादि सपर्यवसित सम्यक्त्वी है। सादि सपर्यवसित सम्यग्दृष्टि की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट कुछ अधिक ६६ सागरोपम की कही है। यदि कोई जीव दो बार विजय आदि विमानों में सम्यक्त्व सहित उत्कृष्ट स्थिति वाला देव हो या तीन बार अच्युत देवलोक में उत्पन्न हो तो देवभवों की अपेक्षा ६६ सागरोपम पूर्ण होते हैं और जो कुछ अधिक काल कहा है वह सम्यक्त्व सहित बीच के मनुष्य भवों का समझना चाहिये। इस संबंध में कहा भी है - "**दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्न च्चुए अहव ताइं। अइरेगं नर भवियं।**"

मिच्छादिट्ठी णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! मिच्छादिट्ठी तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गल परियट्टं देसूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मिथ्यादृष्टि कितने काल तक मिथ्यादृष्टि रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! मिथ्यादृष्टि तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अनादि अपर्यवसित २. अनादि-सपर्यवसित और ३. सादि-सपर्यवसित। इनमें से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक अर्थात् काल की अपेक्षा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक और क्षेत्र की अपेक्षा से देशोन अपार्द्ध पुद्गल-परावर्त्तन तक मिथ्यादृष्टि पर्याय से युक्त रहता है।

विवेचन - जिसे जीवादि वस्तु तत्त्व का विपरीत बोध हो, जिसे सर्वज्ञ तीर्थंकरों में श्रद्धा विश्वास नहीं है वह मिथ्यादृष्टि कहलाता है। मिथ्या दृष्टि तीन प्रकार के कहे गये हैं - **१. अनादि अपर्यवसित**- जो अनादि काल से मिथ्यादृष्टि हैं और अनंतकाल तक मिथ्यादृष्टि रहेगा जिसे कभी भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी ऐसे अभव्य जीव। **२. अनादि सपर्यवसित** - जो अनादि काल से मिथ्यादृष्टि है किन्तु भविष्य में सम्यग्दृष्टि बनेंगे **३. सादि सपर्यवसित** - जो सम्यक्त्व को प्राप्त कर के फिर उससे गिर कर मिथ्यादृष्टि हो गये हैं किन्तु भविष्य में पुनः सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे। इनमें सादि सपर्यवसित मिथ्यादृष्टि जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक मिथ्यादृष्टि रहता है। अन्तर्मुहूर्त्त के बाद उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाती है। उत्कृष्ट अनंतकाल तक वह मिथ्यादृष्टि बना रहता है। इसके बाद उसे सम्यक्त्व प्राप्त होती है। अनन्तकाल में काल से अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी और क्षेत्र से कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन समझना चाहिए। यहाँ क्षेत्र पुद्गल परावर्त्तन ग्रहण करना चाहिए किन्तु द्रव्य पुद्गल परावर्त्तन आदि नहीं समझना चाहिए।

सम्मामिच्छादिट्ठी णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं॥ दारं ९॥५४१॥

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! सम्यग्मिथ्यादृष्टि कितने काल तक सम्यग्मिथ्यादृष्टि बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सम्यग्मिथ्यादृष्टि जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त तक सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याय में रहता है।

विवेचन - जिसकी सम्यग्-यथार्थ और मिथ्या-विपरीत दृष्टि है वह सम्यग्मिथ्या दृष्टि (मिश्र दृष्टि) कहलाता है। सम्यग्-मिथ्यादृष्टि की काय स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है। इसके बाद स्वभाव से ही मिश्रदृष्टि नहीं रहती। अन्तर्मुहूर्त्त के पश्चात् मिश्रदृष्टि वाला जीव या तो सम्यग्दृष्टि हो जाता है या मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

१०. ज्ञान द्वार

णाणी णं भंते! णाणित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! णाणी दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं साइरेगाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्ञानी जीव कितने काल तक ज्ञानी पर्याय में निरन्तर रहता है?

उत्तर - हे गौतम! ज्ञानी दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. सादि-अपर्यवसित और २. सादि-सपर्यवसित। इनमें से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक छियासठ सागरोपम तक लगातार ज्ञानीरूप में बना रहता है।

विवेचन - जिसमें ज्ञान है वह ज्ञानी कहलाता है। ज्ञानी दो प्रकार के कहे गये हैं - १. सादि अनन्त और २. सादि सान्त। इनमें केवल ज्ञान की अपेक्षा सादि अनन्त है क्योंकि केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद जाता नहीं है और शेष ज्ञानों की अपेक्षा सादि सान्त है क्योंकि शेष ज्ञान अमुक काल पर्यंत ही होते हैं। सादि सान्त ज्ञानी अवस्था जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक ही रहती है इसके पश्चात् मिथ्यादृष्टि के उदय से ज्ञान परिणाम का विनाश हो जाता है। उत्कृष्ट कायस्थिति कुछ अधिक ६६ सागरोपम की कही है वह सम्यग्दृष्टि के समान समझ लेनी चाहिये क्योंकि सम्यग्दृष्टि ही ज्ञानी होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिणिबोहिय णाणी णं पुच्छा?

गोयमा! एवं चेव।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञानी आभिनिबोधिक ज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य ज्ञानी के विषय में जैसा कहा है इसी प्रकार इसके विषय में भी समझ लेना चाहिए।

एवं सुयणाणी वि।

भावार्थ - इसी प्रकार श्रुतज्ञानी का भी कालमान समझ लेना चाहिए।

ओहिणाणी वि एवं चेव, णवरं जहण्णेणं एगं समयं।

भावार्थ - अवधिज्ञानी का कालमान भी इसी प्रकार है, विशेषता यह है कि वह जघन्य एक समय तक ही अवधिज्ञानी के रूप में रहता है।

विवेचन - अवधिज्ञानी का जघन्य कालमान एक समय का कहा है अन्तर्मुहूर्त्त का नहीं, क्योंकि विभंगज्ञानी कोई तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य या देव जब सम्यक्त्व प्राप्त करता है तो उसका विभंगज्ञान अवधिज्ञान में बदल जाता है किन्तु देव के च्यवन के कारण और अन्य जीव (नैरयिक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य) की मृत्यु होने पर या अन्य कारणों से अनन्तर समय में ही जब वह अवधिज्ञान नष्ट हो जाता है तब उसका अवस्थान एक समय तक रहता है। उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक छासठ सागरोपम की कही गयी है जो अप्रतिपाती अवधिज्ञान सहित दो बार विजय आदि विमानों में जाने की अपेक्षा या तीन बार अच्युत देवलोक में जाने की अपेक्षा समझनी चाहिए।

मणपज्जव णाणी णं भंते! मणपज्जव णाणित्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! मनःपर्यवज्ञानी कितने काल तक निरन्तर मनःपर्यवज्ञानी के रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! मनःपर्यवज्ञानी जघन्य एक समय और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि (करोड़पूर्व) तक सतत मनःपर्यवज्ञानी पर्याय में रहता है।

विवेचन - मनःपर्यवज्ञानी जघन्य से एक समय तक रहता है। अप्रमत्त गुणस्थान में वर्तमान किसी संयत को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है और अप्रमत्त अवस्था में ही मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होने के दूसरे समय में उसकी मृत्यु हो जाती है तब वह मनःपर्यव ज्ञानी एक समय तक ही मनःपर्यवज्ञानी रूप में रहता है। उत्कृष्ट स्थिति कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष की कही गयी है क्योंकि इसके बाद संयम नहीं होने से मनःपर्यवज्ञान का भी अभाव हो जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवल णाणी णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! केवलज्ञानी, केवलज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! केवलज्ञानी-पर्याय सादि-अपर्यवसित होती है।

विवेचन - केवलज्ञानी की कायस्थिति सादि अनन्त होती है क्योंकि केवलज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद वह कभी भी जाता नहीं है अर्थात् सदा काल तक रहता है।

अण्णाणी मइअण्णाणी सुयअण्णाणी पुच्छा?

गोयमा! अण्णाणी, मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढ पोग्गल परियट्टं देसूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी कितने काल तक निरन्तर-स्व-पर्याय में रहते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अज्ञानी, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी तीन-तीन प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अनादि-अपर्यवसित २. अनादि-सपर्यवसित और ३. सादि-सपर्यवसित। उनमें से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक अर्थात् काल की अपेक्षा से अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक एवं क्षेत्र की अपेक्षा से देशोन अपार्द्ध पुद्गल परावर्त्तन तक निरन्तर स्व-स्वपर्याय में रहते हैं।

विवेचन - अज्ञानी जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं - **१. अनादि अनन्त** - जिन्हें कभी भी सम्यग्ज्ञान होने वाला नहीं है वे अनादि अनन्त अज्ञानी हैं। **२. अनादि सान्त** - जिन्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी वे अनादि सान्त और **३. सादि सान्त** - जो ज्ञान प्राप्त कर फिर से मिथ्यात्व प्राप्ति के कारण अज्ञानी होंगे वे सादि सान्त है। सादि सान्त की स्थिति जघन्य अंतमुहूर्त्त होती है क्योंकि इसके बाद सम्यक्त्व प्राप्त हो जाने के कारण अज्ञान नष्ट हो जाता है। उत्कृष्ट अनंतकाल तक वह अज्ञानी रहता है। अनंत काल यानी अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के बाद उस जीव को अवश्य ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है और उसका अज्ञान दूर हो जाता है।

विभंगणाणी णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं देसूणाए पुव्वकोडीए अब्भहियाइं॥ दारं १०॥॥ ५४२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विभंगज्ञानी कितने काल तक विभंगज्ञानी के रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय तक, उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम तक वह विभंगज्ञानी-पर्याय में लगातार बना रहता है। ॥ दसवाँ द्वार ॥ १० ॥

विवेचन - सम्यग्दृष्टि होने से कोई अवधिज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य या देव मिथ्यात्व को प्राप्त होता है और मिथ्यात्व प्राप्ति के समय मिथ्यात्व के प्रभाव से उसका अवधिज्ञान विभंगज्ञान रूप में परिणत हो जाता है क्योंकि **"आद्यत्रयज्ञानमपि भवति मिथ्यात्वसंयुक्तम्"** - आदि के तीन ज्ञान मिथ्यात्व सहित अज्ञान रूप होते हैं - ऐसा शास्त्र वचन है। इस प्रकार मिथ्यात्व प्राप्ति के अनन्तर समय में ही उस विभंगज्ञानी तिर्यंच मनुष्य या देव की मृत्यु हो जाती है तब विभंगज्ञान एक समय तक ही रहता है। जब कोई मिथ्यादृष्टि तिर्यंच पंचेन्द्रिय या मनुष्य करोड़ पूर्व की आयु के कुछ वर्ष व्यतीत हो जाने पर विभंगज्ञानी होता है और अप्रतिपाती विभंगज्ञान सहित ही ऋजु गति से सातवीं नरक पृथ्वी में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नैरयिक बनता है उस समय विभंगज्ञानी की उत्कृष्ट स्थिति देशोन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपम की होती है। तत्पश्चात् वह जीव या तो सम्यक्त्व को प्राप्त करके अवधिज्ञानी बन जाता है या उसका विभंगज्ञान सर्वथा नष्ट हो जाता है।

११. दर्शन द्वार

चक्खुदंसणी णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवमसहस्सं साइरेगं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चक्षुदर्शनी कितने काल तक चक्षुदर्शनी पर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! चक्षुदर्शनी जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम तक चक्षुदर्शनी पर्याय में रहता है।

विवेचन - जब कोई तेइन्द्रिय आदि जीव चउरिन्द्रिय आदि में उत्पन्न हो कर और वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त रह कर पुनः तेइन्द्रिय आदि में उत्पन्न हो जाता है तब चक्षुदर्शनी की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त होती है। उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार सागरोपम की स्थिति चउरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और नैरयिक आदि भवों में भ्रमण करने के कारण समझनी चाहिये।

यद्यपि द्रव्येन्द्रियों के अभाव में वाटे बहते जीव में चक्षुदर्शन नहीं होते हुए भी उसमें भावेन्द्रिय के सद्भाव (होने) के कारण आगे द्रव्येन्द्रिय का निर्माण होता ही है तब चक्षुदर्शन की प्राप्ति निरन्तर साधिक (८) आठ सागरोपम तक हो सकती है। इस प्रकार चक्षु दर्शन वाला जीव चउरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय का काल मिलाकर साधिक हजार सागरोपम तक रह सकता है। अतः चक्षुदर्शनी की उत्कृष्ट कायस्थिति साधिक हजार सागरोपम की बताई गयी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अचक्खुदंसणी णं भंते! अचक्खुदंसणित्ति कालओ० ?

गोयमा! अचक्खुदंसणी दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अचक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अचक्षुदर्शनी दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. अनादि अपर्यवसित और २. अनादि-सपर्यवसित।

विवेचन - अचक्षुदर्शनी दो प्रकार के कहे गये हैं - **१. अनादि अनन्त** - जो कभी भी मोक्ष प्राप्ति नहीं करेंगे और **२. अनादि सान्त** - जो मोक्ष को प्राप्त करेंगे।

ओहिदंसणी णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो छावट्ठीओ सागरोवमाणं साइरेगाओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अवधिदर्शनी, अवधिदर्शनी रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अवधिदर्शनी, अवधिदर्शनी रूप में जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो छियासठ (एक सौ बत्तीस) सागरोपम तक अवधिदर्शनी पर्याय में रहता है।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रिय या मनुष्य तथाप्रकार के अध्यवसाय से अवधिदर्शन उत्पन्न करके तदनन्तर समय में काल करके तिर्यंच पंचेन्द्रिय या मनुष्य में उत्पन्न होता है तब अवधिदर्शन की कायस्थिति एक समय की होती है। उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो ६६ सागरोपम की होती है।

अवधिदर्शन की उत्कृष्ट कायस्थिति दो छासठ (एक सौ बत्तीस) सागरोपम की बताई है। इसके विषय में प्रज्ञापना सूत्र के टीकाकार व टब्बाकार इस प्रकार कहते हैं -पहले दो भव सातवीं नरक के बीच में तिर्यंच पंचेन्द्रिय का भव करा कर फिर मनुष्य के भव करा कर १२ वें देवलोक के तीन भव एवं बीच बीच में मनुष्य का भव कराकर १३२ सागरोपम मानते हैं तथा वे कहते हैं कि विग्रहगति वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों में ही विभंग ज्ञान लाने का निषेध है। अविग्रह वालों में नहीं। परन्तु पूज्य गुरुदेव श्रमण श्रेष्ठ पंडित रत्न श्री समर्थमल जी म. सा. की इस सम्बन्ध में धारणा इस प्रकार है-विभंगज्ञान वाला मनुष्य १२ वें देवलोक या पहले ग्रैवेयक में विभंगज्ञान लेकर आवे और वहाँ से अवधिज्ञान लेकर मनुष्य में जावे। फिर इसी तरह विभंग लेकर आवे और अवधिज्ञान लेकर जावे। ऐसे तीन भव १२ वें देवलोक के या पहले ग्रैवेयक के करने से ६६ सागरोपम की स्थिति होती है तथा बीच-बीच के मनुष्य के भवों की स्थिति मिलाने से 'साधिक' हो जाती है। फिर विजयादि अनुत्तर विमानों में अवधिज्ञान युक्त दो बार आने से छासठ सागरोपम एवं बीच के मनुष्य भव की स्थिति मिलाने से 'साधिक छासठ सागरोपम' हो जाती है। इस प्रकार कुल मिलाकर दशभवों में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(मनुष्य + १२ वाँ देवलोक + मनुष्य + १२ वाँ देवलोक + मनुष्य + १२ वां देवलोक+मनुष्य+अनुत्तर विमान+मनुष्य+अनुत्तर विमान, ये दश भव) मिला कर अवधिदर्शन की कायस्थिति 'साधिक १३२ सागरोपम' हो जाती है।

केवलदंसणी णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं ११॥ ५४३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! केवलदर्शनी कितनी काल तक केवलदर्शनी रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! केवलदर्शनी सादि-अपर्यवसित होता है। ॥ ग्यारहवाँ द्वार॥ ११॥

१२. संयत द्वार

संजए णं भंते! संजए त्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संयत कितने काल तक संयत रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! संयत जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व तक संयत रूप में रहता है।

विवेचन - यदि कोई चारित्र परिणाम के आते ही उसके अगले समय ही काल करे तो संयत का संयतपना जघन्य से एक समय होता है।

असंजए णं भंते! असंजए त्ति पुच्छा?

गोयमा! असंजए तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं, अणंताओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अवड्ढं पोग्गल परियट्टं देसूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंयत कितने काल तक असंयत रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! असंयत तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. अनादि-अपर्यवसित २. अनादि-सपर्यवसित और ३. सादि-सपर्यवसित। उनमें से जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक अर्थात् काल की अपेक्षा-अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक तथा क्षेत्र की अपेक्षा-देशोन अपार्द्ध (अर्द्ध) पुद्गलपरावर्त्तन तक असंयत पर्याय में रहता है।

विवेचन - असंयत तीन प्रकार के कहे गये हैं - **१. अनादि अपर्यवसित (अनन्त)** - जो संयम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को किसी भी काल में प्राप्त नहीं करेगा वह अनादि अनंत **२. अनादि सपर्यवसित (सान्त)** - जो संयम को प्राप्त करेगा वह अनादि सान्त और **३. सादि सपर्यवसित (सान्त)** - जो संयम को प्राप्त कर उससे भ्रष्ट (पतित) हो जाय वह सादि सान्त असंयत है। वह जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त तक होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त्त के बाद संयम की प्राप्ति होती है। असंयत उत्कृष्ट से अनंतकाल तक असंयत पर्याय में रहता है। अनन्त काल (काल से अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी और क्षेत्र से कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन) के बाद उसे संयम की प्राप्ति अवश्य होती है।

संजयासंजए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं।

भावार्थ -प्रश्न - हे भगवन्! संयतासंयत कितने काल तक संयतासंयत रूप में रहता है।

उत्तर - हे गौतम! संयतासंयत जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि तक संयतासंयत रूप में रहता है।

विवेचन - संयतासंयत (देश विरति वाला) की जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त होती है क्योंकि देशविरति की प्राप्ति का उपयोग जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त होता है। देशविरति के दो करण, तीन योग आदि बहुत भंग होते हैं अतः उसे स्वीकार करने में जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त लगता है। सर्वविरति तो "सर्व सावद्य का मैं त्याग करता हूँ।" इत्यादि रूप है अतः इसकी प्रतिज्ञा अङ्गीकार करने का उपयोग एक समय भी हो सकता है अतः संयत का जघन्य काल एक समय कहा गया है।

णोसंजए-णोअसंजए णो संजयासंजए णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं १२॥ ५४४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नोसंयत, नोअसंयत, नोसंयतासंयत कितने काल तक नोसंयत, नोअसंयत, नोसंयतासंयत रूप में बना रहता है?

उत्तर - हे गौतम! वह सादि-अपर्यवसित है। ॥ बारहवाँ द्वार ॥ १२ ॥

विवेचन - जो संयत नहीं है, असंयत नहीं है और संयतासंयत भी नहीं है, वे जीव सिद्ध ही होते हैं और सिद्ध सादि अनन्त हैं।

१३. उपयोग द्वार

सागारोवउत्ते णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! साकारोपयोग युक्त जीव निरन्तर कितने काल तक साकारोपयोग युक्त रूप में बना रहता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! साकारोपयोग युक्त जीव निरन्तर जघन्य से और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक साकारोपयोग से युक्त बना रहता है।

अणागारोवउत्ते वि एवं चेव॥ दारं १३॥॥ ५४५॥

भावार्थ - अनाकारोपयोग युक्त जीव भी इसी प्रकार जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक अनाकारोपयोग युक्त रूप में बना रहता है। ॥ तेरहवाँ द्वार॥ १३॥

विवेचन - संसारी जीवों को साकार और अनाकार दोनों उपयोग होते हैं और उनकी स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है। केवलियों का उपयोग एक समय का होता है उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों उपयोग क्षायिक भाव में होने के कारण इनकी कायस्थिति आगमकारों को '**साइया अपज्जवसिया**' ही इष्ट है। अतः इनका अन्तर संभव ही नहीं है। जीव के उपयोग का वैसा ही स्वभाव होने से केवलज्ञान और केवलदर्शन का उपयोग एक एक समय के क्रम से होता है। छद्मस्थों के उपयोग क्षायोपशमिक भाव में होने कारण एवं उपयोगों की अनेक विधता होने से इनकी स्थिति सादि सान्त होने से आगमकारों ने यहाँ पर दोनों उपयोगों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की ही बताई है।

१४. आहारक द्वार

आहारए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! आहारए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा-छउमत्थआहारए य केवलिआहारए य।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! आहारक जीव लगातार कितने काल तक आहारक रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! आहारक जीव दो प्रकार के कहे हैं, यथा - छद्मस्थ-आहारक और केवली-आहारक।

छउमत्थाहारए णं भंते! छउमत्थाहारएत्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं खुड्डाग भवग्गहणं दुसमयऊणं, उक्कोसेणं असंखिज्ज कालं, असंखिज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! छद्मस्थ-आहारक कितने काल तक छद्मस्थ-आहारक के रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दो समय कम क्षुद्रभव ग्रहण जितने काल और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक लगातार छद्मस्थ-आहारक रूप में रहता है। अर्थात्-काल से असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक तथा क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - छद्मस्थ आहारक की जघन्य कायस्थिति दो समय कम क्षुल्लक भव (दो सौ छप्पन आवलिका प्रमाण) की कही गयी है। एक क्षुल्लक भव २५६ आवलिका का होता है। कोई भी जीव २५६ आवलिका से पहले पर्याप्त नहीं होता तथा अन्तर्मुहूर्त्त के बाद अपर्याप्त नहीं रहता है। चार समय एवं पांच समय के विग्रह वाले जीव बहुत थोड़े होने से यहाँ उनकी विवक्षा नहीं करके आहारक की स्थिति जघन्य एक क्षुल्लक भव में दो समय न्यून बताई है। उत्कृष्ट स्थिति बादर काल की बताई है। इतने समय तक जीव ऋजुगति से समोहया मरण से काल करता रहे तो वह आहारक बना रह सकता है।

केवलिआहारए णं भंते! केवलिआहारए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणं पुव्वकोडिं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! केवली-आहारक कितने काल तक केवली-आहारक के रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देशोन कोटिपूर्व तक केवली आहारक निरन्तर केवली-आहारक रूप में रहता है।

अणाहारए णं भंते! अणाहारए त्ति कालओ केवच्चिरं होइ?

गोयमा! अणाहारए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - छउमत्थ अणाहारए य केवलि अणाहारए य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनाहारक जीव, अनाहारक रूप में निरन्तर कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अनाहारक दो प्रकार के होते हैं, यथा १. छद्मस्थ-अनाहारक और २. केवली अनाहारक।

छउमत्थ अणाहारए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो समया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! छद्मस्थ-अनाहारक, छद्मस्थ-अनाहारक के रूप में निरन्तर कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक छद्मस्थ-अनाहारक रूप में रहता है।

विवेचन - छद्मस्थ अनाहारक की उत्कृष्ट दो समय की कायस्थिति तीन समय वाली विग्रह गति की अपेक्षा कही गयी है। यह काय स्थिति बहुलता की अपेक्षा से समझना चाहिए। अर्थात्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अधिकतर जीव एक-दो समय अनाहारक रहने वाले ही होते हैं। किन्तु दो समय से अधिक अनाहारक का सर्वथा निषेध नहीं समझना चाहिए। क्योंकि भगवती सूत्र के ३४ वें शतक में चार समय के विग्रह से भी एकेन्द्रिय जीवों का उत्पन्न होना बताया है। चार समय के विग्रह में तीन समय तक अनाहारक की स्थिति संभव होती है। किन्तु ऐसे जीव बहुत कम होने से इसे नगण्य कर दिया है।

यद्यपि लोक की क्षैत्रिक परिस्थिति के अनुसार जीव की पांच समय के विग्रह वाली गति भी संभव हो सकती है। तथापि उस प्रकार के विग्रहों से उत्पन्न होने वाले जीव बहुत कम होने से या उनका अभाव होने से आगम में नहीं बताये गये हो या चार समय के विग्रह से उत्पन्न होने वाले जीवों से भी पांच समय के विग्रह से उत्पन्न होने वाले जीव अत्यल्प होने से उसे नगण्य कर दिया गया हो। ऐसा समाधान विक्रम की छट्ठी सातवीं शती में होने वाले आचार्य जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण अपने स्वरचित 'विशेषणवती' ग्रन्थ में करते हैं, जो उचित ही प्रतीत होता है। इस सम्बन्ध में विशेषणवती ग्रन्थ में आई हुई गाथाएं इस प्रकार हैं -

"सुत्ते चउ समयाओ, णत्थि गईओ परा विणिद्दिट्ठा।
जुज्जइय पंच समया, जीवस्स इमो गइ लोए॥ २३॥
जो तमतमविदिसाए, समोहओ बंभलोगविदिसाए।
उववजइ गइ एसो, नियमा पंच समयाए॥ २४॥
उज्जुयाए एकवक्का, दुहओवंका गइ विणिद्दिट्ठा।
जुजइय ति चउवक्का, विणाण पंच समयाए॥ २५॥
उववायाभावाओ, न पंच समयाओ ऽहवा ण संताऽवि।
भणिया जह चउसमया, महल्लबंधे ण संताऽवि॥ २६॥"

इन्हीं सब कारणों से कर्मग्रन्थ एवं प्रज्ञापना टीका में तीन चार समय अनाहारक होना बताया जाता है। तीन समय तक अनाहारक रहना तो भगवती सूत्र के ३४ वें आदि शतकों से सुस्पष्ट हो जाता है।

केवलि अणाहारए णं भंते! केवलि० ?

गोयमा! केवलि अणाहारए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सिद्ध केवलि अणाहारए य भवत्थ केवलि अणाहारए य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! केवली अनाहारक, केवली-अनाहारक के रूप में निरन्तर कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! केवली-अनाहारक दो प्रकार के होते हैं-१. सिद्धकेवली-अनाहारक और २. भवस्थकेवली-अनाहारक।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध केवलि अणाहारए णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सिद्धकेवली-अनाहारक कितने काल तक सिद्धकेवली-अनाहारक के रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! सिद्धकेवली-अनाहारक सादि-अपर्यवसित है।

भवत्थ केवलि अणाहारए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! भवत्थ केवलि अणाहारए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सजोगि भवत्थ केवलि अणाहारए य अजोगि भवत्थ केवलि अणाहारए य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भवस्थकेवली-अनाहारक कितने काल तक निरन्तर भवस्थकेवली-अनाहारक रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! भवस्थकेवली-अनाहारक दो प्रकार के हैं - १. सयोगि-भवस्थकेवली अनाहारक और २. अयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक।

सजोगि भवत्थ केवलि अणाहारए णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तिण्णि समया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सजोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक कितने काल तक सयोगि-भवस्थ-केवली-अनाहारक के रू' में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अजघन्य-अनुत्कृष्ट तीन समय तक सयोगि भवस्थ केवली-अनाहारक रूप में रहता है।

विवेचन - सयोगी भवस्थ केवली अनाहारक की कायस्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट तीन समय की केवली समुद्घात की अपेक्षा से कही गयी है। केवली समुद्घात के आठ समयों में तीसरे, चौथे और पांचवें समय में जीव अनाहारक रहता है। कहा है कि -

"दण्डं प्रथमे समये कपाटमथ चोत्तरे तथा समये।
मन्थानमथ तृतीये लोकव्यापी चतुर्थे तु॥ १॥
संहरति पंचमे त्वन्तराणि मन्थानमथ तथा षष्ठे।
सप्तमके तु कपाटं संहरति ततोऽष्टमे दण्डम्॥ २॥
औदारिक प्रयोक्ता प्रथमाष्टसमययोरसाविष्टः।
मिश्रौदारिक योक्ता सप्तमषष्ठ द्वितीयेषु॥ ३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कार्मण शरीर योगी चतुर्थके पंचमे तृतीये च।
समयत्रयेऽपि तस्मिन् भवत्यनाहारको नियमात्॥ ४॥"

अर्थात् - प्रथम समय दण्ड, दूसरे समय कपाट, तीसरे समय मंथान और चौथे समय लोक व्यापी होता है। पांचवें समय में आंतरों का संहरण और छठे समय में मंथान का संहरण होता है। सातवें समय में कपाट और उसके बाद आठवें समय में दण्ड का संहरण होता है। जीव प्रथम और आठवें समय में औदारिक काययोगी होता है। सातवें, छठे और दूसरे समय में औदारिक मिश्र योग वाला और चौथे, पांचवें और तीसरे इन तीन समयों में कार्मण काय योगी होता है और उस समय जीव अवश्य अनाहारक होता है।

अजोगि भवत्थ केवलि अणाहारए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं॥ दारं १४॥ ५४६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अयोगि-भवस्थकेवली-अनाहारक कितने काल तक अयोगि-भवस्थ-केवली-अनाहारक रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त तक अयोगिभवस्थकेवली अनाहारक रूप में रहता है।

विवेचन - सभी अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक जीव (चौदहवें गुणस्थान वाले) समान स्थिति वाले ही होने की संभावना लगती है क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें अध्ययन में इनकी स्थिति मध्यम रीति से पांच लघु अक्षरों (अ, इ, उ, ऋ लृ) के उच्चारण करने जितनी बताई है।

॥ चौदहवां द्वार॥ १४॥

१५. भाषक द्वार

भासए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाषक जीव कितने काल तक भाषक रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक भाषक रूप में रहता है।

विवेचन - भाषक (बोलने वाला) की जघन्य काय स्थिति एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की वचन योगी की अपेक्षा समझनी चाहिये।

अभासए णं पुच्छा?

गोयमा! अभासए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए वा सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो॥ दारं १५॥ ५४७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अभाषक जीव अभाषक रूप में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अभाषक दो प्रकार के कहे गये हैं - १. सादि-अपर्यवसित और २. सादि-सपर्यवसित। उनमें से जो सादि-सपर्यवसित हैं, वे जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यन्त अभाषक रूप में रहते हैं। ॥ पन्द्रहवाँ द्वार॥ १५॥

विवेचन - अभाषक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं - **१. सादि अनन्त** - जिन जीवों के अभाषक बनने की आदि तो है किन्तु फिर कभी भी उनका अन्त नहीं अर्थात् वे जीव कभी भी भाषक नहीं बनेंगे। ऐसे सिद्ध भगवान् के जीव सादि अनन्त अभाषक कहलाते हैं। **२. सादि सान्त** - जो भाषक हो कर पुनः अभाषक होते हैं वे सादि सान्त अभाषक कहलाते हैं। सादि सान्त अभाषक की जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कही गयी है जो इस प्रकार है - अभाषक जीव कुछ देर भाषक रह कर पुनः अभाषक बन जाता है जैसे - बेइन्द्रिय आदि भाषक जीव एकेन्द्रिय आदि अभाषक जीवों में उत्पन्न होकर और वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त रह कर पुनः बेइन्द्रिय आदि में उत्पन्न होता है उस समय जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक अभाषक रहता है। उत्कृष्ट वनस्पतिकाल (अनंतकाल) पर्यंत जीव लगातार अभाषक रहता है।

नोट - अभाषक की कायस्थिति में हस्त लिखित प्रज्ञापना सूत्र की प्रति (टब्बा) में तथा राजेन्द्र कोष में दो भङ्ग ही बताये गये हैं इनमें से पहला भङ्ग सिद्धों की अपेक्षा से होता है और दूसरा भङ्ग संसारी जीवों की अपेक्षा से होता है। कायस्थिति के पाठ को देखते हुए ये दो भङ्ग ही उचित प्रतीत होते हैं। सैलाना से प्रकाशित अनङ्गपविट्ठ सुत्ताणि के जीवाजीवाभिगम सूत्र के पृष्ठ २९२ में भी अभाषक के वर्णन में दो भांगे ही बतलाये गये हैं। आगमोदय समिति वाली प्रति (टीका) में तथा इसी के आधार से अन्य भी अनेकों प्रतियों में तीन भांगे बताये गये हैं, वे उचित नहीं लगते हैं। टीका में इसी कारण से अशुद्धि हो गयी हो फिर उसी के आधार से मूल पाठ में भी तीनों भङ्गों को रख दिया गया हो ऐसी संभावना लगती है।

अभाषक में तीन भाङ्गे होना उचित नहीं लगता है क्योंकि सिद्ध भगवान् भी अभाषक होते हैं उनमें **"साइया अपज्जवसिया"** भङ्ग होता है। वह भंग तो तीनों भंगों में तो आया ही नहीं है, जबकि वह भङ्ग होना आवश्यक है। यदि आगमकार को ये तीन भङ्ग इष्ट होते तो तिर्यंच, एकेन्द्रिय, वनस्पतिकाय, काय योगी, नपुंसक वेद, सूक्ष्म और असंज्ञी आदि बोलों में भी ये तीनों भङ्ग बताते परन्तु ऐसा बताया नहीं है अतः अभाषक में भी तीन भङ्ग कहना उचित नहीं है तथा दो भङ्ग कहना उचित प्रतीत होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. परित्त द्वार

परित्ते णं पुच्छा?

गोयमा! परित्ते दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - कायपरित्ते य संसारपरित्ते य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! परित्त जीव कितने काल तक निरन्तर परित्तपर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! परित्त दो प्रकार के हैं। वे इस प्रकार हैं - १. कायपरित्त और २. संसारपरित्त।

विवेचन - परित्त दो प्रकार के कहे गये हैं - **१. कायपरित्त** - परित्त यानी परिमित, काय अर्थात् शरीर, परिमित शरीरी यानी प्रत्येक शरीरी **२. संसार परित्त** - जिसने सम्यक्त्व आदि से संसार परित्त- परिमित किया है, वह संसार परित्त कहलाता है। अर्थात् सम्यक्त्व आने के बाद जिनका संसार काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन जितना शेष हो ऐसे जीव संसार परित्त कहलाते हैं।

कायपरित्ते णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुढविकालो, असंखिज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणीओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कायपरित्त कितने काल तक कायपरित्त पर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पृथ्वीकाल तक अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणियों तक कायपरित्त पर्याय में निरन्तर बना रहता है।

विवेचन - जब कोई जीव निगोद से निकल कर प्रत्येक शरीर वालों में उत्पन्न होता है और वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त रह कर पुनः निगोद में उत्पन्न हो जाता है तब काय परित्त की जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की कायस्थिति होती है। उत्कृष्ट असंख्यात काल (पृथ्वीकाल) तक जीव निरन्तर कायपरित्त रूप में रहता है। पृथ्वीकाल की जितनी कायस्थिति कही गयी है उतना काल यहाँ समझना चाहिए। जो असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी रूप है।

यद्यपि सभी प्रत्येक शरीरी (छहों काय के) जीवों को कायपरित्त कहा जाता है तथापि यहाँ पर पृथ्वीकाल की जो कायस्थिति बताई गयी है उसमें मात्र पृथ्वीकाय की कायस्थिति नहीं समझ कर शेष कायों की कायस्थिति भी शामिल समझनी चाहिए। सबकी कायस्थिति मिलाकर भी असंख्याता उत्सर्पिणी अवसर्पिणी जितनी ही होने से एवं पुढवीकाल में जिस प्रकार से कही गई है उसी प्रकार से बोली जाने से शब्दों की समानता से यहाँ पर भी (कायपरित्त में) कायस्थिति 'पुढवीकाल' जितनी बतलाई गयी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसारपरित्ते णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढं पोग्गल परियट्टं देसूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संसारपरित्त जीव कितने काल तक संसारपरित्त पर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल तक, यावत् देशोन अर्द्ध पुद्गल-परावर्त्तन संसारपरित्त पर्याय में रहता है।

विवेचन - संसार परित्त जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक होता है इसके बाद वह अन्तकृत केवली होकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है। संसार परित्त की उत्कृष्ट कायस्थिति अनंतकाल की होती है इसके बाद वह अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है।

अपरित्ते णं पुच्छा?

गोयमा! अपरित्ते दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - काय अपरित्ते य संसार अपरित्ते य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपरित्त जीव कितने काल तक अपरित्त पर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अपरित्त दो प्रकार के कहे गये हैं, वह इस प्रकार है - १. काय-अपरित्त और २. संसार-अपरित्त।

विवेचन - अपरित्त दो प्रकार के कहे गये हैं - **१. काय अपरित्त** - जो अनन्तकायिक जीव (सूक्ष्म और बादर निगोद में रहे हुए जीव) हैं वे काय अपरित्त कहलाते हैं **२. संसार अपरित्त** - जिसने सम्यक्त्व प्राप्त करके संसार को परिमित नहीं किया है वह संसार अपरित्त कहलाता है। अर्थात् जिनकी कायस्थिति अर्ध पुद्गल परावर्तन से अधिक होती है ऐसे भव्य और अभव्य जीव संसार अपरित्त कहलाते हैं।

कायअपरित्ते णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अड्ढाइज्जा पोग्गलपरियट्टा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! काय-अपरित्त निरन्तर कितने काल तक काय-अपरित्त-पर्याय से युक्त रहता है।

उत्तर - हे गौतम! काय अपरित्त जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनंत काल तक यावत् अढाई पुद्गल परावर्तन तक काय-अपरित्त-पर्याय से युक्त रहता है।

विवेचन - जब कोई जीव प्रत्येक शरीरी से निकल कर निगोद में उत्पन्न होता है और वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त रह कर पुनः प्रत्येक शरीरी में उत्पन्न हो जाता है तब काय अपरित्त की जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति होती है तथा जब कोई प्रत्येक शरीरी जीव वहाँ से निकल कर निगोद (सूक्ष्म और बादर) में उत्कृष्ट काल अर्थात् अढाई पुद्गल परावर्तन तक रहता है तब काय अपरित्त की उत्कृष्ट कायस्थिति होती है।

विवेचन - काय अपरित्त की कायस्थिति - प्रज्ञापना सूत्र के मूल पाठ में "वनस्पतिकाल" की बतलाई गयी है परन्तु वह लिपिप्रमाद होना संभव है क्योंकि काय अपरित्त तो मात्र निगोद (सूक्ष्म और बादर) के जीव ही होते हैं। उनकी कायस्थिति तीसरे द्वार में अढ़ाई पुद्गल परावर्तन जितनी ही बतलाई गयी है। अतः काय अपरित्त की भी उत्कृष्ट कायस्थिति अढाई पुद्गल परावर्तन जितनी ही समझनी चाहिए। इसी के आधार से यहाँ मूल पाठ में संशोधन किया गया है।

संसारअपरित्ते णं पुच्छा?

गोयमा! संसारअपरित्ते दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए।

भावार्थ-प्रश्न- हे भगवन्! संसार-अपरित्त कितने काल तक संसार-अपरित्त-पर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! संसार-अपरित्त दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. अनादि-अपर्यवसित और २. अनादि-सपर्यवसित।

विवेचन - संसार अपरित्त दो प्रकार के कहे गये हैं - १. अनादि अनन्त - जो किसी भी काल में संसार से मुक्त नहीं होते हैं वे अनादि अनन्त हैं जैसे अभवी जीव २. अनादि सान्त - जो संसार का का अन्त करेंगे, वे अनादि सान्त संसार अपरित्त कहलाते हैं।

णोपरित्ते-णोअपरित्ते णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं १६॥॥ ५४८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नोपरित्त-नोअपरित्त कितने काल तक लगातार नोपरित्त-नोअपरित्त-पर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! नोपरित्त-नोअपरित्त सादि-अपर्यवसित है। ॥ सोलहवाँ द्वार॥ १६॥

विवेचन - नोपरित्त - नोअपरित्त सिद्ध हैं और वे आदि अनन्त काल तक होते हैं।

१७. पर्याप्त द्वार

पज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवम सयपुहुत्तं साइरेगं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! पर्याप्तक जीव कितने काल तक निरन्तर पर्याप्तक-अवस्था में रहता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपम-पृथक्त्व तक निरन्तर पर्याप्तक-अवस्था में रहता है।

अपज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक जीव, अपर्याप्तक-अवस्था में निरन्तर कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक जीव, जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त तक अपर्याप्तक-अवस्था में रहता है।

विवेचन - यहाँ पर अपर्याप्तक की कायस्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की ही बतलाई गयी है। वह करण अपर्याप्तक की अपेक्षा से समझनी चाहिए। गमा शतक (भगवती सूत्र शतक २४) में वनस्पति में पांचवें गमे की अपेक्षा स्वकाय में ही रहते हुए अनन्त भव करके अनन्त काल तक रह सकना बताया है अतः लब्धि अपर्याप्तक की यहाँ विवक्षा नहीं करके करण अपर्याप्तक की यहाँ पर विवक्षा की गयी है। वाटे वहते सभी जीव करण अपर्याप्तक होते हैं किन्तु लब्धि की अपेक्षा पर्याप्तक होकर मरने वाले जीव वाटे वहते में भी लब्धि पर्याप्तक ही कहलाते हैं। करण का अर्थ साधन (इन्द्रियाँ) होने से इन्द्रिय पर्याप्तक को करण पर्याप्तक कहते हैं। तिर्यंच और मनुष्य के अपर्याप्तक में लब्धि और करण दोनों अपर्याप्तक हो सकते हैं। देव, नैरयिक में तो मात्र करण अपर्याप्तक ही होते हैं।

णोपज्जत्तए-णोअपज्जत्तए णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं १७॥ ५४९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव कितने काल तक नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक अवस्था में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव (सिद्ध भगवान्) सादि-अपर्यवसित है।॥ सत्तरहवाँ द्वार॥ १७॥

विवेचन - पर्याप्तक जीव जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त तक होता है इसके बाद अपर्याप्तक हो सकता है। उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सौ से नौ सौ सागरोपम तक होता है। इतने काल तक लब्धि पर्याप्तक की कायस्थिति संभव हो सकती है। अपर्याप्तक जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक होता है तत्पश्चात् पर्याप्तक लब्धि की प्राप्ति होती है। नो-पर्याप्तक नो-अपर्याप्तक सिद्ध हैं और वे सादि अनन्त हैं क्योंकि सिद्धत्व का कभी नाश नहीं होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१८. सूक्ष्म द्वार

सुहुमे णं भंते! सुहुमेत्ति पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुढविकालो।

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म जीव कितने काल तक सूक्ष्म-पर्याय वाला लगातार रहता है?

उत्तर-हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट पृथ्वीकाल तक वह सूक्ष्म-पर्याय में रहता है।

विवेचन - सूक्ष्म की उत्कृष्ट कायस्थिति पृथ्वीकाल कही गयी है। पृथ्वीकाल यानी जितनी पृथ्वीकाय की कायस्थिति है उतना काल समझना चाहिये।

बायरे णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं असंखिज्ज कालं जाव खेत्तओ अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर जीव कितने काल तक लगातार बादर-पर्याय में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! बादर जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक, काल से असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल तथा क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण बादर पर्याय में रहता है अर्थात् अङ्गुल के असंख्यातवें भाग जितने क्षेत्र में आकाश प्रदेशों का जितना परिमाण होता है उन प्रदेशों जितने समय प्रमाण काल को 'बादर काल' कहा जाता है। अङ्गुल के असंख्यातवें भाग जितने क्षेत्र में भी असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी जितना काल हो जाता है।

णोसुहुमणोबायरे णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं १८॥ ५५०॥

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! नोसूक्ष्म-नोबादर कितने काल तक पूर्वोक्त पर्याय से युक्त रहता है?

उत्तर - हे गौतम! यह पर्याय सादि-अपर्यवसित है। ॥ अठारहवाँ द्वार॥ १८॥

१९. संज्ञी द्वार

सण्णी णं भंते! पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सागरोवम सयपुहुत्तं साइरेगं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संज्ञी जीव कितने काल तक संज्ञीपर्याय में लगातार रहता है।

उत्तर - हे गौतम! संज्ञी जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक शतसागरोपम पृथक्त्व काल तक निरन्तर संज्ञीपर्याय में रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जब कोई जीव असंज्ञी से निकल कर संज्ञी में उत्पन्न होता है और वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य भोग कर पुनः असंज्ञी में उत्पन्न हो जाता है तब जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति होती है।

असण्णी णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंज्ञी जीव असंज्ञी पर्याय में कितने काल तक रहता है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल तक असंज्ञी जीव असंज्ञीपर्याय में निरन्तर रहता है।

विवेचन - जब कोई जीव संज्ञी से निकल कर असंज्ञी में उत्पन्न होता है और वहाँ अन्तर्मुहूर्त्त रह कर पुनः संज्ञी में उत्पन्न हो जाता है तब जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति होती है और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल कहा गया है क्योंकि असंज्ञी कहने से वनस्पतिकाय का भी ग्रहण होता है।

णोसण्णी णोअसण्णी णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं १९॥ ५५१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव कितने काल तक नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी रहता है?

उत्तर - हे गौतम! नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव सादि-अपर्यवसित है। ॥ उन्नीसवाँ द्वार॥ १९॥

विवेचन - नो संज्ञी-नोअसंज्ञी जीव प्रमुख रूप से तो सिद्ध भगवान् ही होते हैं। संसारी जीवों में तेरहवें एवं चौदहवें गुणस्थान वाले केवलज्ञानी भी नो संज्ञी-नो असंज्ञी कहे जाते हैं। इनकी स्थिति तो थोड़ी ही होती है। यहाँ पर सिद्धों की अपेक्षा से ही कायस्थिति बतलाई गयी है।

२० भवसिद्धिक द्वार

भवसिद्धिए णं पुच्छा?

गोयमा! अणाइए सपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भवसिद्धिक (भव्य) जीव निरन्तर कितने काल तक भवसिद्धिक पर्याय युक्त रहता है?

उत्तर - हे गौतम! भवसिद्धिक (भव्य) जीव अनादि-सपर्यवसित है।

अभवसिद्धिए णं पुच्छा?

गोयमा! अणाइए अपज्जवसिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव लगातार कितने काल तक अभवसिद्धिक पर्याय से युक्त रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव अनादि-अपर्यवसित है।

णोभवसिद्धिए-णोअभवसिद्धिए णं पुच्छा?

गोयमा! साइए अपज्जवसिए॥ दारं २०॥ ५५२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव कितने काल तक लगातार नोभवसिद्धिक-नोअवसिद्धिक-अवस्था में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव सादि-अपर्यवसित है।

॥ बीसवां द्वार॥ २०॥

विवेचन - भव्य जीव अनादि सान्त हैं क्योंकि भव्यत्व पारिणामिक भाव है इसलिए वह अनादि है किन्तु मोक्ष में चले जाने पर उसका सद्भाव नहीं रहता इसलिए सान्त है। अभव्य अनादि अनंत है क्योंकि अभव्यत्व पारिणामिक भाव होने से अनादि है और अभव्यत्व का कभी नाश नहीं होता इसलिए अनन्त है। नो भव्य-नो अभव्य सिद्ध है और वे सादि अनन्त हैं।

यहाँ पर भवसिद्धिक जीवों में एक ही भङ्ग 'अनादि सपर्यवसित' बताया गया है अतः ग्रन्थों में जो 'जाति भव्य' और 'राशि भव्य' बताये गये हैं। वे आगम से उचित नहीं हैं।

२१. अस्तिकाय द्वार

धम्मत्थिकाए णं पुच्छा?

गोयमा! सव्वद्धं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! धर्मास्तिकाय कितने काल तक लगातार धर्मास्तिकाय रूप में रहता है?

उत्तर - हे गौतम! वह सर्वकाल रहता है।

एवं जाव अद्धासमए॥ दारं २१॥ ५५३॥

भावार्थ - इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय (कालद्रव्य) के अवस्थानकाल के लिये भी समझना चाहिए। ॥ इक्कीसवां द्वार॥ २१॥

विवेचन - धर्मास्तिकाय आदि छहों द्रव्य अनादि अनन्त हैं। ये सदैव अपने स्वरूप में अवस्थित रहते हैं। अद्धासमय (काल) भी प्रवाह की अपेक्षा सर्वकाल भावी होने से मूल पाठ में कहा है - **'एवं जाव अद्धा समए'** - इसी प्रकार यावत् अद्धा समय तक समझना चाहिए।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

२२. चरम द्वार

चरिमे णं पुच्छा?

गोयमा! अणाइए सपज्जवसिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चरम जीव कितने काल तक चरम पर्याय वाला रहता है?

उत्तर - हे गौतम! चरम जीव अनादि-सपर्यवसित होता है।

अचरिमे णं पुच्छा?

गोयमा! अचरिमे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा - अणाइए वा अपज्जवसिए, साइए वा अपज्जवसिए॥ दारं २२॥ ५५४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अचरमजीव कितने काल तक अचरमपर्याय-युक्त रहता है?

उत्तर - हे गौतम! अचरम दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है-१. अनादि अपर्यवसित और २. सादि-अपर्यवसित।

विवेचन - जिसका भव चरम अर्थात् अन्तिम होगा वह 'चरम' कहलाता है। यह अभेद से चरम-भव्य कहलाता है। इससे विपरीत जो चरम नहीं है वह अचरम कहलाता है। अभव्य जीव अचरम होते हैं क्योंकि उनका कभी भी चरम भव नहीं होगा। सिद्ध भी अचरम हैं क्योंकि उनमें भी चरमपना (चरमत्व) नहीं होता। अचरम दो प्रकार के कहे गये हैं - अनादि अनन्त और सादि अनन्त इनमें से अनादि अनन्त अभव्य हैं और सादि अनन्त सिद्ध हैं।

अभव्य जीव कभी भी संसार का अन्त करने वाले नहीं होने से एवं सिद्ध भगवान् सिद्ध अवस्था का कभी भी अन्त करने वाले नहीं होने से अभव्य एवं सिद्ध इन दोनों को अचरम बताया गया है।

॥ पण्णवणाए भगवइए अट्ठारसमं कायट्ठिइपयं समत्तं॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का अठारहवाँ कायस्थिति पद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगूणवीसइमं सम्मत्तपयं

उन्नीसवाँ सम्यक्त्व पद

प्रज्ञापना सूत्र के अठारहवें पद में कायस्थिति का वर्णन किया गया है इस उन्नीसवें पद में कौनसी कायस्थिति में सम्यग्-दृष्टि आदि भेद से कितने प्रकार के जीव होते हैं इसका वर्णन किया जाता है।

जीव की उन्नति और अवनति के लिए मोक्ष मार्ग और संसार मार्ग ये दो मार्ग हैं। जब जीव सम्यग्दृष्टि हो जाता है तो वह मोक्ष मार्ग की सम्यग् आराधना करके मोक्ष प्राप्त कर लेता हैं। जब तक वह मिथ्यादृष्टि रहता है तब तक उसकी प्रवृत्ति संसार मार्ग की ओर ही होती है। उसकी जितनी भी धार्मिक क्रिया, व्रताचरण, तपश्चर्या, नियम, त्याग प्रत्याख्यान आदि क्रियाएं होती हैं वे अशुद्ध होती हैं, उसका पराक्रम अशुद्ध होता है उससे संसार वृद्धि ही होती है। कर्म क्षय करके मोक्ष प्राप्ति वह नहीं कर सकता। इसी आशय से शास्त्रकार प्रस्तुत पद में तीनों दृष्टियों की चर्चा करते हैं। जिसका प्रथम सूत्र है -

जीवा णं भंते! किं सम्म दिट्ठी, मिच्छ दिट्ठी, सम्मा मिच्छ दिट्ठी?

गोयमा! जीवा सम्म दिट्ठी वि, मिच्छ दिट्ठी वि, सम्मा मिच्छ दिट्ठी वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि हैं अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव सम्यग्दृष्टि भी हैं, मिथ्यादृष्टि भी हैं और सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में समुच्चय जीवों के विषय में दृष्टि की प्ररूपणा की गई है। तीनों दृष्टियों का स्वरूप इस प्रकार है -

प्रश्न - सम्यग् दृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर - **"सम्यग्-अविपरीता दृष्टि-दर्शनं रुचिस्तत्त्वानि प्रति येषां ते सम्यग्दृष्टिकाः।"**

अर्थ - जो जीव आदि पदार्थों को सम्यग् प्रकार से जानता है और उन पर श्रद्धा करता है। वह सम्यग्दृष्टि जीव है।

प्रश्न - मिथ्यादृष्टि किसे कहते हैं?

उत्तर - **'मिथ्यादृष्टिकाः-मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदयादरुचित जिनवचना।'**

अर्थ - वीतराग भगवन्तों के द्वारा कथित जीवादि तत्त्वों के ऊपर जिसकी श्रद्धा विपरीत हो, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्रश्न - मिश्रदृष्टि (सम्यग् मिथ्यादृष्टि) किसे कहते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - सम्यक् मिथ्या च दृष्टिर्येषां ते सम्यग्मिथ्यादृष्टिका:-जिनोक्त-भावान् प्रति उदासीना:

अर्थ - जिसकी दृष्टि न सम्यग् है न मिथ्या है और जो किसी प्रकार का निर्णय नहीं कर सकता है और जिनेन्द्र भगवान् के वचनों के प्रति उदासीन (रुचि और अरुचि दोनों से रहित) है। उसे मिश्र दृष्टि कहते हैं। सन्नी जीवों में ही मिश्र दृष्टि पाई जाती है। इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त (पृथक्त्व श्वासोच्छ्वास) है। अन्तर्मुहूर्त्त के बाद वह जीव या तो सम्यग्दृष्टि बन जाता है अथवा मिथ्यादृष्टि बन जाता है।

एवं णेरइया वि।

भावार्थ - इसी प्रकार नैरयिक जीवों में भी तीनों दृष्टियाँ होती हैं।

असुरकुमारा वि एवं चेव जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक के भवनवासी देव भी इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और सम्यग्-मिथ्यादृष्टि भी होते हैं।

पुढवीकाइया णं पुच्छा?

गोयमा! पुढवीकाइया णो सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, णो सम्मामिच्छदिट्ठी, एवं जाव वणस्सइकाइया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं, मिथ्यादृष्टि होते हैं या सम्यग् मिथ्यादृष्टि होते हैं? यह प्रश्न है।

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव सम्यग्दृष्टि नहीं होते, वे मिथ्यादृष्टि होते हैं, सम्यग् मिथ्यादृष्टि नहीं होते। इसी प्रकार यावत् अप्कायिकों, तेजस्कायिकों, वायुकायिकों एवं वनस्पतिकायिकों में दृष्टि विषयक प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए।

बेइंदिया णं पुच्छा?

गोयमा! बेइंदिया सम्मदिट्ठी, मिच्छदिट्ठी, णो सम्मामिच्छदिट्ठी। एवं जाव चउरिंदिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं, मिथ्यादृष्टि होते हैं, अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीव सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं किन्तु सम्यग्मिथ्यादृष्टि नहीं होते। इसी प्रकार चउरिन्द्रिय जीवों तक प्ररूपणा करना चाहिए।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया मणुस्सा वाणमंतर जोइसिय वेमाणिया य सम्मदिट्ठी वि मिच्छदिट्ठी वि सम्मामिच्छदिट्ठी वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और मिश्र (सम्यग्मिथ्या) दृष्टि भी होते हैं।

सिद्धा णं पुच्छा?

गोयमा! सिद्धा सम्मदिट्ठी, णो मिच्छदिट्ठी, णो सम्मामिच्छदिट्ठी॥ ५५५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सिद्ध (मुक्त) जीव सम्यग्दृष्टि होते हैं, मिथ्यादृष्टि होते हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध जीव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, वे न तो मिथ्यादृष्टि होते हैं और न ही सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डक के जीवों में तीन दृष्टियों में से कौन-कौनसी दृष्टियाँ पाई जाती है इसका वर्णन किया गया है। सास्वादन सम्यक्त्व सहित जीव पृथ्वीकाय आदि में उत्पन्न नहीं होता क्योंकि **'उभयाभावो पुढवाइएसु'** पृथ्वीकायिक आदि में उभय-सम्यक्त्व और सम्यक्त्व सहित जीव की उत्पत्ति का अभाव है - ऐसा शास्त्र वचन है। बेइन्द्रिय आदि में सास्वादन सम्यक्त्व सहित जीव उत्पन्न होता है अतः पृथ्वीकाय आदि में सम्यग्दृष्टि का निषेध किया है और बेइन्द्रिय आदि में सम्यग्दृष्टि कही गयी है। सम्यग् मिथ्यादृष्टि का परिणाम स्वभाव से ही संज्ञी पंचेन्द्रियों को होता है शेष को नहीं, अतः एकेन्द्रियों और तीन विकलेन्द्रियों में सम्यग्मिथ्यादृष्टि का निषेध किया है।

यहाँ पर जिन दण्डकों में तीनों दृष्टियाँ बतलाई गयी है उन दण्डक वाले एक एक जीव में एक साथ एक समय में एक ही दृष्टि होती है क्योंकि तीनों दृष्टियाँ परस्पर विरोधी होने से एक जीव में एक समय में एक साथ एक ही दृष्टि पायी जा सकती है।

इस पद में वैमानिक देवों में समुच्चय रूप से वर्णन होने से तीनों दृष्टियों का कथन किया गया है। अलग-अलग देवलोकों का वर्णन नहीं किया गया है। पूज्य अमोलक ऋषि जी म. सा. ने इस पद में कुछ पाठ बढ़ा दिया है और जीवाभिगम सूत्र में भी पाठ बढ़ा दिया गया है। किन्तु भगवती सूत्र (शतक तेरह उद्देशक एक दो तथा शतक चौबीस उद्देशक चौबीस) का पाठ सीधा नहीं होने से तथा विशेष उपयोग बिना मालूम नहीं पड़ने से वह पाठ जैसा का जैसा ही रह गया अतः प्राचीन प्रतियों से भी नव ग्रैवेयक देवों में तीनों दृष्टियाँ होना स्पष्ट होता है।

तीनों दृष्टियों की अल्प बहुत्व इस प्रकार से होती हैं- १. सब से थोड़े मिश्र दृष्टि जीव २. उनसे सम्यग्दृष्टि जीव अनन्त गुणा ३. उनसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त गुणा।

॥ पण्णवणाए भगवईए एगूणवीसइमं सम्मत्तपयं समत्तं॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का उन्नीसवाँ सम्यक्त्व पद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीसइमं अंतकिरियापयं

बीसवां अन्तक्रिया पद

मोक्ष में जाने के लिए जो तप संयम रूप क्रिया की जाती है उसे अन्तक्रिया कहते हैं। इसके अन्तर और परम्पर ऐसे दो भेद किये गये हैं। उसी भव में मोक्ष जाने की क्रिया को अनन्तर अन्तक्रिया कहते हैं और अनेक भवों में मोक्ष जाने की क्रिया को परम्पर अन्तक्रिया कहते हैं। उसी भव में सभी कर्मों का अन्त कर देने वाला अन्तकृत कहलाता है। कर्मों का अन्त करने की क्रिया को अन्तक्रिया कहा जाता है। इस अन्तक्रिया का विचार प्रस्तुत पद में २४ दण्डकवर्ती जीवों में दस द्वारों द्वारा समझाया गया है। उन द्वारों का वर्णन करने वाली गाथा इस प्रकार है-

णेरइय अंतकिरिया अणंतरं एगसमय उव्वट्टा।

तित्थगर चक्कि बल वासुदेव मंडलिय रयणा य॥ दारगाहा॥

भावार्थ - अन्तक्रियासम्बन्धी १० द्वार - १. नैरयिकों की अन्तक्रिया २. अनन्तरागत जीव अन्तक्रिया ३. एक समय में अन्तक्रिया ४. उद्वर्त्तन - जीवों की उत्पत्ति ५. तीर्थंकर द्वार ६. चक्रवर्ती द्वार ७. बलदेव द्वार ८. वासुदेव द्वार ९. माण्डलिक द्वार और १०. रत्न द्वार-चक्रवर्ती के सेनापति आदि।

१. अंतक्रिया द्वार

जीवे णं भंते! अंतकिरियं करेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए णो करेज्जा।

कठिन शब्दार्थ - अंतकिरियं - अन्तक्रिया-जन्म मरण से छूट कर इस संसार का अन्त करने वाली क्रिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीव अन्तक्रिया करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! कोई जीव अन्तक्रिया करता है और कोई जीव नहीं करता है।

एवं णेरइए जाव वेमाणिए।

भावार्थ - इसी प्रकार नैरयिक से लेकर वैमानिक तक की अन्तक्रिया के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।

णेरइए णं भंते! णेरइएसु अंतकिरियं करेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक नैरयिकों (नरकगति) में रहता हुआ अन्तक्रिया करता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

णेरइए णं भंते! असुरकुमारेसु अंतकिरियं करेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक असुरकुमारों में अन्तक्रिया करता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं जाव वेमाणिएसु। णवरं मणुस्सेसु अंतकिरियं करेज्ज त्ति पुच्छा।

गोयमा! अत्थेगइए करेज्जा, अत्थेगइए णो करेज्जा।

भावार्थ - इसी प्रकार नैरयिक जीवों की वैमानिकों तक में अन्तक्रिया की असमर्थता समझ लेनी चाहिए।

प्रश्न - हे भगवन्! विशेष प्रश्न यह है कि नैरयिक क्या मनुष्यों में आकर अन्तक्रिया करता है?

उत्तर - हे गौतम! कोई नैरयिक अन्तक्रिया करता है और कोई नहीं करता।

एवं असुरकुमारा जाव वेमाणिए। एवमेव चउवीसं दंडगा भवंति॥ ५५६॥

भावार्थ - इसी प्रकार असुरकुमार से लेकर वैमानिक तक के विषय में भी समझ लेना चाहिए। इसी तरह चौवीस दण्डकों में से प्रत्येक का चौवीस दण्डकों में अन्तक्रिया का निरूपण करना चाहिए।

विवेचन - जिस क्रिया के पश्चात् फिर कभी दूसरी क्रिया न करनी पड़े, वह 'अन्तक्रिया' कहलाती है अथवा कर्मों का सर्वथा अन्त करने वाली क्रिया अन्तक्रिया कहलाती है। इन दोनों व्याख्याओं का आशय एक ही है कि - समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना।

प्रश्न यह है कि क्या जीव संसार में ही रहता है या संसार का अन्त कर मोक्ष प्राप्त कर लेता है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए वर्णन इस प्रकार हैं -

प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीव अन्तक्रिया करता है?

उत्तर - हे गौतम! कोई जीव करता है और कोई जीव नहीं करता है।

प्रश्न - हे भगवन्! इसका क्या कारण है?

उत्तर - हे गौतम! भव्य जीव अन्तक्रिया करते हैं और अभव्य जीव अन्तक्रिया नहीं करते हैं।

इस तरह नैरयिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक में कहना चाहिए। किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि मनुष्य के सिवाय अन्य किसी भी दण्डक के जीव उसी भव में अन्तक्रिया नहीं कर सकते। वे नरकादि दण्डकों से निकल कर मनुष्य भव में आकर फिर अन्तक्रिया कर सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. अनन्तर द्वार

णेरइया णं भंते! किं अणंतरागया अंतकिरियं पकरेंति, परंपरागया अंतकिरियं पकरेंति?

गोयमा! अणंतरागया वि अंतकिरियं पकरेंति, परंपरागया वि अंतकिरियं पकरेंति।

कठिन शब्दार्थ - अणंतरागया - अनन्तरागत, **परंपरागया** - परम्परागत।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव क्या अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं, अथवा परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक अनन्तरागत अन्तक्रिया भी करते हैं और परम्परागत अन्तक्रिया भी करते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत द्वार में अनन्तरागत और परम्परागत अन्तक्रिया का कथन किया गया है। जो जीव नैरयिक आदि भव से मर कर व्यवधान बिना सीधा ही मनुष्य भव में आकर अन्तक्रिया करता है वह अनन्तरागत अंतक्रिया कहलाती है। जो जीव नैरयिक आदि भव के पश्चात् एक या अनेक भव करके फिर मनुष्य भव में आकर अन्तक्रिया करता है उसे परम्परागत अन्त क्रिया कहते हैं। समुच्चय रूप से नैरयिक जीव दोनों प्रकार की अन्तक्रिया करते हैं।

एवं रयणप्पभा पुढवी णेरइया वि जाव पंकप्पभा पुढवी णेरइया।

भावार्थ - इसी प्रकार रत्नप्रभा नरकपृथ्वी के नैरयिकों से लेकर पंकप्रभा नरकपृथ्वी के नैरयिकों तक की अन्तक्रिया के विषय में समझ लेना चाहिए।

धूमप्पभा पुढवी णेरइया णं पुच्छा?

गोयमा! णो अणंतरागया अंतकिरियं पकरेंति, परंपरागया अंतकिरियं पकरेंति, एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी णेरइया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं या परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक अनन्तरागत अन्तक्रिया नहीं करते, किन्तु परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं। इसी प्रकार अधःसप्तमपृथ्वी तक के नैरयिकों की अन्तक्रिया के विषय में जान लेना चाहिए।

विवेचन - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा और पंकप्रभा इन चारों नरक पृथ्वियों के नैरयिक अनन्तरागत अन्तक्रिया भी करते हैं और परम्परागत अन्तक्रिया भी करते हैं किन्तु धूमप्रभा, तमःप्रभा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और तमस्तम:प्रभा पृथ्वियों के नैरयिक केवल परम्परागत अन्तक्रिया ही करते हैं अर्थात् नरक के बाद एक या अनेक भव करके फिर मनुष्य भव में आकर तथाविध साधना करके मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

असुरकुमारा जाव थणियकुमारा पुढवी-आउ-वणस्सइकाइया य अणंतरागया वि अंतकिरियं पकरेंति परंपरागया वि अंतकिरियं पकरेंति।

भावार्थ - असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपति देव तथा पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीव अन्तरागत भी अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत भी अन्तक्रिया करते हैं।

तेउ वाउ बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिया णो अणंतरागया अंतकिरियं पकरेंति, परंपरागया अंतकिरियं पकरेंति।

भावार्थ - तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय त्रस जीव अनन्तरागत अन्तक्रिया नहीं करते, किन्तु परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं।

सेसा अणंतरागया वि अंतकिरियं पकरेंति, परंपरागया वि अंतकिरियं पकरेंति ॥५५७॥

भावार्थ - शेष सभी जीव अनन्तरागत भी अन्तक्रिया करते हैं और परम्परागत भी अन्तक्रिया करते हैं।

विवेचन - भवनपति देव एवं पृथ्वी अप् तथा वनस्पतिकाय में से आने वाले जीव दोनों प्रकार से अन्तक्रिया कर सकते हैं जबकि तेजस्कायिक् वायुकायिक एवं तीन विकलेन्द्रिय के जीव परम्परागत अन्तक्रिया ही कर सकते हैं। इनके अलावा तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में जिनकी योग्यता होती है वे अनन्तरागत अन्तक्रिया करते हैं और जिनकी योग्यता नहीं होती वे परम्परागत अन्तक्रिया करते हैं।

३. एक समय द्वार

अणंतरागया णं भंते! णेरइया एगसमए केवइया अंतकिरियं पकरेंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं दस।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनन्तरागत कितने नैरयिक एक समय में अन्तक्रिया करते हैं?

उत्तर- हे गौतम! वे एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट दस अन्तक्रिया करते हैं।

रयणप्पभा पुढवी णेरइया वि एवं चेव जाव वालुयप्पभा पुढवी णेरइया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - अन्तरागत रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक भी इसी प्रकार अन्तक्रिया करते हैं यावत् वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिक भी इसी प्रकार अन्तक्रिया करते हैं।

अणंतरागया णं भंते! पंकप्पभा पुढवीणेरइया एगसमएणं केवइया अंतकिरियं पकरेंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अन्तरागत पंकप्रभापृथ्वी के कितने नैरयिक एक समय में अन्तक्रिया करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनन्तरागत पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिक एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार अन्तक्रिया करते हैं।

अणंतरागया णं भंते! असुरकुमारा एगसमए केवइया अंतकिरियं पकरेंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं दस।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनन्तरागत कितने असुरकुमार एक समय में अन्तक्रिया करते हैं?

उत्तर- हे गौतम! वे एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट दस अन्तक्रिया करते हैं।

अणंतरागयाओ णं भंते! असुरकुमारीओ एगसमए केवइया अंतकिरियं पकरेंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं पंच।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनन्तरागत कितनी असुरकुमारियाँ एक समय में अन्तक्रिया करती हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनन्तरागत असुरकुमारियाँ एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट पांच अन्तक्रिया करती हैं।

एवं जहा असुरकुमारा सदेवीया तहा जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - इसी प्रकार जैसे अनन्तरागत असुरकुमारों तथा उनकी देवियों की संख्या एक समय में अन्तक्रिया करने की बताई है उतनी ही स्तनितकुमारों तथा उनकी देवियों तक की संख्या अन्तक्रिया के सम्बन्ध में समझ लेना चाहिए।

अणंतरागया णं भंते! पुढविकाइया एगसमएणं केवइया अंतकिरियं पकरेंति?

गोयमा! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं चत्तारि।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! कितने अनन्तरागत पृथ्वीकायिक एक समय में अन्तक्रिया करते हैं?

उत्तर- हे गौतम! वे एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट चार अन्तक्रिया करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं आउकाइया वि चत्तारि, वणस्सइकाइया छ, पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया दस, तिरिक्खजोणिणीओ दस, मणुस्सा दस, मणुस्सीओ वीसं, वाणमंतरा दस, वाणमंतरीओ पंच, जोइसिया दस, जोइसिणीओ वीसं, वेमाणिया अट्ठसयं, वेमाणिणीओ वीसं॥ ५५८॥

भावार्थ - इसी प्रकार अप्कायिक आदि जघन्य तो एक समय में एक दो या तीन और उत्कृष्ट अप्कायिक भी चार अन्तक्रिया करते हैं, वनस्पतिकायिक छह, पंचेन्द्रिय तिर्यंच दस, पंचेन्द्रिय तिर्यंच स्त्रियाँ दस, मनुष्य दस, मनुष्यनियां बीस, वाणव्यन्तर देव दस, वाणव्यन्तर देवियाँ पांच, ज्योतिषी देव दस, ज्योतिषी देवियाँ बीस, वैमानिक देव एक सौ आठ, वैमानिक देवियाँ बीस अन्तक्रिया करती है।

विवेचन - तीसरे द्वार में अनन्तरागत अन्तक्रिया कर सकने वाले नैरयिक आदि एक समय में जघन्य और उत्कृष्ट कितनी संख्या में अन्तक्रिया करते हैं? इसकी प्ररूपणा की गई है।

यद्यपि वनस्पतिकाय से निकले हुए एक समय में एक, दो, तीन और उत्कृष्ट छह सिद्ध हो सकते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय से निकले हुए उत्कृष्ट चार सिद्ध हो सकते हैं। तथापि पृथ्वी एवं अप्काय से निकलने वाले बार-बार सिद्ध होते रहते हैं। वनस्पति से निकले हुए कम बार सिद्ध होते हैं। अतः पृथ्वी, पानी से निकले हुए अधिक सिद्ध होना बताया है। वनस्पति के मूल आदि दस ही भेदों से निकले हुए सिद्ध हो सकते हैं या नहीं? इसका वर्णन देखने में नहीं आया है। पृथ्वी, पानी, वनस्पति में एक भवावतारी जीव संख्याता मिल सकते हैं। ज्यादा संभावना नहीं लगती है।

४. उद्वर्त्तन द्वार

णेरइए णं भंते! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव, नैरयिकों में से उद्वर्त्तन (निकल) कर क्या सीधा नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

णेरइए णं भंते! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता असुरकुमारेसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव नैरयिकों में से निकल कर क्या सीधा असुरकुमारों में उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं णिरंतरं जाव चउरिंदिएसु पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इसी तरह नैरयिक नैरयिकों में से निकल कर निरन्तर (व्यवधान रहित-सीधा) नागकुमारों से ले कर चतुरिन्द्रिय जीवों तक में उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि नैरयिक जीव नरक से निकल कर सीधा नैरयिकों में, भवनपतियों में और विकलेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं हो सकता है। क्योंकि नैरयिक नरक से निकल कर तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं।

णेरइए णं भंते! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव नैरयिकों में से उद्वर्त्तन कर अनन्तर (व्यवधान रहित) सीधा पंचेन्द्रियतिर्यंच में उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर - हे गौतम! इनमें से कोई उत्पन्न हो सकता है और कोई उत्पन्न नहीं हो सकता।

जे णं भंते! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जेज्जा से णं भंते! केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए?

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो नैरयिक नैरयिकों में से निकल कर सीधा तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है, क्या वह केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! उनमें से कोई धर्मश्रवण को प्राप्त करता है और कोई नहीं कर सकता।

विवेचन - नैरयिकों को देवों के संयोग से और सम्यग्दृष्टि नैरयिकों से धर्म श्रवण का अवसर मिल सकता है।

जे णं भंते! केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए से णं केवलं बोहिं बुज्झेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए बुज्झेज्जा, अत्थेगइए णो बुज्झेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो केवलि-प्ररूपित धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है, क्या वह केवल (शुद्ध) बोधि को समझ सकता है?

उत्तर - हे गौतम! इनमें से कोई केवलबोधि को समझ पाता है और कोई नहीं समझ पाता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे णं भंते! केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा?

गोयमा! सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा।

कठिन शब्दार्थ - केवलं - केवल (विशुद्ध), **बोहिं** - बोधि (धर्मप्राप्ति-धर्मदेशना) को, **सद्दहेज्जा** - श्रद्धा करता है, **पत्तिएज्जा** - प्रतीति करता है, **रोएज्जा** - रुचि करता है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो केवलबोधि को समझ पाता है, क्या वह उस पर श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है तथा रुचि करता है?

उत्तर - हाँ गौतम! वह श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है तथा रुचि करता है।

विवेचन - "बोहिं बुज्झेज्जा" - जिन प्रणित तत्त्वों का बोध होना बोधि लाभ कहलाता है। उस बोध पर श्रद्धा, प्रतीति होना रुचि होना समकित कहा जाता है। क्योंकि यहाँ पर पहले बोधि लाभ होना तथा बाद में श्रद्धा, प्रतीति, रुचि होना बतलाया गया है। वास्तविक बोध हो जाने पर उस पर श्रद्धा आदि होती ही है। इसीलिए बोधिलाभ के होते ही श्रद्धा आदि का होना बताया गया है।

जे णं भंते! सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा से णं आभिणिबोहिय णाण सुय णाणाइं उप्पाडेज्जा?

हंता गोयमा! उप्पाडेज्जा।

कठिन शब्दार्थ - उप्पाडेज्जा - उपार्जित (प्राप्त) कर लेता है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो उस पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता है क्या वह आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान प्राप्त कर लेता है?

उत्तर - हाँ गौतम! वह इन ज्ञानों को प्राप्त कर सकता है।

जे णं भंते! आभिणिबोहिय णाण सुय णाणाइं उप्पाडेज्जा से णं संचाएज्जा सीलं वा वयं वा गुणं वा वेरमणं वा पच्चक्खाण वा पोसहोववासं वा पडिवज्जित्तए?

गोयमा! अत्थेगइए संचाएज्जा, अत्थेगइए णो संचाएज्जा।

कठिन शब्दार्थ - सीलं - शील (ब्रह्मचर्य) **वयं** - व्रत, **गुणं** - गुण (भावना आदि) अथवा उत्तर गुण, **वेरमणं** - विरति-अतीत स्थूल प्राणातिपात आदि से विरति, **पच्चक्खाणं** - प्रत्याख्यान-भविष्यकाल के लिए स्थूल प्राणातिपात आदि का त्याग, **पोसहोववासं** - पौषधोपवास-अष्टमी आदि पर्वों में उपवास सहित पौषध, **पडिवज्जित्तए** - अंगीकार कर सकता है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो अनन्तरागत तिर्यंच पंचेन्द्रिय आभिनिबोधिकज्ञान एवं श्रुतज्ञान को प्राप्त कर लेता है, क्या वह शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान अथवा पौषधोपवास अंगीकार करने में समर्थ होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! कोई शील यावत् पौषधोपवास को अंगीकार कर सकता है और कोई नहीं कर सकता है।

जे णं भंते! संचाएज्जा सीलं वा जाव पोसहोववासं वा पडिवज्जित्तए से णं ओहिणाणं उप्पाडेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! जो शील यावत् पौषधोपवास अंगीकार कर सकता है क्या वह अवधिज्ञान को प्राप्त कर सकता है?

उत्तर-हे गौतम! उनमें से कोई अवधिज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई प्राप्त नहीं कर सकता है।

जे णं भंते! ओहिणाणं उप्पाडेज्जा से णं संचाएज्जा मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे ॥ ५५१ ॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! जो अवधिज्ञान प्राप्त कर लेता है, क्या वह मुण्डित होकर अगारत्व से अनगारत्व (अनगार-धर्म) में प्रव्रजित होने में समर्थ है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

णेरइए णं भंते! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता मणुस्सेसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! नैरयिक जीव, नैरयिकों में से उद्वर्तन (निकल) कर क्या सीधा मनुष्यों में उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर - हे गौतम! उनमें से कोई मनुष्यों में उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।

जे णं भंते! उववज्जेज्जा से णं केवलि पण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए?

गोयमा! जहा पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु जाव जे णं भंते! ओहिणाणं उप्पाडेज्जा से णं संचाएज्जा मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?

गोयमा! अत्थेगइए संचाएज्जा, अत्थेगइए णो संचाएज्जा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! जो नैरयिकों में से अनन्तरागत जीव मनुष्यों में उत्पन्न होता है, क्या वह केवलि-प्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में आकर उत्पन्न जीव के विषय में धर्मश्रवण से लेकर अवधिज्ञान प्राप्त कर लेता है, तक कहा है, वैसे ही यहाँ कहना चाहिए। विशेष प्रश्न यह है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे भगवन्! जो मनुष्य अवधिज्ञान प्राप्त कर लेता है, क्या वह मुण्डित होकर अगारत्व से अनगारधर्म में प्रव्रजित हो सकता है?

हे गौतम! उनमें से कोई प्रव्रजित हो सकता है और कोई प्रव्रजित नहीं हो सकता है।

जे णं भंते! संचाएज्जा मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए से णं मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो मनुष्य मुण्डित होकर अगारित्व से अनगारधर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ है, क्या वह मन:पर्यवज्ञान को उपार्जित कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! उसमें से कोई मन:पर्यवज्ञान को उपार्जित कर सकता है और कोई उपार्जित नहीं कर सकता है।

जे णं भंते! मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा से णं केवलणाणं उप्पाडेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए उप्पाडेज्जा, अत्थेगइए णो उप्पाडेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो मनुष्य मन:पर्यवज्ञान को उपार्जित कर लेता है, क्या वह केवलज्ञान को उपार्जित कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! उसमें से कोई केवलज्ञान को उपार्जित कर सकता है और कोई उपार्जित नहीं कर सकता है।

जे णं भंते! केवलणाणं उप्पाडेज्जा से णं सिज्झेज्जा बुज्झेज्जा मुच्चेज्जा सव्वदुक्खाणं अंतं करेज्जा?

गोयमा! सिज्झेज्जा जाव सव्वदुक्खाणमंतं करेज्जा।

कठिन शब्दार्थ - सिज्झेज्जा - सर्वकार्य सिद्ध कर लेता है, कृतकृत्य हो जाता है, **बुज्झेज्जा** - समस्त लोकालोक के स्वरूप को जानता है, **मुच्चेज्जा** - भवोपग्राही कर्मों से मुक्त हो जाता है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो मनुष्य केवलज्ञान को उपार्जित कर लेता है, क्या वह सिद्ध हो सकता है, बुद्ध हो सकता है, मुक्त हो सकता है, यावत् सब दु:खों का अन्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! वह अवश्य ही सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है, यावत् समस्त दु:खों का अन्त कर देता है।

विवेचन - नरक से उद्वर्त्तन कर तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले जीव केवलि प्रज्ञप्त धर्म श्रवण, शुद्ध बोधि, श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, शीलव्रत गुण-विरमण प्रत्याख्यान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पौषधोपवास ग्रहण, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान और सिद्ध इनमें से क्या क्या प्राप्त कर सकते हैं? इसकी चर्चा प्रस्तुत सूत्र में की गई है।

णेरइए णं भंते! णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता वाणमंतर जोइसिय वेमाणिएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे॥ ५६०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव, नैरयिकों में से निकल कर क्या सीधा वाणव्यन्तर ज्योतिषी या वैमानिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

असुरकुमारे णं भंते! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार, असुरकुमारों में से निकल कर सीधा नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

असुरकुमारे णं भंते! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता असुरकुमारेसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। एवं जाव थणियकुमारेसु।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार, असुरकुमारों में से निकल कर सीधा असुरकुमारों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों में भी असुरकुमार, असुरकुमारों में से उद्वर्त्तन करके सीधे उत्पन्न नहीं होते, यह समझ लेना चाहिए।

असुरकुमारे णं भंते! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पुढविकाइएसु उववज्जेज्जा?

हंता गोयमा! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या असुरकुमार, असुरकुमारों में से निकल कर सीधा पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हाँ गौतम! उसमें से कोई पृथ्वीकायिक में उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता।

जे णं भंते! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो असुरकुमार पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है, क्या वह केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं आउ वणस्सइसु वि।

भावार्थ - इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों के उत्पन्न होने तथा धर्मश्रवण के विषय में समझ लेना चाहिए।

असुरकुमारे णं भंते! असुरकुमारेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तेउ वाउ बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। अवसेसेसु पंचसु पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाइसु असुरकुमारेसु जहा णेरइओ, एवं जाव थणियकुमारा॥ ५६१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार, असुरकुमारों में से निकल कर क्या सीधा अनन्तर तेजस्कायिक, वायुकायिक तथा बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अवशिष्ट पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक आदि मनुष्य वाणव्यन्तर, ज्योतिषी एवं वैमानिक इन पांचों में असुरकुमार की उत्पत्ति आदि की वक्तव्यता नैरयिक की उत्पत्ति आदि की वक्तव्यता के अनुसार समझनी चाहिए। इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना चाहिए।

पुढवीकाइए णं भंते! पुढवीकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिकों में से उद्वर्त्तन कर क्या सीधा नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु वि।

भावार्थ - इस प्रकार की वक्तव्यता असुरकुमारों से स्तनितकुमारों तक की उत्पत्ति के विषय में समझ लेना चाहिए।

पुढवीकाइए णं भंते! पुढवीकाइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पुढवीकाइएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव, पृथ्वीकायिकों में से निकल कर क्या सीधा पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! उनमें से कोई पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।

जे णं भंते! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उनमें से जो पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है, क्या वह केवलिप्रज्ञप्त धर्मश्रवण प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं आउक्काइयासु णिरंतरं भाणियव्वं जाव चउरिंदिएसु।

भावार्थ - इसी प्रकार की वक्तव्यता अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों तक में निरन्तर कहना चाहिए।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिय मणुस्सेसु जहा णेरइए।

भावार्थ - पृथ्वीकायिक जीवों की पृथ्वीकायिकों में से निकल कर सीधे पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों और मनुष्यों में उत्पत्ति के विषय में नैरयिक की वक्तव्यता के समान कहना चाहिए।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणिएसु पडिसेहो।

भावार्थ-वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों में पृथ्वीकायिक की उत्पत्ति का निषेध समझना चाहिए।

एवं जहा पुढवीकाइओ भणिओ तहेव आउक्काइओ वि जाव वणस्सइकाइओ वि भाणियव्वो॥ ५६२॥

भावार्थ - जैसे पृथ्वीकायिक की चौवीस दण्डकों में उत्पत्ति के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार अप्कायिक एवं वनस्पतिकायिक के विषय में भी कहना चाहिए।

तेउक्काइए णं भंते! तेउक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक जीव तेजस्कायिकों में से उद्वृत्त होकर (निकल कर) क्या सीधा नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु वि।

भावार्थ - इस प्रकार की वक्तव्यता असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक की उत्पत्ति के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुढवीकाइय आउ तेउ वाउ वणस्सइ बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिएसु अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

भावार्थ - पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिकों में तथा बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रियों में कोई तेजस्कायिक उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।

जे णं भंते! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो तेजस्कायिक इनमें उत्पन्न होता है, क्या वह केवलि प्रज्ञप्त धर्म श्रवण को प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

तेउक्काइए णं भंते! तेउक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक जीव, तेजस्कायिकों में से निकल कर क्या सीधा पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! कोई उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।

जे णं भंते! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए?

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो तेजस्कायिक, पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होता है, क्या वह केवलि प्रज्ञप्त धर्म श्रवण को प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! उनमें से कोई धर्म श्रवण प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नहीं करता है।

जे णं भंते! केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए से णं केवलं बोहिं बुज्झेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो तेजस्कायिक केवलि प्रज्ञप्त धर्म श्रवण प्राप्त करता है, क्या वह केवलिप्रज्ञप्त बोधि (धर्म) को समझ पाता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

मणुस्स-वाणमंतर जोइसिय वेमाणिएसु पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक जीव, इन्हीं में से निकल कर सीधा मनुष्य तथा वाणव्यन्तर ज्योतिषी वैमानिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं जहेव तेउक्काइए णिरंतरं एवं वाउक्काइए वि॥ ५६३॥

भावार्थ - इसी प्रकार जैसे तेजस्कायिक जीव की अनन्तर उत्पत्ति आदि के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार वायुकायिक के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

बेइंदिए णं भंते! बेइंदिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! जहा पुढवीकाइया, णवरं मणुस्सेसु जाव मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या बेइन्द्रिय जीव, बेइन्द्रिय जीवों में से निकल कर सीधा नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में कहा है, वैसा ही बेइन्द्रिय जीवों के विषय में भी समझना चाहिए। विशेष अन्तर यह है कि पृथ्वीकायिक जीवों के समान बेइन्द्रिय जीव मनुष्यों में उत्पन्न होकर अन्तक्रिया नहीं कर सकते किन्तु वे मन:पर्यायज्ञान तक प्राप्त कर सकते हैं।

एवं तेइंदिया चउरिंदिया वि जाव मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा।

भावार्थ - इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय जीव भी यावत् मन:पर्याय ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

जे णं भंते! मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा से णं केवलणाणं उप्पाडेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विकलेन्द्रिय मनुष्यों में उत्पन्न हो कर मन:पर्यायज्ञान प्राप्त करता है, तो क्या वह केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिए णं भंते! पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता णेरइएसु उववज्जेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए उववज्जेज्जा, अत्थेगइए णो उववज्जेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या पंचेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में से उद्वृत्त होकर सीधा नैरयिकों में उत्पन्न होता है?

उत्तर-हे गौतम! उनमें से कोई पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव उत्पन्न होता है और कोई उत्पन्न नहीं होता है।

जे णं भंते! उववज्जेज्जा से णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव, नैरयिकों में उत्पन्न होता है, क्या वह केवलि प्रज्ञप्त धर्म श्रवण को प्राप्त करता है?

उत्तर - हे गौतम! उनमें से कोई प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नहीं करता है।

जे णं केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए से णं केवलं बोहिं बुज्झेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए बुज्झेज्जा, अत्थेगइए णो बुज्झेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो केवलि प्रज्ञप्त धर्म श्रवण को प्राप्त करता है, क्या वह केवलबोधि- केवलि प्रज्ञप्त धर्म को समझ पाता है?

उत्तर - हे गौतम! उनमें से कोई केवलबोधि का अर्थ समझता है और कोई नहीं समझता है।

जे णं भंते! केवलं बोहिं बुज्झेज्जा से णं सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा?

हंता गोयमा! जाव रोएज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो केवलबोधि का अर्थ समझता है, क्या वह उस पर श्रद्धा करता है? प्रतीति करता है? और रुचि करता है?

उत्तर - हे गौतम! वह श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता है।

जे णं भंते! सद्दहेज्जा पत्तिएज्जा रोएज्जा से णं आभिणिबोहिय णाण सुयणाण ओहि णाणाइं उप्पाडेज्जा?

हंता गोयमा! जाव उप्पाडेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो श्रद्धा-प्रतीति-रुचि करता है, क्या वह आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! वह आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुत ज्ञान और अवधि ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

जे णं भंते! आभिणिबोहिय णाण सुयणाण ओहिणाणाइं उप्पाडेज्जा से णं संचाएज्जा सीलं वा जाव पडिवज्जित्तए?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान प्राप्त करता है, क्या वह शील आदि से लेकर पोषधोपवास तक अंगीकार कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं असुरकुमारेसु वि जाव थणियकुमारेसु।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार असुरकुमारों में यावत् स्तनितकुमारों में उत्पत्ति के विषय में पंचेन्द्रिय तिर्यंच से निरन्तर उद्वृत्त होकर उत्पन्न हुए नैरयिक की वक्तव्यता के समान समझना चाहिए।

एगिंदिय विगलिंदिएसु जहा पुढवीकाइए।

भावार्थ - एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों में पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों की उत्पत्ति की वक्तव्यता पृथ्वीकायिक जीवों की उत्पत्ति के समान समझ लेनी चाहिए।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु मणुस्सेसु य जहा णेरइए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों और मनुष्यों में जैसे नैरयिक के उत्पाद की प्ररूपणा की गई वैसे ही पंचेन्द्रिय तिर्यंच की प्ररूपणा करनी चाहिए।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणिएसु जहा णेरइएसु उववज्जेज्जा पुच्छा भणिया।

भावार्थ - वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उत्पन्न होने आदि की पृच्छा का कथन उसी प्रकार किया गया है, जैसे नैरयिकों में उत्पन्न होने का कथन किया गया है।

एवं मणुस्से वि।

भावार्थ - इसी प्रकार मनुष्य का उत्पाद भी चौवीस दण्डकों में यथायोग्य कहना चाहिए।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं मनुष्य की पृच्छा में "शीलव्रत आदि रूप श्रावक पने" के बाद अवधिज्ञान की पृच्छा की गयी है इसका आशय यह नहीं समझना चाहिए कि - "व्रत धारण के बाद ही अवधिज्ञान होता है।" किन्तु व्रत धारण के पहले भी हो सकता है। समकित एवं देशविरति एक साथ ही हो सकते हैं परन्तु विकास का क्रम अधिकतर इस प्रकार से होता है कभी व्युत्क्रम से भी हो सकता है जैसे मनुष्य के वर्णन में अवधिज्ञान होने के बाद संयम लेने का उल्लेख है किन्तु श्रावकपन एवं अवधिज्ञान उत्पन्न हुए बिना भी संयम लेने का आगमों से स्पष्ट होता है। इसी प्रकार मनःपर्याय ज्ञान और केवलज्ञान के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

वाणमंतर जोइसिय वेमाणिए जहा असुरकुमारे॥ ५६४॥

भावार्थ - वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक के उत्पाद का कथन असुरकुमार के उत्पाद के समान ही समझना चाहिए।

५. तीर्थंकर द्वार

रयणप्पभा पुढवी णेरइए णं भंते! रयणप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा'?

गोयमा! जस्स णं रयणप्पभा पुढवी णेरइयस्स तित्थगर णाम गोयाइं कम्माइं बद्धाइं पुट्ठाइं णिधत्ताइं कडाइं पट्ठवियाइं णिविट्ठाइं अभिणिविट्ठाइं अभिसमण्णागयाइं उदिण्णाइं, णो उवसंताइं हवंति, से णं रयणप्पभा पुढवी णेरइए रयणप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा, जस्स णं रयणप्पभा पुढवी णेरइयस्स तित्थगर णाम गोयाइं कम्माइं णो बद्धाइं जाव णो उदिण्णाइं, उवसंताइं हवंति, से णं रयणप्पभा पुढवी णेरइए रयणप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं णो लभेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा'।

कठिन शब्दार्थ - बद्धाइं - बद्ध-आत्मा के साथ कर्मों का साधारण संयोग होना, जैसे सूइयों के ढेर को सूत के धागे से बांधना, **पुट्ठाइं** - स्पृष्ट- आत्मप्रदेशों और कर्मों में परस्पर सघनता उत्पन्न होना जैसे उन सूइयों के ढेर को अग्नि से तपाकर घन (हथोड़ा) से कूट दिया जाता है तब उनमें परस्पर जो सघनता उत्पन्न हो जाती है, उस प्रकार से होना स्पृष्ट है, **णिधत्ताइं** - निधत्त-उद्वर्त्तनाकरण और अपवर्त्तनाकरण के सिवाय शेष करण जिसमें लागू न हो सकें, इस प्रकार से कर्मों को व्यवस्थापित करना, **कडाइं** - कृत-कर्मों को निकाचित कर लेना अर्थात् समस्त कर्मों के लागू होने के योग्य न हो, इस प्रकार से कर्मों को व्यवस्थापित करना, **पट्ठवियाइं** - प्रस्थापित--नाम कर्म की विभिन्न प्रकृतियों (मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय एवं यश कीर्ति नामकर्म आदि) के उदय के साथ व्यवस्थापित होना, **णिविट्ठाइं** - निविष्ट-बद्ध कर्मों का तीव्र अनुभाव जनक के रूप में स्थित होना, **अभिणिविट्ठाइं** - अभिनिविष्ट-बद्ध कर्मों का जब विशिष्ट, विशिष्टतर विलक्षण अध्यवसायभाव के कारण अति तीव्र अनुभाव जनक के रूप में व्यवस्थित होना, **अभिसमण्णागयाइं** - अभिसमन्वागत-कर्म का उदय के अभिमुख होना, **उदिण्णाइं** - उदीर्ण-कर्मों का उदय में आना, उदय प्राप्त होना अर्थात् कर्म जब अपना फल देने लगता है, तब उदय प्राप्त या उदीर्ण कहलाता है, **णो उवसंताइं** - कर्म का उपशान्त न होना। उपशान्त न होने के यहाँ पर दो अर्थ हैं - १. कर्म बन्ध का सर्वथा अभाव को प्राप्त न होना २. अथवा कर्मबन्ध हो जाने पर भी निकाचित या उदय आदि अवस्था के उद्रेक से रहित न होना। उपरोक्त सभी शब्द कर्म सिद्धान्त के पारिभाषिक शब्द हैं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से निकल कर सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! उनमें से कोई तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नहीं कर पाता है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि रत्नप्रभा पृथ्वी का नैरयिक सीधा मनुष्य भव में उत्पन्न होकर कोई तीर्थंकरत्व प्राप्त कर लेता है और कोई प्राप्त नहीं कर पाता है?

उत्तर - गौतम! जिस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक ने पहले कभी तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म बद्ध किया है, स्पृष्ट किया है, निधत्त किया है, प्रस्थापित, निविष्ट और अभिनिविष्ट किया है, अभिसमन्वागत (सम्मुख आगत) है, उदीर्ण - उदय में आया है, उपशान्त नहीं हुआ है, वह रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से उद्वृत्त होकर सीधा मनुष्य भव में उत्पन्न होकर तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है, किन्तु जिस रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक के तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म बद्ध नहीं होता यावत् उदीर्ण नहीं होता, उपशान्त होता है, वह रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक रत्नप्रभापृथ्वी से निकल कर सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त नहीं कर सकता है।

इसलिए हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि कोई नैरयिक तीर्थंकरत्व प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नहीं कर पाता है।

एवं जाव वालुयप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो तित्थगरत्तं लभेज्जा।

भावार्थ - इसी प्रकार यावत् वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से निकल कर कोई नैरयिक मनुष्य भव प्राप्त करके सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर लेता है और कोई नैरयिक नहीं प्राप्त करता है।

विवेचन - प्रस्तुत प्रसङ्ग में इन से आशय यही है कि रत्नप्रभा आदि तीन नरक पृथ्वियों के जिस नैरयिक ने पूर्वकाल में तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध किया है और बांधा हुआ वह कर्म उदय में आया है, वही नैरयिक तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है। जिस नैरयिक ने पूर्वकाल (पूर्वभव) में तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध ही नहीं किया अथवा बन्ध करने पर भी जिसके उसका अभी उदय नहीं हुआ वह तीर्थंकर पद प्राप्त नहीं कर सकता।

पंकप्पभा पुढवी णेरइए णं भंते! पंकप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंकप्रभापृथ्वी का नैरयिक पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से निकल कर क्या सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर लेता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है। अर्थात् तीर्थंकर पद प्राप्त किये बिना सामान्य केवली बनकर अन्तक्रिया (मोक्ष प्राप्ति) कर सकता है।

धूमप्पभा पुढवी णेरइए पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, सव्वविरइं पुण लभेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक के सम्बन्ध में प्रश्न यह है कि - क्या वह धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिकों में से निकल कर सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। किन्तु वह विरति (संयम) प्राप्त कर सकता है।

तमप्पभा पुढवी-पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे विरयाविरइं पुण लभेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इसी प्रकार का प्रश्न तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक के सम्बन्ध में है।

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु तमःप्रभापृथ्वी का नैरयिक विरताविरति (श्रावकपना) को प्राप्त कर सकता है।

अहेसत्तमपुढवी पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, सम्मत्तं पुण लभेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अब अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक के विषय में पृच्छा है कि क्या वह तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह तिर्यंच पंचेन्द्रिय के भव में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है।

विवेचन - पङ्कप्रभा आदि अन्तिम चार नरक पृथ्वियों के नैरयिकों की उपलब्धि-पङ्कप्रभा वाले नैरयिक अपने भव से निकल कर तीर्थङ्कर पद प्राप्त नहीं कर सकते किन्तु वे मनुष्य भव में केवल ज्ञान प्राप्त करके अन्तक्रिया कर सकते हैं। धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक वहाँ से निकल कर मनुष्य भव प्राप्त करके सर्व विरति (संयम) अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं केवल ज्ञान के सिवाय शेष चार ज्ञानों को प्राप्त कर सकते हैं। तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक वहाँ से निकल कर मनुष्य के भव में देशविरति चारित्र (श्रावकपना) को प्राप्त कर सकते हैं, संयम प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तमस्तमः प्रभा पृथ्वी के नैरयिक वहाँ से निकल कर मनुष्य भव को भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं किन्तु तिर्यंच पंचेन्द्रिय के भव को प्राप्त कर सकते हैं एवं सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। श्रावकपना आदि प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

असुरकुमारस्स पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इसी प्रकार की पृच्छा असुरकुमार के विषय में है कि क्या वह असुरकुमारों में से निकल कर सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं णिरंतरं जाव आउकाइए।

भावार्थ - इसी प्रकार लगातार अप्कायिक तक अपने-अपने भव से उद्वर्त्तन कर सीधे तीर्थंकरत्व प्राप्त नहीं कर सकते, किन्तु अन्तक्रिया कर सकते हैं।

तेउकाइए णं भंते! तेउक्काइएहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक जीव तेजस्कायिकों में से उद्वृत्त होकर बिना अन्तर के मनुष्य भव में उत्पन्न हो कर क्या तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह केवलिप्ररूपित धर्म श्रवण को प्राप्त कर सकता है।

एवं वाउकाइए वि।

भावार्थ - इसी प्रकार वायुकायिक के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

वणस्सइकाइए णं पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीव के विषय में पृच्छा है कि क्या वह वनस्पतिकायिकों में से निकल कर तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वह अन्तक्रिया कर सकता है।

बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिए णं पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, मणपज्जवणाणं उप्पाडेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चउरिन्द्रिय के विषय में भी यही प्रश्न है कि क्या ये अपने-अपने भवों में से उद्वृत्त हो कर सीधे तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकते हैं?

उत्तर-हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु ये मनःपर्यवज्ञान तक का उपार्जन कर सकते हैं।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिय मणूस वाणमंतर जोइसिए णं पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, अंतकिरियं पुण करेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अब पृच्छा है कि क्या पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर एवं ज्योतिषी देव अपने-अपने भवों में से उद्वर्त्तन करके सीधे तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु ये अन्तक्रिया कर सकते हैं।

सोहम्मगदेवे णं भंते! अणंतरं चयं चइत्ता तित्थगरत्तं लभेज्जा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा, एवं जहा रयणप्पभा पुढवि णेरइए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्मकल्प का देव, अपने भव से च्यवन करके सीधा तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! उनमें से कोई सौधर्मकल्पक देव तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकता है और कोई प्राप्त नहीं कर सकता है, इत्यादि सभी बातें रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक के समान जाननी चाहिए।

एवं जाव सव्वट्ठसिद्धगदेवे॥ ५६५॥

भावार्थ - इसी प्रकार ईशानकल्प के देव से लेकर सर्वार्थसिद्ध विमान के देव तक सभी वैमानिक देवों के लिए समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत पांचवें - 'तीर्थंकर द्वार' में कौन से जीव तीर्थंकर पद प्राप्त कर सकते हैं? इसका वर्णन किया गया है। नैरयिकों और वैमानिक देवों से मर कर सीधा मनुष्य होने वाला जीव ही तीर्थंकर पद प्राप्त कर सकता है, अन्य नहीं। पहली, दूसरी, तीसरी नारकी के जिस नैरयिक ने पूर्व में तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया हुआ है और बांधा हुआ कर्म उदय में आता है वही नैरयिक तीर्थंकर पद प्राप्त करता है। चौथी नारकी से निकला हुआ नैरयिक मनुष्य भव में अंतक्रिया तो कर सकता है किन्तु तीर्थंकर नहीं बन सकता। इसी प्रकार क्रमशः पांचवीं, छठी और सातवीं नारकी से निकल कर जीव क्रमशः सर्वविरति, देशविरति और सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है। रत्नप्रभा आदि प्रथम तीन नारकी के नैरयिकों की तरह वैमानिक देवों के विषय में भी समझना चाहिए। भवनपति देव, पृथ्वी, पानी, वनस्पति के जीव, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, वाणव्यंतर देव और ज्योतिषी देव सीधे मनुष्य भव में आकर अन्तक्रिया कर सकते हैं। किन्तु तीर्थंकर पद प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव मर कर मनुष्य तो नहीं बनते हैं किन्तु तिर्यंच पंचेन्द्रिय के भव में धर्म श्रवण कर सकते हैं। तीन विकलेन्द्रिय के जीव मनुष्य भव प्राप्त कर मनःपर्यवज्ञान तक का उपार्जन कर सकते हैं।

६. चक्रवर्ती द्वार

रयणप्पभा पुढवि णेरइए णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्तं लभेज्जा?

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ०?

गोयमा! जहा रयणप्पभा पुढवि णेरइयस्स तित्थगरत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक अपने भव से उद्वर्त्तन करके क्या चक्रवर्ती पद प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हे गौतम! इनमें से कोई नैरयिक चक्रवर्ती पद प्राप्त करता है, कोई प्राप्त नहीं करता है।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि कोई रत्नप्रभापृथ्वी का नैरयिक चक्रवर्ती पद प्राप्त करता है और कोई प्राप्त नहीं करता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक को तीर्थंकर पद प्राप्त होने, न होने के कारणों का कथन किया गया है, उसी प्रकार उसके चक्रवर्ती पद प्राप्त होने न होने का कथन समझना चाहिए।

सक्करप्पभापुढवि णेरइए णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता चक्कवट्टित्तं लभेज्जा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शर्कराप्रभापृथ्वी का नैरयिक अपने भव से उद्वर्त्तन करके सीधा चक्रवर्तीपद पा सकता है?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

एवं जाव अहेसत्तमा पुढवि णेरइए।

भावार्थ - प्रश्न - इसी प्रकार वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों से लेकर अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों तक के विषय में समझ लेना चाहिए।

तिरिय मणुएहिंतो पुच्छा?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच योनिक और मनुष्यों के विषय में पृच्छा है कि ये तिर्यंचयोनिकों और मनुष्यों से निकल कर सीधे क्या चक्रवर्ती पद प्राप्त कर सकते हैं?

उत्तर - हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

भवणवइ वाणमंतर जोइसिय वेमाणिएहिंतो पुच्छा?

गोयमा! अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव के सम्बन्ध में प्रश्न है कि क्या वे अपने-अपने भवों से च्यवन कर सीधे चक्रवर्ती पद पा सकते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इनमें से कोई चक्रवर्ती पद प्राप्त कर सकता है और कोई प्राप्त नहीं कर सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत चक्रवर्ती द्वार में चक्रवर्ती पद किसको प्राप्त होता है और किसको नहीं, इसका कथन किया गया है। पहली रत्नप्रभा पृथ्वी का नैरयिक और चारों प्रकार के देव (परमाधामी और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किल्विषी को छोड़ कर) मनुष्य भव को प्राप्त कर चक्रवर्ती पद प्राप्त कर सकते हैं। शेष जीवों में चक्रवर्ती पद प्राप्त करने की योग्यता नहीं है।

७. बलदेव द्वार

एवं बलदेवत्तं पि, णवरं सक्करप्पभा पुढवि णेरइए वि लभेज्जा।

भावार्थ - इसी प्रकार बलदेवत्व के विषय में भी समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि शर्कराप्रभापृथ्वी का नैरयिक भी बलदेवत्व प्राप्त कर सकता है।

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी और शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक तथा चारों प्रकार के देव अपने अपने भवों से उद्वर्त्तन कर मनुष्य भव में बलदेव पद प्राप्त कर सकते हैं।

८. वासुदेव द्वार

एवं वासुदेवत्तं दोहिंतो पुढवीहिंतो वेमाणिएहिंतो य अणुत्तरोववाइय वज्जेहिंतो, सेसेसु णो इणट्ठे समट्ठे।

भावार्थ - इसी प्रकार दो पृथ्वियों-रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा पृथ्वी से तथा अनुत्तरौपपातिक देवों को छोड़ कर शेष वैमानिकों से वासुदेव पद प्राप्त हो सकता है, शेष जीवों में यह अर्थ समर्थ नहीं अर्थात् ऐसी योग्यता नहीं होती है।

विवेचन - पहली दूसरी नारकी के नैरयिक, बारह देवलोकों, नौ लोकान्तिक और नौ ग्रैवेयक के देव अपने भव से उद्वर्त्तन कर मनुष्य भव में वासुदेव हो सकते हैं, शेष गतियों से आए हुए जीव वासुदेव नहीं हो सकते।

यहाँ पर वासुदेवों के लिए अनुत्तरौपपातिक देवों को छोड़कर शेष वैमानिक देवों से आये हुए जीवों को वासुदेव पद प्राप्त होना बतलाया गया है इसका कारण हस्तलिखित प्रतियों (टब्बों) में इस प्रकार बताया है कि सभी वासुदेव पूर्व भव में निदान कृत होने से यहाँ से काल करके नियमा नरक गति में ही जाते हैं। अतः इनके लिए अनुत्तर विमान देवों की आगति नहीं बताई है।

९. मांडलिक द्वार

मंडलियत्तं अहेसत्तमा तेउ वाउ वज्जेहिंतो।

भावार्थ - माण्डलिकपद, अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों तथा तेजस्कायिक, वायुकायिक भवों को छोड़कर शेष सभी भवों से अनन्तर उद्वर्त्तन करके मनुष्य भव में आए हुए जीव प्राप्त कर सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सातवीं नारकी के नैरयिक और तेजस्कायिक, वायुकायिक के जीव काल कर मनुष्य नहीं बनते अतः शेष सभी भवों से निकल कर मनुष्य बनने वाले जीव माण्डलिक पद प्राप्त कर सकते हैं।

१०. रत्न द्वार

सेणावइरयणत्तं गाहावइरयणत्तं वड्डइरयणत्तं पुरोहियरयणत्तं इत्थिरयणत्तं च एवं चेव, णवरं अणुत्तरोववाइय वज्जेहिंतो।

भावार्थ - सेनापतिरत्न पद, गाथापतिरत्न पद, वर्धकीरत्न पद, पुरोहितरत्न पद और स्त्रीरत्न पद की प्राप्ति के सम्बन्ध में इसी प्रकार अर्थात्-माण्डलिकत्व प्राप्ति के कथन के समान समझना चाहिए। विशेषता यह है कि अनुत्तरौपपातिक देवों को छोड़ कर उपरोक्त सेनापति रत्न आदि प्राप्त हो सकते हैं।

आसरयणत्तं हत्थिरयणत्तं रयणप्पभाओ णिरंतरं जाव सहस्सारो अत्थेगइए लभेज्जा, अत्थेगइए णो लभेज्जा।

भावार्थ - अश्वरत्न एवं हस्तिरत्न पद रत्नप्रभापृथ्वी से लेकर निरन्तर सहस्रार देवलोक के देव तक का कोई जीव प्राप्त कर सकता है, कोई प्राप्त नहीं कर सकता है।

चक्करयणत्तं छत्तरयणत्तं चम्मरयणत्तं दंडरयणत्तं असिरयणत्तं मणिरयणत्तं कागिणिरयणत्तं एएसि णं असुरकुमारेहिंतो आरद्धं णिरंतरं जाव ईसाणाओ उववाओ, सेसेहिंतो णो इणट्ठे समट्ठे॥ ५६६॥

भावार्थ - चक्ररत्न, छत्ररत्न, चर्मरत्न, दण्डरत्न, असिरत्न, मणिरत्न एवं काकिणीरत्न पर्याय में उत्पत्ति-असुरकुमारों से लेकर निरन्तर यावत् ईशानकल्प के देवों तक से हो सकती है, शेष भवों से आए हुए जीवों में यह योग्यता नहीं है।

विवेचन - प्रस्तुत रत्नद्वार में चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से कौनसा रत्न किसे प्राप्त हो सकता है, इसकी प्ररूपणा की गयी है। सातवीं नारकी के नैरयिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक के जीव और अनुत्तर विमानवासी देवों को छोड़ कर शेष भवों से आने वाले जीव सेनापति रत्न, गाथापति रत्न, वर्धकी रत्न, पुरोहित रत्न और स्त्रीरत्न पद प्राप्त कर सकते हैं। अश्व रत्न और हस्तिरत्न पद पहली नारकी से लगा कर आठवें देवलोक तक के देव प्राप्त कर सकते हैं। चक्र रत्न, चर्म रत्न, छत्र रत्न, दण्ड रत्न, असि रत्न, मणिरत्न और काकिणी रत्न पद असुरकुमार से लेकर ईशान कल्प तक के देव प्राप्त कर सकते हैं।

उपरोक्त सूत्रों में वर्णित चक्रवर्ती के चौदह रत्नों का विस्तार से वर्णन - जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के तीसरे वक्षस्कार में किया गया है। विशेष जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भव्यद्रव्य देव उपपात प्ररूपणा

अह भंते! असंजय भविय दव्वदेवाणं, अविराहिय संजमाणं, विराहिय संजमाणं, अविराहिय संजमासंजमाणं, विराहिय संजमासंजमाणं, असण्णीणं, तावसाणं, कंदप्पियाणं, चरगपरिव्वायगाणं, किव्विसियाणं, तिरिच्छियाणं, आजीवियाणं, आभिओगियाणं, सलिंगीणं दंसणवावण्णगाणं देवलोगेसु उववज्जमाणाणं कस्स कहिं उववाओ पण्णत्तो?

गोयमा! असंजय भवियदव्वदेवाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं उवरिम गेवेज्जएसु, अविराहिय संजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं सव्वट्ठसिद्धे विराहिय संजमाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे अविराहिय संजमासंजमाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे, विराहिय संजमासंजमाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं जोइसिएसु, असण्णीणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं वाणमंतरेसु, तावसाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं जोइसिएसु, कंदप्पियाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे, चरगपरिव्वायगाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं बंभलोए कप्पे, किव्विसियाणं जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं लंतए कप्पे, तिरिच्छियाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं सहस्सारे कप्पे, आजीवियाणं जहण्णेणं भवणवासीसु, उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे, एवं आभिओगाण वि सलिंगीणं दंसण वावण्णगाणं जहण्णेणं भवणवासीसु उक्कोसेणं उवरिम गेवेज्जएसु॥ ५६७॥

कठिन शब्दार्थ - असंजय भविय दव्वदेवाणं - असंयत भव्य द्रव्य देव, **अविराहिय संजमाणं**- अविराधित संयम, **विराहिय संजमाणं** - विराधित संयम, **अविराहिय संजमासंजमाणं** - अविराधित संयमासंयम, **असण्णीणं** - असन्नी, **तावसाणं** - तापस, **कंदप्पियाणं** - कान्दर्पिक, **चरग परिव्वायगाणं**- चरक परिव्राजक, **किव्विसियाणं** - किल्विषिक, **तिरिच्छयाणं** - तैरश्चिक, **आजीवियाणं** - आजीविक-गोशालक मतानुयायी, **आभिओगियाणं** - आभियोगिक, **सलिंगीणं** - स्व लिंगी, **दंसण वावण्णगाणं** - दर्शनव्यापन्नक-सम्यक्त्व से भ्रष्ट।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंयत भव्य-द्रव्यदेव, जिन्होंने संयम की विराधना नहीं की है, जिन्होंने संयम की विराधना की है, जिन्होंने संयमासंयम की विराधना नहीं की है तथा जिन्होंने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयमासंयम की विराधना की है, जो असंज्ञी हैं, तापस हैं, कान्दर्पिक हैं, चरक-परिव्राजक हैं, किल्विषिक हैं, तिर्यंच गाय आदि पाल कर आजीविका करने वाले हैं अथवा आजीविक मतानुयायी हैं, जो आभियोगिक हैं, जो स्वलिंगी साधु हैं तथा जो सम्यग्-दर्शन का वमन करने वाले सम्यग्-दर्शनव्यापन्न हैं, ये सब यदि देवलोकों में उत्पन्न हों तो कौन कहाँ उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर - हे गौतम! असंयत भव्य-द्रव्यदेवों का उपपात जघन्य भवनवासी देवों में और उत्कृष्ट उपरिम ग्रैवेयक देवों में कहा गया है। जिन्होंने संयम की विराधना नहीं की है, उनका उपपात जघन्य सौधर्मकल्प में और उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध में, जिन्होंने संयम की विराधना की है, उनका उपपात जघन्य भवनपतियों में और उत्कृष्ट सौधर्म कल्प में, जिन्होंने संयमासंयम की विराधना नहीं की है, उनका उपपात जघन्य सौधर्म कल्प में और उत्कृष्ट अच्युतकल्प में, जिन्होंने संयमासंयम की विराधना की है, उनका उपपात जघन्य भवनपतियों में और उत्कृष्ट ज्योतिषी देवों में, असंज्ञी जीवों का उपपात जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट वाणव्यन्तर देवों में होता है। तापसों का उपपात जघन्य भवनवासी देवों में और उत्कृष्ट ज्योतिषी देवों में, कान्दर्पिकों का उपपात जघन्य भवनपतियों में उत्कृष्ट सौधर्मकल्प में, चरक-परिव्राजकों का उपपात जघन्य भवनपतियों में और उत्कृष्ट ब्रह्मलोककल्प में तथा किल्विषिकों का उपपात जघन्य सौधर्मकल्प में और उत्कृष्ट लान्तककल्प में होता है। तैरश्चिकों (तिर्यंचों) का उपपात जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट सहस्रारकल्प में, आजीविकों का उपपात जघन्य भवनपतियों में और उत्कृष्ट अच्युतकल्प में होता है, इसी प्रकार आभियोगिक साधकों का उपपात भी जान लेना चाहिए। स्वलिंग (समान वेष वाले) साधुओं का तथा दर्शन-व्यापन्न व्यक्तियों का उपपात जघन्य भवनवासी देवों में और उत्कृष्ट उपरिम-ग्रैवेयकदेवों में होता है।

विवेचन - जो चारित्र के परिणाम से शून्य हो वह 'असयंत' कहलाता है। जो देव होने के योग्य है वह 'भव्य-द्रव्य-देव' कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जो चारित्र पर्याय से रहित है और इस समय तक देव नहीं हुआ है, किन्तु आगे देव होने वाला है वह 'असयंत-भव्य-द्रव्य' देव है।

कोई यहाँ पर असंयत भव्य द्रव्य-देव का अर्थ असंयत सम्यग्दृष्टि करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है। क्योंकि इसी सूत्र में असंयत भव्य-द्रव्य-देव की उत्पत्ति ऊपर के ग्रैवेयक तक बतलाई है, किन्तु असंयत सम्यग्दृष्टि की तो बात ही क्या है, देशविरत श्रावक भी बारहवें देवलोक से ऊपर नहीं जा सकता है। ऐसी अवस्था में असंयत सम्यग्दृष्टि ऊपर के ग्रैवेयक तक कैसे जा सकता है?

यहाँ पर कोई असंयत भव्य-द्रव्य-देव का अर्थ निह्नव करते हैं, यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि निह्नव का पाठ आगे इसी सूत्र में अलग आया है। अतः यहाँ पर असंयत भव्य-द्रव्य देव का अर्थ 'मिथ्यादृष्टि' लेना चाहिए। असंयत भव्य-द्रव्य-देव वही होगा जो साधु के गुणों को धारण करने वाला, साधु की सम्पूर्ण समाचारी का पालन करने वाला, किन्तु जिसमें आन्तरिक साधुता न हो, केवल द्रव्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लिंग धारण करने वाला हो। ऐसा भव्य या अभव्य मिथ्यादृष्टि ही यहाँ लेना चाहिए। १२ वें देवलोक तक उत्पन्न होने में सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि दोनों प्रकार के असंयत ग्रहण किये जा सकते हैं। ऊपर की व्याख्या ग्रैवेयक में उत्पन्न होने वाले के लिए समझना चाहिए।

जब देशविरत श्रावक भी बारहवें देवलोक से आगे नहीं जाता है, तो समझना चाहिए कि ऊपर ग्रैवेयक तक जाने के लिए और भी विशेष क्रिया की आवश्यकता है। वह विशेष क्रिया श्रावक की तो है नहीं, अतएव साधु के सम्पूर्ण बाह्यगुण ही हो सकते हैं। उस सम्पूर्ण क्रिया के प्रभाव से ही ऊपरी ग्रैवेयक में उत्पन्न होता है। यद्यपि वह साधु की सम्पूर्ण बाह्य क्रिया करता है, किन्तु परिणाम रहित होने के कारण वह असंयत है।

शंका - वह भव्य या अभव्य मिथ्यादृष्टि श्रमण गुणों का धारक कैसे कहा जा सकता है?

समाधान - यद्यपि असंयत भव्य-द्रव्य-देव को महामिथ्यादर्शन रूप मोह की प्रबलता होती है, तथापि जब वह साधुओं की चक्रवर्ती आदि अनेक राजा महाराजाओं द्वारा वन्दनपूजन, सत्कार, सम्मान आदि देखता है, तो मन में सोचता है कि यदि मैं भी दीक्षा ले लूँ, तो मेरा भी इसी तरह वन्दन, पूजन, सत्कार, सम्मान आदि होगा। इस प्रकार प्रतिष्ठा मोह से उसमें व्रत पालन की भावना उत्पन्न होती है। वह लोक सन्मान की भावना से व्रतों का पालन करता है, आत्मशुद्धि के उद्देश्य से नहीं। इस कारण वह व्रतों का पालन करता हुआ भी चारित्र के परिणाम से शून्य ही है अर्थात् भावपूर्वक क्रिया (श्रद्धा रहित किन्तु प्ररूपणा एवं स्पर्शना जिनकी शुद्ध है। इस प्रकार के साधुवेश के अनुरूप ब्राह्य क्रिया) करते हुए भी उनके मिथ्यात्व का उदय होने से वह असंयत (स्वलिङ्गी मिथ्यादृष्टि-प्रथम गुणस्थान वाला) ही गिना गया है।

गौतम स्वामी का यहाँ पहला प्रश्न है कि - हे भगवन्! असंयत भव्य-द्रव्य-देव यदि देव रूप में उत्पन्न हो तो किस देवलोक तक उत्पन्न हो सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने फरमाया कि - हे गौतम! जघन्य भवनवासियों में उत्पन्न होता है और उत्कृष्ट नववें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकता है।

गौतम स्वामी ने दूसरा प्रश्न यह किया है कि - हे भगवन्! अविराधित संयम वाला अर्थात् दीक्षाकाल से लेकर जिसका चारित्र कभी भंग नहीं हुआ है, अथवा दोषों का शुद्धिकरण करने से व्रतों की शुद्धि हुई है, ऐसा साधु यदि देवलोक में उत्पन्न हो, तो किस देवलोक तक उत्पन्न होता है? भगवान् ने उत्तर दिया - हे गौतम! जघन्य सौधर्म कल्प में और उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होता है। संज्वलन कषाय के अथवा प्रमत्तगुणस्थान के कारण उनमें स्वल्प मायादि दोष संभावित हो सकते हैं, तथापि चारित्र का उपघात (नाश) हो ऐसा आचरण नहीं करते हैं। अतएव सकषाय और सप्रमाद होने पर भी साधु आराधक संयमी हो सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसने महाव्रतों को ग्रहण करके उनका भली प्रकार पालन नहीं किया है और जिसने संयम की विराधना की है, ऐसा विराधित संयमी यदि देवलोक में जाय तो जघन्य भवनवासी और उत्कृष्ट सौधर्म कल्प में उत्पन्न होता है।

अविराधित संयमासंयमी अर्थात् जिस समय से देशविरति को ग्रहण किया है, उस समय अखण्डित रूप से उसका पालन करने वाला दोषों के शुद्धिकरण से शुद्ध व्रत वाला आराधक श्रावक यदि देवलोक में उत्पन्न हो, तो जघन्य सौधर्म कल्प में और उत्कृष्ट अच्युत कल्प (बारहवें देवलोक) में उत्पन्न होता है। विराधित संयमासंयमी (श्रावकव्रतों की विराधना करने वाला) जघन्य भवनवासी में और उत्कृष्ट ज्योतिषियों में उत्पन्न होता है।

असंज्ञी जीव अर्थात् जिसके मनो-लब्धि (मन रूप साधन) नहीं हैं, ऐसा असंज्ञी जीव, अकाम निर्जरा करता है, (निर्जरा के उद्देश्य बिना कष्ट सहन करता है) वह यदि देवगति में जाय तो जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट वाणव्यन्तरों में जाता है।

शेष तापस आदि आठ प्रश्नों के उत्तर में भगवान् ने फरमाया है कि यदि ये देवगति में जावें तो जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट भिन्न-भिन्न स्थानों में जाते हैं। तापस आदि शब्दों का अर्थ इस प्रकार है -

तापस-वृक्ष आदि से गिरे हुए पत्तों को खाकर उदर निर्वाह करने वाला तापस, यानी बाल तपस्वी कहलाता है। वह उत्कृष्ट ज्योतिष्क देवों में उत्पन्न होता है।

कान्दर्पिक-जो साधु हंसोड़ हो-हास्य के स्वभाव वाला हो। ऐसे साधु चारित्रवेश में रहते हुए भी हास्यशील होने के कारण अनेक प्रकार की कुचेष्टाएं करते हैं। भौंह, आँख, मुख, होठ, हाथ, पैर आदि से ऐसी चेष्टा करते हैं कि जिससे दूसरों को हंसी आवे, कन्दर्प अर्थात् कामसम्बन्धी वार्तालाप करे, उनको कान्दर्पिक कहते हैं। ऐसे कान्दर्पिक साधु देवों में जावे तो जघन्य भवनवासियों में और उत्कृष्ट सौधर्म कल्प में उत्पन्न होते हैं और वे उसी प्रकार के कान्दर्पिक देव होते हैं।

चरक परिव्राजक - गेरु से या और किसी पृथ्वी के रंग से वस्त्र रंग कर उसी वेश से धाटी (एक प्रकार की भिक्षा) द्वारा आजीविका करने वाले त्रिदण्डी, चरक परिव्राजक कहलाते हैं। अथवा कुच्छोटक आदि चरक कहलाते हैं और कपिल ऋषि के शिष्य (सांख्य मतानुयायी) एवं अंबड संन्यासी आदि परिव्राजक कहलाते हैं। ये यदि देवलोक में उत्पन्न हों, तो उत्कृष्ट ब्रह्मलोक कल्प (पांचवें देवलोक) तक उत्पन्न हो सकते हैं।

किल्विषिक - किल्विष का अर्थ है - पाप। जो पापी हो उसे किल्विषिक कहते हैं। किल्विषिक व्यवहार से चारित्रवान् होते हैं, किन्तु ज्ञान आदि का अवर्णवाद करने के कारण किल्विषिक कहलाते हैं। कहा भी है -

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाणस्स केवलीणं धम्मायरियस्स संघसाहूणं।

माई अवण्णवाई, किव्विसियं भावणं कुणइ॥

अर्थात्-ज्ञान, केवलज्ञानी, धर्माचार्य और चतुर्विध संघ एवं साधुओं का अवर्णवाद करने वाला एवं पापमय भावना रखने वाला किल्विषिक कहलाता है। ऐसा किल्विषिक साधु देवों में जावे तो उत्कृष्ट लान्तक कल्प तक उत्पन्न हो सकता है।

तिर्यंच - गाय घोड़ा आदि देवलोक में जावे तो उत्कृष्ट सहस्रार कल्प में उत्पन्न हो सकते हैं।

नोट - टीका में - 'देशविरति' विशेषण दिया है, किन्तु बिना देशविरति वाले तिर्यंच भी आठवें देवलोक तक जा सकते हैं। यह बात भगवती सूत्र चौबीसवें शतक के बीसवें उद्देशक के जघन्य उत्कृष्ट गमे से तथा चौबीसवें शतक के चौबीसवें उद्देशक के उत्कृष्ट जघन्य गमे से स्पष्ट होती है।

आजीविक-एक खास तरह के पाषण्डी आजीविक कहलाते हैं या गोशालक के नग्न रहने वाले शिष्य अथवा लब्धि प्रयोग करके अविवेकी लोगों द्वारा ख्याति एवं महिमा, पूजा आदि प्राप्त करने के लिए तप और चारित्र का अनुष्ठान करने वाले और अविवेकी लोगों में चमत्कार दिखला कर अपनी आजीविका उपार्जन करने वाले-आजीविक कहलाते हैं। ये आजीविक यदि देवलोक में उत्पन्न हों, तो अच्युतकल्प तक उत्पन्न होते हैं।

आभियोगिक-विद्या और मंत्र आदि के द्वारा दूसरों को अपने वश में करना-अभियोग कहलाता है। अभियोग दो प्रकार का है-द्रव्य अभियोग और भाव अभियोग। द्रव्य से चूर्ण आदि का योग बताना-द्रव्याभियोग और मंत्र आदि बताकर वश में करना-भावाभियोग है। जो व्यवहार से तो संयम का पालन करता है, किन्तु मंत्र आदि के द्वारा दूसरे को अपने अधीन बनाता है, उसे आभियोगिक कहते हैं। आभियोगिक का लक्षण बताते हुए कहा है -

कोऊय भूइकम्मे पसिणापसिणे निमित्तमाजीवी।

इड्ढि-रस-साय-गरुओ, अभिओगं भावणं कुणइ॥

अर्थात्-जो सौभाग्य आदि के लिए स्नान बतलाता है, भूतिकर्म (रोगी को भभूत-राख-देने का काम) करता है, प्रश्नाप्रश्न अर्थात् प्रश्न का फल, स्वप्न का फल बताकर तथा निमित्त बताकर आजीविका करता है, ऋद्धि, रस और साता का गर्व करता है, इस प्रकार कार्य करके जो संयम को दूषित करता है, फिर भी व्यवहार में साधु की क्रिया करता है, उसे आभियोगिक कहते हैं। यदि यह देवलोक में जावे तो उत्कृष्ट अच्युत देवलोक तक जाता है।

सलिंगी - सलिंगी होते हुए भी जो निह्नव हैं अर्थात् जो साधु के वेश में है, किन्तु दर्शन भ्रष्ट है, वह निह्नव कहलाता है। यदि ये देव गति में जावे तो उत्कृष्ट नववें ग्रैवेयक तक जा सकते हैं।

ये चौदह प्रश्नोत्तर हैं। इनसे यह नहीं समझना चाहिए कि - ये चौदह प्रकार के जीव देवलोक में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही उत्पन्न होते हैं। किन्तु यदि देवलोक में उत्पन्न हो तो कौन कहाँ तक उत्पन्न हो सकता है-इसी बात पर यहाँ विचार किया गया है। ये दूसरी गतियों में भी उत्पन्न होते हैं। किन्तु उसका यहाँ विचार नहीं किया गया है।

उपरोक्त चौदह बोलों में से अविराधित संयमी, विराधित संयमी, अविराधित संयमासंयमी और विराधित संयमासंयमी ये चार बोल वाले तो मरकर देवगति में ही जाते हैं अर्थात् पांचवें गुणस्थान वाले एवं छठे आदि गुणस्थान वाले जीव मरकर देवगति में ही जाते हैं।

शंका - यहाँ विराधित संयम वालों की उत्पत्ति जघन्य भवनवासी और उत्कृष्ट सौधर्म देवलोक तक की बतलाई गई है, किन्तु सुकुमालिका के भव में द्रौपदी संयम की विराधिका होते हुए भी ईशान देवलोक में गई थी। फिर उपर्युक्त कथन कैसे संगत होगा?

समाधान - सुकुमालिका ने मूलगुण की विराधना नहीं की थी, किन्तु उत्तरगुण की विराधना की थी अर्थात् उसने बकुशत्व का कार्य किया था। बारबार हाथ मुँह धोते रहने से साधु का चारित्र बकुश (चितकबरा) हो जाता है। सुकुमालिका का यही हुआ था। यह उत्तरगुण की विराधना हुई, मूलगुण की नहीं। यहाँ जिन विराधक संयमियों की उत्पत्ति उत्कृष्ट सौधर्मकल्प में बताई गई है, वे मूलगुण के विराधक हैं, ऐसा समझना चाहिए। क्योंकि उत्तर गुण प्रतिसेवी बकुशादि की उत्पत्ति तो अच्युत कल्प तक भी हो सकती है।

शंका - यहाँ असंज्ञी जीवों की उत्पत्ति जघन्य भवनवासी और उत्कृष्ट वाणव्यन्तर बतलाई गई है। तो क्या भवनवासी देवों से वाणव्यंतर बड़े हैं? इसके सिवाय भवनवासी देवों के इन्द्र चमर और बलि की ऋद्धि बड़ी कही गई हैं। आयुष्य भी इनका सागरोपम से अधिक है, जबकि वाणव्यंतरों का आयुष्य पल्योपम प्रमाण ही है। फिर वाणव्यन्तर भवनवासियों से बड़े कैसे माने जा सकते हैं?

समाधान - कई वाणव्यन्तर कई भवनवासियों से भी उत्कृष्ट ऋद्धि वाले होते हैं और कई भवनवासी वाणव्यन्तरों की अपेक्षा कम ऋद्धि वाले हैं। अतः यहाँ जो कथन किया गया है, उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है, कई वाणव्यन्तर कई भवनवासियों से अधिक ऋद्धिशाली होते हैं और कई भवनवासी वाणव्यन्तरों से अल्प ऋद्धि वाले होते हैं। यह बात शास्त्र के इसी कथन से सिद्ध है।

समान स्थिति वाले भवनवासी और वाणव्यन्तरों में वाणव्यन्तर श्रेष्ठ गिने जाते हैं।

यहाँ पर उपरोक्त चौदह बोलों में से किल्विषयों का देवगति में जघन्य उपपात सौधर्मकल्प का बताया है किन्तु भगवती सूत्र शतक १ उद्देशक २ में इन्ही चौदह बोलों के वर्णन में किल्विषियों का *जघन्य उपपात भवनवासी देवों में बताया गया है। भगवती सूत्र* अङ्ग सूत्र होने से उसका पाठ विशेष प्रामाणिक लगता है। प्रज्ञापना सूत्र में शायद लिपिप्रमाद संभव है अथवा यहाँ पर मात्र वैमानिक जाति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के किल्विषियों का ही ग्रहण किया गया हो सकता है। इस अपेक्षा से सौधर्म कल्प का उपपात संभव हो सकता है।

इन बोलों की पृच्छा से निकलने वाले फलितार्थ (मन्तव्य) -

१. आन्तरिक योग्यता के बिना भी बाह्य आचरण (प्ररूपणा, स्पर्शना) शुद्ध हो तथा स्वलिङ्गी हो तो ऐसे जीव चाहे वे मिथ्यादृष्टि (भव्य और अभव्य) हो वे जीव ग्रैवेयक देवों तक उत्पन्न हो सकते हैं। इससे "जैन लिङ्ग धारण करने वाले का भी महत्त्व मालूम पडता है।" यह पहले एवं चौदहवें के साधक के लिए दिये गये निर्णय से फलित होता है। (दर्शन व्यापन्नक=समकित वमन किये हुए)।

२. आन्तरिक योग्यतापूर्वक शुद्ध संयम का पालन करने वाला सर्वार्थ सिद्ध देवलोक तक ज़ा सकता है। किल्विषियों को दर्शन विराधक कहा जाता है। अर्थात् श्रद्धा से भ्रष्ट-निह्नव साधु किल्विषी है।

३. मूल गुण विराधक-साधु-पहले देवलोक तक जाता है। उत्तरगुण विराधक १२ वें देवलोक तक जा सकता है। [आभियोगिक भी विराधक (उत्तरगुणविराधक) होते हैं।] द्रौपदी सुकुमालिका के भव में उत्तरगुणविराधक होने से काल करके दूसरे देवलोक में गई।

४. संयम के गुणस्थानों (छट्ठे आदि) तथा संयमासंयम (पांचवें गुणस्थान) में काल करने वाला विराधक हो या अविराधक, वह देवलोक में ही उत्पन्न होता है।

असंज्ञी-आयुष्य प्ररूपणा

कइविहे णं भंते! असण्णिआउए पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे असण्णिआउए पण्णत्ते। तंजहा - णेरइय असण्णि आउए जाव देव असण्णि आउए।

कठिन शब्दार्थ - असण्णि आउए - असंज्ञी का आयुष्य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंज्ञी-आयुष्य कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! असंज्ञी-आयुष्य चार प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - नैरयिक-असंज्ञी-आयुष्य से लेकर देव-असंज्ञी आयुष्य तक।

असण्णी णं भंते! जीवे किं णेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ?

गोयमा! णेरइयाउयं पकरेइ जाव देवाउयं पकरेइ। णेरइयाउं पकरेमाणे जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं पकरेइ। तिरिक्ख जोणियाउयं पकरेमाणे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइ भागं पकरेइ। एवं मणुस्साउयं पि। देवाउयं जहा णेरइयाउयं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - पकरेइ - करता है।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या असंज्ञी जीव नैरयिक की आयु का उपार्जन करता है अथवा यावत् देवायु का उपार्जन करता है?

उत्तर - हे गौतम! असंज्ञी जीव नैरयिक-आयु का भी उपार्जन करता है, यावत् देवायु का भी उपार्जन करता है। नैरयिकायु का उपार्जन करता हुआ असंज्ञी जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की आयु का उपार्जन (बन्ध) कर लेता है। तिर्यंचयोनिक-आयुष्य का उपार्जन करता हुआ वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का और उष्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग का उपार्जन करता है। इसी प्रकार मनुष्यायु एवं देवायु का उपार्जन भी नैरयिकायु के समान कहना चाहिए।

एयस्स णं भंते! णेरइय असण्णि आउयस्स जाव देव असण्णि आउयस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवे देव असण्णि आउए, मणुय असण्णि आउए असंखिज्ज गुणा, तिरिक्ख जोणिय असण्णि आउए असंखिज्ज गुणा, णेरइय असण्णि आउए असंखिज्ज गुणा ॥ ५६८ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस नैरयिक-असंज्ञी आयु यावत् देव-असंज्ञी आयु में से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़ा देव-असंज्ञी-आयु है, उससे मनुष्य-असंज्ञी आयु असंख्यात गुणा अधिक है, उससे तिर्यंचयोनिक असंज्ञी आयु असंख्यात गुणा अधिक है और उससे भी नैरयिक असंज्ञी आयु असंख्यात गुणा अधिक है।

नोट - भगवती सूत्र शतक चौबीस उद्देशक २ से ११ की टीका में असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के देवगति में (भवनपति, वाणव्यन्तर) जाने पर वहाँ पर उनको एक करोड़ पूर्व जितना ही उत्कृष्ट आयु प्राप्त होता है। असंज्ञी जीव शुभ गति का आयु बन्ध कम स्थिति का करता है तथा अशुभ गति का आयु बन्ध अधिक स्थिति का करता है। ऐसा प्रज्ञापना सूत्र पद २३ उद्देशक २ (अबाधा काल के थोकड़े) से स्पष्ट होता है। अतः देवगति में असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय उत्पन्न होवे तो वह यहाँ पर जितनी उसकी उत्कृष्ट स्थिति होती है उससे अधिक स्थिति देवगति में प्राप्त नहीं करता है। अतः देव असंज्ञी आयुष्य करोड़ पूर्व जितना मानना ही उचित एवं संगत प्रतीत होता है। शास्त्रकारों ने संक्षेप करने की दृष्टि से सबका आयुष्य "पल्योपम का असंख्यातवां भाग" बताया है परन्तु उपरोक्त अल्पबहुत्व को देखते हुए आगे आगे का संज्ञी आयुष्य क्रमशः असंख्य असंख्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणा होता जाता है अर्थात् मनुष्य तिर्यंच योनिक और नैरयिक असंज्ञी आयुष्य असंख्यात वर्षों के होते हैं एवं परस्पर एक दूसरे से असंख्यात गुणे भी होते हैं।

विवेचन - असंज्ञी जीव की उत्पत्ति देवों में होती है, यह बात पहले कही गई है। वह उत्पत्ति आयुष्य से ही होती है। इसलिए यहाँ असंज्ञी जीवों के आयुष्य का कथन किया गया है।

वर्तमान में जो जीव असंज्ञी है, वह परभव का जो आयुष्य बांधता है उसे 'असंज्ञी का आयुष्य' कहते हैं। असंज्ञी जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव चारों गतियों का आयुष्य बांध सकता है। इसलिए असंज्ञी आयुष्य के चार भेद किये गये हैं। यह चार प्रकार का आयुष्य असंज्ञी जीव उपार्जन करता है।

असंज्ञी जीव नरक में जघन्य दस हजार वर्ष का आयुष्य उपार्जन करता है। यह आयुष्य रत्नप्रभा नरक के पहले पाथड़े की अपेक्षा समझना चाहिए। क्योंकि रत्नप्रभा के पहले पाथड़े में जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट ९० हजार वर्ष की स्थिति होती है। असंज्ञी जीव की नरक की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है। यह स्थिति रत्नप्रभा के चौथे पाथड़े की अपेक्षा समझनी चाहिए। क्योंकि रत्नप्रभा के दूसरे पाथड़े में जघन्य दस लाख वर्ष की ❖ और उत्कृष्ट ९० लाख वर्ष की स्थिति होती है। तीसरे पाथड़े में जघन्य ९० लाख वर्ष और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष की है चौथे पाथड़े में जघन्य पूर्व कोटि वर्ष की और उत्कृष्ट सागरोपम के दसवें भाग की स्थिति होती है। इस प्रकार इस चौथे पाथड़े में पल्योपम के असंख्यातवें भाग की स्थिति, मध्यम स्थिति बनती है।

असंज्ञी जीव की तिर्यंच और मनुष्य सम्बन्धी उत्कृष्ट आयु जो पल्योपम के असंख्यातवें भाग कही गयी है, वह युगलिक तिर्यंच और युगलिक मनुष्य की समझनी चाहिए।

असंज्ञी जीव की देव सम्बन्धी उत्कृष्ट आयु जो पल्योपम के असंख्यातवें भाग कही गई है वह भवनपति और वाणव्यन्तर देवों की अपेक्षा समझनी चाहिए और वह पल्योपम का असंख्यातवां भाग करोड़ पूर्व से ज्यादा नहीं समझना चाहिए।

❖ पहले पाथड़े की उत्कृष्ट स्थिति ९० हजार वर्ष की होती है और दूसरे पाथड़े की जघन्य स्थिति दस लाख वर्ष की होती है। इसका यह फलितार्थ निकलता है कि - इसके बीच की स्थिति वाले नैरयिक नहीं होते हैं अर्थात् ९० हजार वर्ष एक समय अधिक से लेकर एक समय कम दस लाख वर्ष की स्थिति किसी भी नैरयिक की नहीं होती है, क्योंकि वस्तु स्वभाव ही ऐसा है।

॥ पण्णवणाए भगवई वीसइमं अंतकिरियापयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती का बीसवाँ अन्तक्रियापद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगवीसइमं ओगाहणासंठाणपयं

इक्कीसवां अवगाहना-संस्थान-पद

प्रज्ञापना सूत्र के बीसवें पद में गति के परिणाम विशेष अन्तक्रिया रूप परिणाम का वर्णन किया गया है। इस पद में भी नरक आदि गति में उत्पन्न हुए जीवों के गति के परिणाम विशेष रूप ही शरीर के संस्थान आदि का प्रतिपादन किया जाता है। बारहवें "शरीर पद" में तथा सोलहवें "प्रयोगपद" में भी शरीर सम्बन्धी चर्चा की गई है, परन्तु शरीर पद में नरक आदि चौबीस दण्डकों में पांच शरीरों में से कौन-कौन सा शरीर किसके होता है? तथा बद्ध और मुक्त शरीरों की द्रव्य, क्षेत्र और काल की अपेक्षा से कितनी संख्या है? इत्यादि विचारणा की गई है और सोलहवें प्रयोग पद में मन, वचन और काया के आधार से आत्मा के द्वारा होने वाले व्यापार एवं गतियों का वर्णन है।

प्रस्तुत अवगाहना - संस्थान-पद में शरीर के प्रकार, आकार, प्रमाण, पुद्गल चयोपचय एक साथ एक जीव में पाये जाने वाले शरीरों की संख्या, शरीरगत द्रव्य एवं प्रदेशों का अल्पबहुत्व एवं अवगाहना के अल्प बहुत्व की सात द्वारों में विस्तृत चर्चा की गई है। विषय का प्रतिपादन करने वाली द्वार गाथा इस प्रकार है-

विहि संठाण पमाणे पोग्गलचिणणा सरीरसंजोगो।

दव्वपएसऽप्पबहुं सरीरोगाहणऽप्पबहुं॥

भावार्थ - १. विधि २. संस्थान ३. प्रमाण ४. पुद्गलचयन ५. शरीरसंयोग ६. द्रव्य-प्रदेशों का अल्पबहुत्व एवं ७. शरीरावगाहना-अल्पबहुत्व।

विवेचन - प्रज्ञापना सूत्र के इस इक्कीसवें शरीर पद में सात द्वारों का वर्णन किया गया है। प्रथम विधि द्वार में शरीर के भेद, दूसरे संस्थान द्वार में शरीरों के संस्थानों-आकारों का वर्णन, तीसरे प्रमाण द्वार में शरीरों का प्रमाण (अवगाहना), चौथे पुद्गल चय द्वार में कितनी दिशाओं से शरीरों के पुद्गलों का चय, उपचय होता है इसका निरूपण किया गया है। पांचवें शरीर संयोग द्वार में किस शरीर के सद्भाव में कौनसा शरीर अवश्य होता है। इस प्रकार शरीरों के परस्पर संबंध का वर्णन है। छठे द्वार में द्रव्यों और प्रदेशों की अपेक्षा से शरीरों का अल्पबहुत्व और सातवें द्वार में पांचों शरीरों की अवगाहना के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. विधि द्वार

कइ णं भंते! सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच सरीरया पण्णत्ता। तंजहा-ओरालिए १, वेउव्विए २, आहारए ३, तेयए ४, कम्मए ५।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! शरीर पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. औदारिक २. वैक्रिय ३. आहारक ४. तैजस और ५ कार्मण।

विवेचन - शरीर - जो उत्पत्ति समय से लेकर प्रतिक्षण जीर्ण-शीर्ण होता रहता है तथा शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न होता है वह शरीर कहलाता है। शरीर के पांच भेद हैं - १. औदारिक शरीर २. वैक्रिय शरीर ३. आहारक शरीर ४. तैजस शरीर ५. कार्मण शरीर।

१. औदारिक शरीर - उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलों से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। तीर्थंकर, गणधरों का शरीर प्रधान पुद्गलों से बनता है और सर्व साधारण का शरीर स्थूल असार पुद्गलों से बना हुआ होता है।

अन्य शरीरों की अपेक्षा अवस्थित रूप से विशाल अर्थात् बड़े परिमाण वाला होने से यह औदारिक शरीर कहा जाता है। वनस्पतिकाय की अपेक्षा औदारिक शरीर की एक सहस्र (हजार) योजन की अवस्थित अवगाहना है। अन्य सभी शरीरों की अवस्थित अवगाहना इससे कम है। वैक्रिय शरीर की उत्तर वैक्रिय की अपेक्षा अनवस्थित अवगाहना एक लाख योजन की है। परन्तु भवधारणीय वैक्रिय शरीर की अवगाहना तो पांच सौ धनुष से ज्यादा नहीं है।

अन्य शरीरों की अपेक्षा अल्प प्रदेश वाला तथा परिमाण में बड़ा होने से यह औदारिक शरीर कहलाता है।

मांस रुधिर अस्थि आदि से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। औदारिक शरीर मनुष्य और तिर्यंच के होता है।

२. वैक्रिय शरीर - जिस शरीर से विविध अथवा विशिष्ट प्रकार की क्रियाएं होती हैं वह वैक्रिय शरीर कहलाता है। जैसे एक रूप होकर अनेक रूप धारण करना, अनेक रूप होकर एक रूप धारण करना, छोटे शरीर से बड़ा शरीर बनाना और बड़े से छोटा बनाना, पृथ्वी और आकाश पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य अदृश्य रूप बनाना आदि। वैक्रिय शरीर दो प्रकार का है - १. औपपातिक वैक्रिय शरीर २. लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. औपपातिक वैक्रिय शरीर - जन्म से ही जो वैक्रिय शरीर मिलता है वह औपपातिक वैक्रिय शरीर कहलाता है। देवता और नारकी के नैरिये जन्म से ही वैक्रिय शरीरधारी होते हैं।

२. लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर - तप आदि द्वारा प्राप्त लब्धि विशेष से प्राप्त होने वाला वैक्रिय शरीर लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर कहलाता है। मनुष्य और तिर्यंच में लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है।

३. आहारक शरीर - प्राणी दया, तीर्थंकर भगवान् की ऋद्धि का दर्शन, नये ज्ञान की प्राप्ति तथा संशय निवारण आदि प्रयोजनों से चौदह पूर्वधारी मुनिराज, अन्य क्षेत्र (महाविदेह क्षेत्र) में विराजमान तीर्थंकर भगवान् के समीप भेजने के लिए लब्धि विशेष से अतिविशुद्ध स्फटिक के सदृश एक हाथ का जो पुतला निकालते हैं वह आहारक शरीर कहलाता है। उक्त प्रयोजनों के सिद्ध हो जाने पर वे मुनिराज उस शरीर को छोड़ देते हैं।

४. तैजस शरीर - तैजस पुद्गलों से बना हुआ शरीर तैजस शरीर कहलाता है। प्राणियों के शरीर में विद्यमान उष्णता से इस शरीर का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह शरीर आहार का पाचन करता है। तपोविशेष से प्राप्त तैजस्लब्धि का कारण भी यही शरीर है।

५. कार्मण शरीर - कर्मों से बना हुआ शरीर कार्मण कहलाता है। अथवा जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को कार्मण शरीर कहते हैं। यह शरीर ही सब शरीरों का बीज है अर्थात् मूल कारण है।

पांचों शरीरों के इस क्रम का कारण यह है कि आगे आगे के शरीर पिछले की अपेक्षा प्रदेश बहुल (अधिक प्रदेश वाले) हैं एवं परिणाम में सूक्ष्मतर हैं। तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं। इन दोनों शरीरों के साथ ही जीव मरण देश को छोड़ कर उत्पत्ति स्थान को जाता है। अर्थात् ये दोनों शरीर परभव में जाते हुए जीव के साथ ही रहते हैं किन्तु मोक्ष में जाते समय ये दोनों शरीर भी छूट जाते हैं।

ओरालियसरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - एगिंदिय ओरालियसरीरे जाव पंचिंदिय ओरालियसरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! औदारिक शरीर पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिक शरीर।

विवेचन - औदारिक शरीर एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के भेद से पांच प्रकार का है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय औदारिक शरीर पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर।

पुढविकाइय एगिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे य बायर पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे य।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, यथा- सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर और बादर पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर।

सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पज्जत्तग सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे य अपज्जत्तग सुहुम पुढविकाइय एगिंदिय ओरालियसरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - पर्याप्तक-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर और अपर्याप्तक-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर।

बायर पुढविकाइया वि एवं चेव।

भावार्थ - इसी प्रकार बादर-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय-औदारिक शरीर के भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक, ये दो भेद समझ लेने चाहिए।

एवं जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय ओरालिय सरीरेत्ति।

भावार्थ - इसी प्रकार अप्कायिक से लेकर यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर तक के भी सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो-दो प्रकार समझ लेने चाहिए।

विवेचन - एकेन्द्रिय औदारिक शरीर पृथ्वी, अप्, तेजस, वायु और वनस्पति रूप एकेन्द्रिय के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भेद से पांच प्रकार का है। पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय, औदारिक शरीर भी सूक्ष्म और बादर के भेद से दो प्रकार का है। उनके भी पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो भेद हैं। इसी प्रकार अप्, तेजस् वायु और वनस्पति एकेन्द्रिय औदारिक शरीर के भी चार-चार भेद होते हैं। ये सभी मिल कर एकेन्द्रिय औदारिक शरीर के बीस भेद होते हैं।

बेइंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पज्जत्तग बेइंदिय ओरालियसरीरे य अपज्जत्तग बेइंदिय ओरालियसरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - पर्याप्तक बेइन्द्रिय औदारिक शरीर और अपर्याप्तक बेइन्द्रिय औदारिक शरीर।

एवं तेइंदिया चउरिंदिया वि।

भावार्थ - इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय औदारिक शरीर के भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो-दो प्रकार जान लेने चाहिए।

विवेचन - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय औदारिक शरीरों के भी प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद होने से दो-दो प्रकार कहे गये हैं।

पंचिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय ओरालियसरीरे य मणुस्स पंचिंदिय ओरालियसरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! तिविहे पण्णत्ते। तंजहा - जलयर तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय ओरालियसरीरे य थलयर तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय ओरालियसरीरे य खहयर तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय ओरालियसरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर तीन प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - १. जलचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर २. स्थलचर-तिर्यंच योनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक शरीर और ३. खेचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

जलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - संमुच्छिम जलयर तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय-ओरालियसरीरे य गब्भवक्कंतिय जलयर तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार हैं - सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और गर्भज व्युत्क्रान्तिक जलचर-तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

सम्मुच्छिम जलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पज्जत्तग सम्मुच्छिम तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय-ओरालिय सरीरे य अपज्जत्तग सम्मुच्छिम तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम जलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

एवं गब्भवक्कंतिए वि।

भावार्थ - इसी प्रकार गर्भज जलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो भेद समझ लेने चाहिए।

थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - चउप्पय थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य परिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचेंदिय ओरालिय सरीरे य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! स्थलचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

चउप्पय थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सम्मुच्छिम चउप्पय थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचेंदिय ओरालिय सरीरे य गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और गर्भज चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

सम्मुच्छिम चउप्पयथलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालियसरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - पज्जत्त सम्मुच्छिम चउप्पय थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य अपज्जत्त सम्मुच्छिम चउप्पय थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, जैसे पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

एवं गब्भवक्कंतिए वि।

भावार्थ - इसी प्रकार गर्भज चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो प्रकार समझ लेने चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - उरपरिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य भुयपरिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है-उर:परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

उरपरिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - सम्मुच्छिम उरपरिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य गब्भवक्कंतिय उरपरिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उर:परिसर्प स्थलचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! उर:परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, जैसे सम्मूर्च्छिम-उर:परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

सम्मुच्छिमे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - अपज्जत्त सम्मुच्छिम उरपरिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य पज्जत्त सम्मुच्छिम उरपरिसप्प थलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य।

भावार्थ - सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है-अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं गब्भवक्कंतिय उरपरिसप्पे चउक्कओ भेओ।

भावार्थ - इसी प्रकार गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो प्रकार मिला कर सम्मूर्च्छिम और गर्भज दोनों के कुल चार भेद समझ लेने चाहिए।

एवं भुयपरिसप्पा वि सम्मुच्छिम गब्भवक्कंतिया पज्जत्ता अपज्जत्ता य।

भावार्थ - इसी प्रकार भुजपरिसर्प स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के भी सम्मूर्च्छिम एवं गर्भज तथा दोनों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये चार भेद समझने चाहिए।

खहयरा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य।

भावार्थ - खेचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर भी दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - सम्मूर्च्छिम और गर्भज।

सम्मुच्छिमा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पज्जत्ता अपज्जत्ता य।

भावार्थ - सम्मूर्च्छिम खेचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

गब्भवक्कंतिया वि पज्जत्ता अपज्जत्ता य।

भावार्थ - गर्भज खेचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार का कहा गया है।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर जलचर, स्थलचर और खेचर के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है। जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर भी सम्मूर्च्छिम और गर्भज के भेद से दो प्रकार का है और पर्याप्तक तथा अपर्याप्तक के भेद से प्रत्येक के दो-दो प्रकार हैं। स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के दो भेद हैं - चतुष्पद और परिसर्प। चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर भी सम्मूर्च्छिम और गर्भज के भेद से दो प्रकार का है और इन दोनों के भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो-दो भेद हैं। परिसर्प स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर की उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से दो प्रकार का है। इनके भी सम्मूर्च्छिम और गर्भज ऐसे दो-दो प्रकार होते हैं और उनके भी प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद होते हैं। सभी मिल कर परिसर्प स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के आठ भेद होते हैं। खेचर पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर सम्मूर्च्छिम और गर्भज के भेद से दो प्रकार का है। पुनः प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो भेद होते हैं। इस प्रकार जलचर के चार, चतुष्पद स्थलचर के चार, परिसर्प स्थलचर के आठ और खेचर के चार इस प्रकार तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के बीस भेद होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणूस पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा-सम्मुच्छिम मणूस पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है-सम्मूर्च्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा-पज्जत्तग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य अपज्जत्तग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय ओरालिय सरीरे य॥ ५६१॥

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - पर्याप्तक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और अपर्याप्तक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर।

विवेचन - मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के सम्मूर्च्छिम और गर्भज ये दो भेद हैं। उसमें गर्भज के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो प्रकार होते हैं किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्तक ही होते हैं।

२. संस्थान द्वार

ओरालिय सरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! णाणा संठाण संठिए पण्णत्ते।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! औदारिक शरीर का संस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! औदारिक शरीर नाना संस्थान वाला कहा गया है।

एगिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! णाणा संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय औदारिक शरीर किस संस्थान का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय औदारिक शरीर नाना संस्थान वाला कहा गया है।

पुढविकाइय एगिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! मसूरचंद संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर किस प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर मसूर-चन्द्र (मसूर की दाल) जैसे संस्थान वाला कहा गया है।

एवं सुहुम पुढविकाइयाण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों का औदारिक शरीर संस्थान भी मसूर की दाल के समान है।

बायराण वि एवं चेव।

भावार्थ - बादर पृथ्वीकायिकों का औदारिक शरीर संस्थान भी इसी के समान समझना चाहिए।

पज्जत्तापज्जत्ताण वि एवं चेव।

भावार्थ - पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथ्वीकायिकों का औदारिक शरीर संस्थान भी इसी प्रकार का जानना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में औदारिक शरीर के संस्थानों की प्ररूपणा की गयी है। औदारिक शरीर अनेक प्रकार के संस्थान वाला है क्योंकि जीव की जाति के भेद से संस्थान के भेद होते हैं। एकेन्द्रिय औदारिक शरीर के अनेक प्रकार के संस्थान कहे गये हैं क्योंकि पृथ्वीकाय आदि के अलग अलग संस्थान होते हैं। उनमें सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथ्वीकायिकों का औदारिक शरीर संस्थान मसूर के दाल की-चन्द्राकार अर्द्धभाग की-आकृति जैसा है।

आउक्काइय एगिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! थिबुय बिंदु संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अप्कायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान कैसा कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अप्कायिकों के शरीर का संस्थान स्तिबुकबिन्दु (स्थिर जलबिन्दु) जैसा कहा गया है।

एवं सुहुम बायर पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार का संस्थान अप्कायिकों के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तकों के शरीर का समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - सूक्ष्म आदि के भेद से चार प्रकार के अप्कायिक जीवों के औदारिक शरीर स्तिबुक बिन्दु-परपोटे की आकृति जैसे हैं यानी स्तिबुक की आकृति जैसा बिन्दु जो पवन आदि से चारों तरफ फैला नहीं है उसका जो संस्थान-आकार है उस जैसी आकृति वाले हैं।

तेउक्काइय एगिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किं संठिए पण्णत्ते?

गोयमा! सूईकलाव संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक-एकेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! तेजस्कायिकों के शरीर का संस्थान सूइयों के ढेर (सूचीकलाप) के जैसा कहा गया है।

एवं सुहुम बायर पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार का संस्थान तेजस्कायिकों के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तों के शरीरों का समझना चाहिए।

विवेचन - सूक्ष्म आदि के भेद से चार प्रकार के तैजस्कायिक जीवों के औदारिक शरीर सूइयों के ढेर जैसी आकृति के होते हैं।

वाउक्काइयाण वि पडागा संठाणसंठिए।

भावार्थ - वायुकायिक जीवों के औदारिक शरीर का संस्थान पताका के समान होता है।

एवं सुहुम बायर पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार का संस्थान वायुकायिकों के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तकों के शरीरों का भी समझना चाहिए।

विवेचन - सूक्ष्म आदि के भेद से चार प्रकार के वायुकायिक जीवों के औदारिक शरीर पताका-ध्वजा की आकृति जैसे होते हैं।

वणस्सइकाइयाणं णाणा संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - वनस्पतिकायिकों के शरीर का संस्थान नाना प्रकार का कहा गया है।

एवं सुहुम बायर पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार वनस्पतिकायिकों के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तकों के शरीरों का संस्थान भी नाना प्रकार का होता है।

विवेचन - सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक और अपर्याप्तक प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों के औदारिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर अनेक प्रकार की आकृति वाले होते हैं क्योंकि देश काल और जाति के भेद से उनके संस्थान अनेक प्रकार के कहे गये हैं।

आगमों में कहीं पर भी पांच स्थावरों के शरीरों का 'हुंडक संस्थान' नहीं बताया है। यद्यपि एकेन्द्रिय जीवों के हुण्डक नाम कर्म के उदय से हुण्डक संस्थान ही है। तथापि उस हुण्डक संस्थान में भी 'मसूर की दाल' आदि निश्चित आकार होने से पृथ्वीकायादि चार स्थावरों में निश्चित आकार बता दिया है। वनस्पति में ऐसा निश्चित आकार नहीं होने से उसमें 'नाना प्रकार का संस्थान बताया है।' 'मसूरचन्द्र' आदि संस्थानों का समावेश भी हुण्डक संस्थान में ही होता है। इस पद में पृथ्वीकायादि स्थावरों के चारों भेदों (सूक्ष्म, बादर, पर्याप्तक अपर्याप्तक) में 'मसूर की दाल' आदि निश्चित संस्थान बताये गये हैं। क्योंकि जो आकार बादरों के होते हैं वे ही आकार सूक्ष्मों में भी छोटे रूप में होते हैं। प्रज्ञापना पद १, जीवाभिगम, उत्तराध्ययन सूत्र अ. ३६ आदि में एकेन्द्रियों के अपर्याप्तक जीवों के संस्थान नहीं बताये गये हैं। क्योंकि अपर्याप्तक जीवों के शरीर वर्णादि से असम्प्राप्त (विभाग नहीं किया जा सके) होने से इन्द्रिय ग्रांही नहीं होते हैं। अतः यहाँ पर उनके स्पष्ट आकार ग्रहण नहीं होने से संस्थान नहीं बताये हैं। परिमण्डल आदि पांच संस्थानों की अपेक्षा संस्थानों का निषेध किया गया है। समचतुरस्त्र आदि ६ संस्थानों में से तो यहाँ बताये गये वैसे संस्थान होते हैं। विकलेन्द्रिय के सभी भेदों में कोई भी निश्चित आकार नहीं होकर नानाविध आकार होने से उनमें 'हुण्डक संस्थान' कह दिया है, ऐसी संभावना है। यहाँ पर औदारिक शरीर का और वैक्रिय शरीर का जैसा संस्थान बताया है वैसा ही आकार उसके तैजस और कार्मण शरीर का समझना चाहिए। वनस्पति में गुलाब, कमल आदि अनेक पुष्पों का जो सुन्दर आकार दृष्टिगोचर होता है वह आकार अनेक जीवों के शरीरों का है। एक एक जीव के शरीर का आकार वैसा सुन्दर नहीं होने से एकेन्द्रियों में हुण्डक संस्थान ही माना गया है।

बेइंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! हुंड संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान हुंडक संस्थान वाला कहा गया है।

एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार पर्याप्तक और अपर्याप्तक बेइन्द्रिय औदारिक शरीरों का संस्थान भी हुंडक कहा गया है।

एवं तेइंदियचउरिंदियाण वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय के पर्याप्तक, अपर्याप्तक शरीरों का संस्थान भी हुंडक समझना चाहिए।

विवेचन - पर्याप्तक और अपर्याप्तक बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों के प्रत्येक के औदारिक शरीर हुण्डक संस्थान वाले होते हैं।

तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विह संठाणसंठिए पण्णत्ते। तंजहा - समचउरंस संठाणसंठिए जाव हुंड संठाणसंठिए वि, एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि ३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, वह इस प्रकार है - समचतुरस्र संस्थान से लेकर हुंडक संस्थान पर्यन्त। इसी प्रकार पर्याप्तक अपर्याप्तक तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर के संस्थान के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

विवेचन - शरीर के आकार को संस्थान कहते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर छहों प्रकार के संस्थान वाले होते हैं। छह संस्थानों का स्वरूप इस प्रकार है -

१. समचतुरस्र संस्थान - सम का अर्थ है समान, चतुः का अर्थ है चार और अस्र का अर्थ है कोण। पालथी मार कर बैठने पर जिस शरीर के चारों कोण समान हों अर्थात् आसन और कपाल का अन्तर, दोनों जानुओं का अन्तर, वाम स्कन्ध और दक्षिण जानु का अन्तर तथा दक्षिण स्कन्ध और वाम जानु का अन्तर समान हो, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं।

अथवा सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जिस शरीर के सम्पूर्ण अवयव ठीक प्रमाण वाले हों, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं। जैसे सभी जाति के देव समचतुरस्र संस्थान वाले ही होते हैं।

२. न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान - वट वृक्ष को न्यग्रोध कहते हैं। जैसे वट वृक्ष ऊपर के भाग में फैला हुआ होता है और नीचे के भाग में संकुचित, उसी प्रकार जिस संस्थान में नाभि के ऊपर का भाग विस्तार वाला अर्थात् शरीर शास्त्र में बताए हुए प्रमाण वाला हो और नीचे का भाग हीन अवयव वाला हो उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते हैं।

३. सादि संस्थान - यहाँ सादि शब्द का अर्थ नाभि से नीचे का भाग है। जिस संस्थान में नाभि के नीचे का भाग पूर्ण और ऊपर का भाग हीन हो उसे सादि संस्थान कहते हैं।

कहीं कहीं सादि संस्थान के बदले साची संस्थान भी मिलता है। साची सेमल (शाल्मली) वृक्ष को कहते हैं। शाल्मली वृक्ष का धड़ जैसा पुष्ट होता है वैसा ऊपर का भाग नहीं होता। इसी प्रकार जिस शरीर में नाभि के नीचे का भाग परिपूर्ण होता है पर ऊपर का भाग हीन होता है वह साची संस्थान है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४. वामन संस्थान - जिस शरीर में छाती, पीठ, पेट आदि अवयव पूर्ण हों पर हाथ, पैर आदि अवयव छोटे हों, उसे वामन संस्थान कहते हैं।

५. कुब्ज संस्थान - जिस शरीर में हाथ, पैर, सिर, गर्दन आदि अवयव ठीक हों पर छाती, पेट, पीठ आदि टेढ़े हों, उसे कुब्ज संस्थान कहते हैं।

६. हुंडक संस्थान - जिस शरीर के समस्त अवयव बेढब (बेडौल) हों अर्थात् एक भी अवयव शास्त्रोक्त प्रमाण के अनुसार न हो, वह हुंडक संस्थान कहलाता है।

सम्मुच्छिम तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते, एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर हुंडक संस्थान वाला कहा गया है। इसी प्रकार पर्याप्तक, अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर का संस्थान भी हुण्डक ही समझना चाहिए।

गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विह संठाणसंठिए पण्णत्ते। तंजहा - समचउरंसे जाव हुंडसंठाणसंठिए। एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि ३। एवमेए तिरिक्खजोणियाणं ओहियाणं णव आलावगा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, वह इस प्रकार है - समचतुरस्र संस्थान से लेकर हुंडक संस्थान तक। इस प्रकार पर्याप्तक, अपर्याप्तक गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरों के भी ये छह संस्थान समझने चाहिए।

इस प्रकार औघिक (सामान्य) तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरों के संस्थानों के ये पूर्वोक्त नौ आलापक समझने चाहिए।

विवेचन - सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की तरह पर्याप्तक और अपर्याप्तक तिर्यंच पंचेन्द्रियों के विषय में भी समझना चाहिए, इस तरह ये तीन सूत्र हुए। इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रियों के भी तीन सूत्र कहना चाहिए किन्तु इन तीन सूत्रों में औदारिक शरीर हुण्डक संस्थान वाला कहना चाहिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि सभी सम्मूर्च्छिम जीव एक हुण्डक संस्थान वाले ही होते हैं। तीन सूत्र सामान्य गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों के भी होते हैं किन्तु इन तीन सूत्रों में छहों प्रकार के संस्थान कहना चाहिए क्योंकि गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों में समचतुरस्र आदि छहों संस्थान संभव है। इस प्रकार सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय विषयक नव आलापक होते हैं।

जलयर तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विह संठाण संठिए पण्णत्ते। तंजहा - समचउरंसे जाव हुंडे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, जैसे - समचतुरस्र यावत् हुण्डक संस्थान।

एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार पर्याप्तक, अपर्याप्तक जलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय औदारिक शरीरों के भी संस्थान छहों प्रकार के समझने चाहिए।

सम्मुच्छिम जलयरा हुंड संठाणसंठिया, एएसिं चेव पज्जत्ता अपज्जत्तगा वि एवं चेव।

भावार्थ - सम्मूर्च्छिम-जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय के औदारिक शरीर हुण्डक संस्थान वाले हैं। उनके पर्याप्त, अपर्याप्तकों के औदारिक शरीर भी इसी प्रकार हुण्डक संस्थान के होते हैं।

गब्भवक्कंतिय जलयरा छव्विह संठाणसंठिया, एवं पज्जत्तापज्जत्ताण वि।

भावार्थ - गर्भज जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रियों के औदारिक शरीर छहों प्रकार के संस्थान वाले हैं। इसी प्रकार पर्याप्तक, अपर्याप्तक गर्भज जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रियों के औदारिक शरीर भी छहों संस्थान वाले समझने चाहिए।

एवं थलयराण वि णव सुत्ताणि।

भावार्थ - इसी प्रकार स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर संस्थानों के नौ सूत्र भी पूर्वोक्त प्रकार से समझ लेने चाहिए।

एवं चउप्पय थलयराण वि उरपरिसप्प थलयराण वि भुयपरिसप्प थलयराण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार चतुष्पद-स्थलचरों, उरःपरिसर्प-स्थलचरों एवं भुजपरिसर्प-स्थलचरों के औदारिक शरीर संस्थानों के नौ-नौ सूत्र भी पूर्वोक्त प्रकार से समझ लेने चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं खहयराण वि णव सुत्ताणि, णवरं सव्वत्थ सम्मुच्छिमा हुंड संठाणसंठिया भाणियव्वा, इयरे छसु वि।

भावार्थ - इसी प्रकार खेचरों के औदारिक शरीर संस्थानों के भी नौ सूत्र पूर्वोक्त प्रकार से समझने चाहिए। विशेषता यह है कि सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रियों के औदारिक शरीर सर्वत्र हुण्डक संस्थान वाले कहने चाहिए। शेष सामान्य, गर्भज आदि के शरीर तो छहों संस्थानों वाले होते हैं।

विवेचन - जिस प्रकार सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रियों के विषय में नव सूत्र (आलापक) कहे हैं उसी क्रम से जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय, सामान्य स्थलचर, चतुष्पद स्थलचर, उरपरिसर्प स्थलचर, भुज परिसर्प स्थलचर और खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रियों के प्रत्येक के नौ-नौ सूत्र समझना चाहिए। इस प्रकार सब मिल कर तिर्यंच पंचेन्द्रियों के ६३ (त्रेसठ) सूत्र होते हैं।

मणूस पंचिंदिय ओरालिय सरीरे णं भंते! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विह संठाणसंठिए पण्णत्ते। तंजहा - समचउरंसे जाव हुंडे।

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर छहों प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है, जैसे - समचतुरस्र यावत् हुण्डक संस्थान वाला।

पज्जत्तापज्जत्ताण वि एवं चेव।

भावार्थ - पर्याप्तक और अपर्याप्तक मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर भी इसी प्रकार छहों संस्थान वाले होते हैं।

गब्भवक्कंतियाण वि एवं चेव, पज्जत्तापज्जत्ताण वि एवं चेव।

भावार्थ - गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर भी इसी प्रकार छहों संस्थान वाले होते हैं। पर्याप्तक अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों के औदारिक शरीर भी छह संस्थान वाले समझने चाहिए।

सम्मुच्छिमाणं पुच्छा?

गोयमा! हुंडसंठाणसंठिया पण्णत्ता॥ ५७०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों चाहे पर्याप्तक हो, या अपर्याप्तक के औदारिक शरीर किस संस्थान वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के औदारिक शरीर हुण्डक संस्थान वाले होते हैं।

विवेचन - सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रियों के नौ सूत्रों की तरह मनुष्यों में भी नौ सूत्र कहना चाहिए। सभी सम्मूर्च्छिम मनुष्य हुण्डक संस्थान वाले और गर्भज मनुष्य छहों संस्थान वाले होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३. प्रमाण (अवगाहना) द्वार

ओरालियसरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! औदारिक शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में औदारिक शरीर की अवगाहना का प्रमाण बताया गया है। औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की है जो उत्पत्ति के प्रथम समय में पृथ्वीकायिक आदि के शरीर की अपेक्षा है। उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन की अवगाहना लवण समुद्र के गोतीर्थ आदि में रहे हुए पद्मनाल (कमल नाल) की अपेक्षा समझनी चाहिए।

एगिंदिय ओरालियस्स वि एवं चेव जहा ओहियस्स।

भावार्थ - एकेन्द्रिय के औदारिक शरीर की अवगाहना भी औघिक (सामान्य) औदारिक शरीर की कही है उसी प्रकार समझनी चाहिए।

पुढविकाइय एगिंदिय ओरालिय सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की कही गई है।

एवं अपज्जत्तगाण वि पज्जत्तगाण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार अपर्याप्तक एवं पर्याप्तक पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरों की भी अवगाहना समझनी चाहिए।

एवं सुहुमाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं।

भावार्थ - इसी प्रकार सूक्ष्म पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरों की अवगाहना भी समझनी चाहिए।

बायराणं पज्जत्तापज्जत्ताण वि। एवं एसो णवओ भेदो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - बादर पर्याप्तक एवं अपर्याप्तक पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक शरीरों की अवगाहना की वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझनी चाहिए। इस प्रकार पृथ्वीकायिकों के शरीरावगाहना सम्बन्धी ये नौ भेद (आलापक) हुए।

जहा पुढविक्काइयाणं तहा आउक्काइयाण वि तेउक्काइयाण वि वाउक्काइयाण वि।

भावार्थ - जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों के औदारिक शरीरावगाहना सम्बन्धी नौ आलापक (भेद) हुए, उसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के भी औदारिकशरीरावगाहना-सम्बन्धी आलापक कहने चाहिए।

विवेचन - जिस प्रकार औघिक-सामान्य औदारिक शरीर की अवगाहना कही है उसी प्रकार एकेन्द्रिय औदारिक शरीर की अवगाहना समझनी चाहिए। पृथ्वी, अप्, तेजस् और वायु, सूक्ष्म और बादर तथा प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक औदारिक शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है। पृथ्वीकाय आदि के नौ-नौ सूत्र (आलापक) इस प्रकार होते हैं - १. औघिक-सामान्य-सूत्र २. औघिक अपर्याप्त सूत्र ३. औघिक पर्याप्त सूत्र ४. सूक्ष्म सूत्र ५. सूक्ष्म अपर्याप्त सूत्र ६. सूक्ष्म पर्याप्त सूत्र ७. बादर सूत्र ८. बादर अपर्याप्त सूत्र और ९. बादर पर्याप्त सूत्र।

वणस्सइकाइय ओरालियसरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिकों के औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिकों के औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है।

अपज्जत्तगाणं जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - वनस्पतिकायिक अपर्याप्तकों के औदारिक शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना भी अंगुल के असंख्यातवें भाग की है।

पज्जत्तगाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं।

भावार्थ - वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है।

बायराणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्ताण वि एवं चेव। अपज्जत्ताणं जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - बादर वनस्पतिकायिकों के औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक हजार योजन की है। इनके पर्याप्तकों की औदारिक शरीरावगाहना भी इसी प्रकार की समझनी चाहिए। इनके अपर्याप्तकों की औदारिक शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार से अंगुल के असंख्यातवें भाग की समझनी चाहिए।

सुहुमाणं पज्जत्तापज्जत्ताण य तिण्ह वि जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - वनस्पतिकायिकों के सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक, इन तीनों की औदारिक शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट दोनों रूप से अंगुल के असंख्यातवें भाग की है।

विवेचन - पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों की तरह वनस्पतिकायिक जीवों के भी नौ सूत्र होते हैं परन्तु औधिक (सामान्य) वनस्पति सूत्र में, औधिक वनस्पतिक पर्याप्त सूत्र में, बादर सूत्र में और बादर पर्याप्त सूत्र में अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक हजार योजन प्रमाण होती है जो पद्मनाल की अपेक्षा समझनी चाहिए। शेष पांच सूत्रों में औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है।

बेइंदिय ओरालियसरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय के औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय के औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट बारह योजन की है।

एवं सव्वत्थ वि अपज्जत्तगाणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं जहण्णेण वि उक्कोसेण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार सर्वत्र बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चउरिन्द्रियों में अपर्याप्तक जीवों की औदारिक शरीरावगाहना भी जघन्य और उत्कृष्ट (दोनों प्रकार से) अंगुल के असंख्यातवें भाग की कहनी चाहिए।

पज्जत्तगाणं जहेव ओरालियस्स ओहियस्स।

भावार्थ - पर्याप्तक बेइन्द्रियों के औदारिक शरीर की अवगाहना भी उसी प्रकार है, जिस प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेइन्द्रियों के औघिक औदारिक शरीर की कही है। अर्थात् जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट बारह योजन की होती है।

एवं तेइंदियाणं तिण्णि गाउयाइं, चउरिंदियाणं चत्तारि गाउयाइं।

कठिन शब्दार्थ - गाउयाइं - गव्यूति-गाऊ।

भावार्थ - इसी प्रकार औघिक और पर्याप्तक तेइन्द्रिय के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाऊ की है तथा औघिक और पर्याप्तक चतुरिन्द्रियों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना चार गाऊ की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीन विकलेन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर की अवगाहना का निरूपण किया गया है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय प्रत्येक के तीन-तीन सूत्र कहे हैं-१. औघिक सूत्र २. अपर्याप्त सूत्र और ३. पर्याप्त सूत्र। औघिक सूत्र और पर्याप्त सूत्र में बेइन्द्रिय के औदारिक शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट बारह योजन, तेइन्द्रिय की तीन गाऊ और चउरिन्द्रिय की चार गाऊ प्रमाण होती है। अपर्याप्त सूत्र में जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं उक्कोसेणं जोयणसहस्सं ३, एवं सम्मुच्छिमाणं ३, गब्भवक्कंतियाण वि ३, एवं चेव णवओ भेदो भाणियव्वो।

भावार्थ -पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों के औघिक औदारिक शरीर की, उनके २. पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की तथा उनके ३. अपर्याप्तकों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की है। तथा सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के औघिक और पर्याप्तक औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना भी इसी प्रकार एक हजार योजन की समझनी चाहिए किन्तु सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तक तिर्यंच पंचेन्द्रिय के औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है। गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों तथा उनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना भी इसी प्रकार समझनी चाहिए, किन्तु इनके अपर्याप्तकों की अवगाहना पूर्ववत् होती है। इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की औदारिक शरीरावगाहना सम्बन्धी कुल ९ भेद (आलापक) होते हैं।

एवं जलयराण वि जोयणसहस्स णवओ भेदो।

भावार्थ -इसी प्रकार औघिक और पर्याप्तक जलचरों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की औदारिक शरीरावगाहना के समान होती है। अपर्याप्तक जलचरों की औदारिक शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट पूर्ववत् जाननी चाहिए। इसी प्रकार पूर्ववत् इसकी औदारिक शरीरावगाहना के ९ भेद (विकल्प) होते हैं।

थलयराण वि णव भेदा ९, उक्कोसेणं छ गाउयाइं, पज्जत्तगाण वि एवं चेव,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मुच्छिमाणं पज्जत्तगाण य उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं ३, गब्भवक्कंतियाणं उक्कोसेणं छ गाउयाइं पज्जत्ताण य २, ओहिय चउप्पय पज्जत्तग गब्भवक्कंतिय पज्जत्तगाण वि उक्कोसेणं छ गाउयाइं, सम्मुच्छिमाणं पज्जत्ताण य गाउयपुहुत्तं उक्कोसेणं।

भावार्थ - स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की औदारिक शरीरावगाहना सम्बन्धी पूर्ववत् ९ विकल्प होते हैं। समुच्चय स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच की औदारिक शरीरावगाहना उत्कृष्टतः छह गव्यूति की होती है। सम्मूर्च्छिम स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यचों के एवं उनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना गव्यूति पृथक्त्व (दो गाऊ से नौ गाऊ तक) की होती है। उनके अपर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों के औदारिक शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट छह गव्यूति की और उनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना भी इतनी ही होती है। औघिक चतुष्पदों के इनके पर्याप्तकों के तथा गर्भज चतुष्पदों के तथा इनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट छह गव्यूति की होती है। इनके अपर्याप्तकों की अवगाहना पूर्ववत् होती है। सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के तथा उनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट रूप से गव्यूति पृथक्त्व की होती है।

एवं उरपरिसप्पाण वि ओहिय गब्भवक्कंतिय पज्जत्तगाणं जोयणसहस्सं। सम्मुच्छिमाणं पज्जत्ताण य जोयणपुहुत्तं।

भावार्थ - इसी प्रकार उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के औघिक गर्भज तथा उनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की होती है। सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर-पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों के तथा उनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना योजन पृथक्त्व की होती है। इनके अपर्याप्तकों की अवगाहना पूर्ववत् होती है।

भुयपरिसप्पाणं ओहिय गब्भवक्कंतियाण य उक्कोसेणं गाउयपुहुत्तं। सम्मुच्छिमाणं धणुपहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भुजपरिसर्प-स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के औघिक गर्भज तथा उनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की अवगाहना उत्कृष्ट गव्यूति पृथक्त्व की होती है। सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के तथा उनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना धनुष पृथक्त्व की होती है।

खहयराणं ओहिय गब्भवक्कंतियाण सम्मुच्छिमाण य तिण्ह वि उक्कोसेणं धणुपुहुत्तं। इमाओ संगहणिगाहाओ-

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

जोयणसहस्सं छग्गाउयाइं तत्तो य जोयणसहस्सं।
गाउयपुहुत्त भुयए धणुपुहुत्तं च पक्खीसु॥ १॥
जोयणसहस्सं गाउयपुहुत्त तत्तो य जोयणपुहुत्तं।
दोण्हं तु धणुपुहुत्तं सम्मुच्छिमे होइ उच्चत्तं॥ २॥

भावार्थ - खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के औघिकों, गर्भजों एवं सम्मूर्च्छिमों इन तीनों के औदारिक शरीरों की उत्कृष्ट अवगाहना धनुष पृथक्त्व की होती है।

अर्थ - गर्भज जलचरों की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन की, चतुष्पद स्थलचरों की उत्कृष्ट अवगाहना छह गव्यूति की, तत्पश्चात् उरःपरिसर्प-स्थलचरों की अवगाहना एक हजार योजन की होती है। भुजपरिसर्प-स्थलचरों की गव्यूति पृथक्त्व की और खेचर पक्षियों की धनुष पृथक्त्व की औदारिक शरीरावगाहना होती है।

सम्मूर्च्छिम जलचरों की औदारिक शरीरावगाहना उत्कृष्ट एक हजार योजन की, चतुष्पद-स्थलचरों की अवगाहना गव्यूति पृथक्त्व की, उरःपरिसर्पों की योजन पृथक्त्व की, भुजपरिसर्पों की तथा औघिक और पर्याप्तक इन दोनों एवं सम्मूर्च्छिम खेचर पक्षियों की धनुषपृथक्त्व की उत्कृष्ट औदारिक शरीरावगाहना समझनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर की अवगाहना का वर्णन किया गया है। सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय, जलचर, सामान्य स्थलचर, चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में प्रत्येक के ९-९ सूत्र होते हैं जो इस प्रकार है - औघिक के तीन सूत्र, सम्मूर्च्छिम के तीन सूत्र और गर्भज के तीन सूत्र। इनमें सभी अपर्याप्तक जीवों की शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट से अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है। शेष जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट सामान्य तिर्यंच पंचेन्द्रिय और जलचर की हजार योजन, सामान्य स्थलचर, सामान्य चतुष्पद स्थलचर और गर्भज स्थलचर की छह गाऊ, सम्मूर्च्छिम की गाऊ पृथक्त्व, औघिक, सामान्य उरपरिसर्प और गर्भज उरपरिसर्प की हजार योजन, सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प की योजन पृथक्त्व तथा सामान्य भुजपरिसर्प और गर्भज भुजपरिसर्प की गाऊ पृथक्त्व, सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प की धनुष पृथक्त्व सामान्य खेचर, गर्भज तथा सम्मूर्च्छिम खेचर इन सभी की अवगाहना धनुष पृथक्त्व प्रमाण होती है। इसके लिए दो संग्रहणी गाथाएं भी दी गयी है जिनका भावार्थ इस प्रकार है -

गर्भज जलचरों की उत्कृष्ट शरीरावगाहना हजार योजन, चतुष्पद स्थलचरों की छह गाऊ, उरपरिसर्प स्थलचरों की हजार योजन, भुजपरिसर्प स्थलचर की गाऊ पृथक्त्व, पक्षियों की धनुष पृथक्त्व तथा सम्मूर्च्छिम जलचरों का उत्कृष्ट शरीर प्रमाण हजार योजन, चतुष्पद स्थलचरों का गाऊ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथक्त्व, उरपरिसर्प स्थलचरों का योजन पृथक्त्व, भुजपरिसर्प स्थलचरों और पक्षियों का शरीर प्रमाण धनुष पृथक्त्व होता है। इस प्रकार तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर की अवगाहना कही गयी है।

मणूस ओरालिय सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों के औदारिक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट तीन गव्यूति की होती है।

एवं अपज्जत्ताणं जहण्णेणं वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - अपर्याप्तक मनुष्यों के औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है।

सम्मुच्छिमाणं जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के औदारिक शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है।

गब्भवक्कंतियाणं पज्जत्ताण य जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं॥ ५७१॥

भावार्थ - गर्भज मनुष्यों के तथा इनके पर्याप्तकों के औदारिक शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट तीन गव्यूति की होती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्य औदारिक शरीर की अवगाहना का प्रमाण कहा गया है। उत्कृष्ट तीन गाऊ की अवगाहना देवकुरु आदि क्षेत्रों के मनुष्यों की अपेक्षा समझनी चाहिए।

वेउव्वियसरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - एगिंदिय वेउव्विय सरीरे य पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैक्रिय शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वैक्रिय शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - एकेन्द्रिय-वैक्रिय शरीर और पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर।

जइ एगिंदिय वेउव्विय सरीरे किं वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे, अवाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे, णो अवाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि एकेन्द्रिय जीवों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या अवायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अवायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

जइ वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे किं सुहुमवाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे, बायर वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! णो सुहुम वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे, बायर वाउक्काइय-एगिंदियवेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या सूक्ष्म *वायुकायिक एकेन्द्रिय के होता है, अथवा बादर वायुकायिक एकेन्द्रिय* के होता है?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म वायुकायिक एकेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर नहीं होता किन्तु बादर वायुकायिक एकेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर होता है।

जइ बायर वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे किं पज्जत्त बायर वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे, अपज्जत्त बायर वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! पज्जत्त बायर वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे, णो अपज्जत्त बायरवाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि बादर वायुकायिक एकेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या पर्याप्तक बादर वायुकायिक एकेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर होता है, अथवा अपर्याप्तक बादर वायुकायिक एकेन्द्रिय के होता है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अपर्याप्तक बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

विवेचन - यहाँ पर पर्याप्तक बादर वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर बताया गया है। वह सभी पर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों के नहीं समझना चाहिए किन्तु वैक्रिय लब्धि युक्त उत्कलिका, मण्डलिका आदि प्रकारों वाली तीव्र गति से चलने वाली वायुकाय के लिए ही समझना चाहिए। *सामान्य गति वाली वायु तो लोकान्त तक सर्वत्र (लोक के बहुत असंख्यात भागों में)* होती है। जब कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोकान्त में वैक्रिय शरीर वायुकाय का निषेध किया गया है। अतः सब प्रकार की वायुकाय को वैक्रिय शरीर वाली समझकर आंधी तूफान आदि रूप वायुकाय के ही वैक्रिय शरीर समझना चाहिए।

जइ पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे जाव किं देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि जाव देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या नैरयिक पंचेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर होता है, अथवा यावत् देव पंचेन्द्रिय के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है और यावत् देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

जइ णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं रयणप्पभा पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे जाव किं अहेसत्तमा पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! रयणप्पभा पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि जाव अहेसत्तमा-पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है अथवा यावत् अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है और यावत् अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

जइ रयणप्पभा पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं पज्जत्तग रयणप्पभा-पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, अपज्जत्तग रयणप्पभा पुढवि णेरइय-पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! पज्जत्तग रयणप्पभा पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, अपज्जत्तग रयणप्पभा पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है अथवा रत्नप्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है और रत्नप्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक नैरयिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

एवं जाव अहेसत्तमाए दुगओ भेदो भाणियव्वो।

भावार्थ - इसी प्रकार शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों से लेकर अध:सप्तमपृथ्वी तक के नैरयिक पंचेन्द्रियों के पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों भेदों में वैक्रिय शरीर होने का कथन करना चाहिए।

जइ तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं सम्मुच्छिम तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, गब्भवक्कंतिय तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! णो सम्मुच्छिम तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, गब्भवक्कंतिय तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है अथवा गर्भज तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता, किन्तु गर्भज तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है।

जइ गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं संखिज्ज वासाउय-गब्भवक्कंतिय तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, असंखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्वियसरीरे?

गोयमा! संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, णो असंखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि गर्भज तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं पज्जत्तग संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, अपज्जत्तग संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्वियसरीरे?

गोयमा! पज्जत्तग संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे? णो अपज्जत्तग संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है अथवा अपर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क-गर्भज पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक-संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, किन्तु अपर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

जइ संखिज्ज वासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, किं जलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, थलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, खहयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! जलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय-पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि, थलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्ख-जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि, खहयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्ख-जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या जलचर-संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, स्थलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है अथवा खेचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है, स्थलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है तथा खेचरसंख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ जलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं पज्जत्तग जलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, अपज्जत्तग जलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, अपज्जत्तग जलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय-तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! पज्जत्तग जलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय-वेउव्विय सरीरे, णो अपज्जत्तग जलयर संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या पर्याप्तक जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अथवा अपर्याप्तक जलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक जलचर संख्यातवर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, किन्तु अपर्याप्तक जलचर संख्यातवर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

जइ थलयर तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय जाव सरीरे किं चउप्पय जाव सरीरे, परिसप्प जाव सरीरे?

गोयमा! चउप्पय जाव सरीरे वि, परिसप्प जाव सरीरे वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि स्थलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है? तो क्या पर्याप्तक स्थलचर या अपर्याप्तक स्थलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रियों के होता है? अथवा चतुष्पद स्थलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंच-पंचेन्द्रियों के होता है या फिर उर:परिसर्प पर्याप्तक अथवा भुजपरिसर्प पर्याप्तक स्थलचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक चतुष्पद स्थलचर संख्यातवर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है, यावत् परिसर्प उर:परिसर्प एवं भुजपरिसर्प संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

एवं सव्वेसिं णेयव्वं जाव खहयराणं पज्जत्ताणं, णो अपज्जत्ताणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार खेचर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर जान लेना चाहिए, विशेषता यह है कि खेचर-पर्याप्तकों के वैक्रिय शरीर होता है, अपर्याप्तक के नहीं होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वैक्रिय शरीर के भेद प्रभेद बताये गये हैं। वैक्रिय शरीर एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय शरीर के भेद से मुख्यतः दो प्रकार का कहा है। उनमें भी एकेन्द्रियों में बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीवों को ही वैक्रिय शरीर होता है अन्य में वैक्रिय लब्धि संभव नहीं है। कहा है कि -

"तिण्हं ताव रासीणं वेउव्वियलद्धी चेव नत्थि, बायर पज्जत्ताणंपि असंखेज्जइ भागमेत्ताणं"

अर्थात् - तीन राशि (सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म अपर्याप्तक और बादर अपर्याप्तक) को वैक्रिय लब्धि नहीं होती और बादर पर्याप्तक जीवों में भी असंख्यातवें भाग मात्र में वैक्रिय लब्धि होती है।

पंचेन्द्रियों में भी जलचर चतुष्पद उरःपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रियों में संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले गर्भज पर्याप्तकों में ही वैक्रिय लब्धि होती है अन्य में नहीं।

जइ मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं सम्मुच्छिम मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! णो सम्मुच्छिम मणूस पंचिंदियवेउव्विय सरीरे, गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि मनुष्य-पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अथवा गर्भज-मनुष्य-पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता, किन्तु गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है।

जइ गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय-मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, अकम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय-वेउव्विय सरीरे, अंतरदीवग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, णो अकम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, णो अंतरदीवग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है या अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, किन्तु न तो अकर्मभूमिक-गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है और न ही अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है।

जइ कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं संखिज्ज वासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, असंखिज्ज वासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, णो असंखिज्ज वासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या संख्येय वर्षायुष्क-कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अथवा असंख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, किन्तु असंख्येय वर्षायुष्क-कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

जइ संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं पज्जत्तग संखिज्ज वासाउय कम्मभूमग-मणूस-पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, अपज्जत्तग-संखिज्ज वासाउय-कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! पज्जत्तग संखिज्ज वासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस पंचिंदिय-वेउव्वियसरीरे, णो अपज्जत्तग संखिज्ज वासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस-पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या पर्याप्तक संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अथवा अपर्याप्तक संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, किन्तु अपर्याप्तक संख्येय वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - मनुष्यों में गर्भज, पर्याप्तक, संख्येय वर्षायुष्क मनुष्यों को छोड़ कर शेष मनुष्यों में वैक्रिय लब्धि संभव नहीं है अर्थात् पंचेन्द्रिय गर्भज कर्मभूमिक संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले पर्याप्तक मनुष्यों के ही वैक्रिय शरीर होता है।

जइ देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे जाव वेमाणिय देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि जाव वेमाणिय देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि देवपंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या भवनवासीदेव-पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अथवा यावत् वैमानिक देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है और यावत् वैमानिक देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

जइ भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं असुरकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे जाव थणियकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! असुरकुमार० जाव थणियकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है तो क्या असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है अथवा यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों तक के भी वैक्रिय शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार-भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है और यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों तक के भी वैक्रिय शरीर होता है।

जइ असुरकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे किं पजत्तग असुरकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे, अपजत्तग असुरकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे?

गोयमा! पजत्तग असुरकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि, अपजत्तग असुरकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे वि, एवं जाव थणियकुमाराणं दुगओ भेदो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, तो क्या पर्याप्तक असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है, अपर्याप्तक असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर होता है ?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है और अपर्याप्तक असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के भी वैक्रिय शरीर होता है।

इसी प्रकार स्तनितकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों तक के दोनों (पर्याप्तक और अपर्याप्तक) भेदों के वैक्रिय शरीर जानना चाहिए।

एवं वाणंमतराणं अट्ठविहाणं, जोइसियाणं पंचविहाणं।

भावार्थ - इसी तरह आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवों के तथा पांच प्रकार के ज्योतिषी देवों के वैक्रिय शरीर होता है।

वेमाणिया दुविहा-कप्पोवगा कप्पातीता य। कप्पोवगा बारसविहा, तेसिं पि एवं चेव दुइओ भेदो। कप्पातीता दुविहा-गेवेज्जगा य अणुत्तरोववाइया य, गेवेज्जगा णवविहा, अणुत्तरोववाइया पंचविहा, एएसि पज्जत्तापज्जत्ताभिलावेणं दुगओ भेदो भाणियव्वो॥ ५७२॥

भावार्थ - वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं - कल्पोपपन्न और कल्पातीत। कल्पोपपन्न बारह प्रकार के हैं। उनके भी पर्याप्तक और अपर्याप्तक, यों दो-दो भेद होते हैं। उन सभी के वैक्रिय शरीर होता है। कल्पातीत वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं - ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरौपपातिक। ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के होते हैं और अनुत्तरौपपातिक पांच प्रकार के। इन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक के अभिलाप से दो-दो भेद कहने चाहिए। इन सबके वैक्रिय शरीर होता है।

विवेचन - देवों में सभी प्रकार के पर्याप्तकों, अपर्याप्तकों, भवनपतियों, वाणव्यन्तरों, ज्योतिषियों और वैमानिकों के वैक्रिय शरीर होता है। यहाँ पर जो वैमानिक देवों के दो प्रकार बताये हैं उनका अर्थ इस प्रकार समझना चाहिए -

१. कल्पोपपन्न - कल्प का अर्थ है मर्यादा अर्थात् जहां पर स्वामी सेवक भाव (छोटे बड़े रूप) की मर्यादा होती है, सभी देव एक समान ऋद्धि एवं सत्ता तथा शक्ति वाले नहीं होते हैं। उन देवों (बारह देवलोकों) को कल्पोपपन्न कहते हैं।

२. कल्पातीत - जहाँ पर स्वामी सेवक भाव की मर्यादाएं नहीं हों अर्थात् सभी देव एक सरीखी ऋद्धि एवं शक्ति आदि वाले हों, सभी देव अहमिन्द्र हों। ऐसे नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तरौपपातिक देवों को कल्पातीत कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेउव्विय सरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! णाणा संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैक्रिय शरीर किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वैक्रिय शरीर नाना संस्थान वाला कहा गया है।

वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! पडागा संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक-एकेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर किस प्रकार के संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वायुकायिक एकेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर पताका के आकार का कहा गया है।

णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे दुविहे पण्णत्ते। तंजहा - भवधारणिज्जे य उत्तरवेउव्विए य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से णं हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते। तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से वि हुंडसंठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक पंचेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर किस संस्थान का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक-पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर दो प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है- भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमें से जो भवधारणीय-वैक्रिय शरीर है, उसका संस्थान हुंडक है तथा जो उत्तरवैक्रिय शरीर है, वह भी हुंडकसंस्थान वाला होता है।

विवेचन - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय - अपने अपने उत्पत्ति स्थान में जीवों द्वारा जो भवधारणीय वैक्रिय शरीर की रचना की जाती है वह एक ही प्रकार की होती है। जिससे स्पष्ट होता है कि भवधारणीय वैक्रिय शरीर बनाते समय बाहर के पुद्गलों की आवश्यकता नहीं रहती है जबकि उत्तरवैक्रिय शरीर बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना नहीं बनता है।

शंका - बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करने से ही उत्तरवैक्रिय होता है यह कैसे माना जाय?

समाधान - भगवती सूत्र में उत्तरवैक्रिय का वर्णन करते हुए इस प्रकार कथन किया गया है -

"देवे णं भंते! महिड्ढिए जाव महाणुभागे बाहिरए पोग्गलए अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए? गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे। देवे णं भंते! बाहिरए पोग्गलए परियाइत्ता पभू? हंता पभू।"

हे भगवन्! महर्द्धिक यावत् महानुभाव देव बाहर के पुद्गलों को ग्रहण न करके एक वर्ण वाले एक रूप की विकुर्वणा करने में समर्थ है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

हे भगवन्! देव बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके विकुर्वणा करने में समर्थ है?

हाँ गौतम! समर्थ है।

इससे स्पष्ट होता है कि बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करने से ही उत्तरवैक्रिय होता है।

नैरयिकों के अत्यंत अशुभ कर्म के उदय से भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय दोनों शरीर हुण्डक संस्थान वाले होते हैं। उनका भवधारणीय शरीर भवस्वभाव से ही ऐसे पक्षी के समान बीभत्स हुण्डक संस्थान वाला होता है जिसके सारे पंख और गर्दन आदि के रोम उखाड़ दिये गये हों। जो उत्तरवैक्रिय होता है वह भी "हम सुन्दर शरीर बनाएंगे" इस इच्छा से शुरू किया होने पर भी अत्यंत अशुभ नाम कर्म के उदय से अशुभ ही होता है अतः वह भी हुण्डक संस्थान वाला ही होता है।

रयणप्पभा पुढवि णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे णं भंते! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! रयणप्पभा पुढवि णेरइयाणं दुविहे सरीरे पण्णत्ते। तंजहा - भवधारणिज्जे य उत्तरवेउव्विए य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से णं हुंडे, जे से उत्तरवेउव्विए से वि हुंडे। एवं जाव अहेसत्तमा पुढवि णेरइय वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर किस संस्थान का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक-पंचेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर दो प्रकार का कहा गया है - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमें से जो भवधारणीय वैक्रिय शरीर है, वह हुंडक संस्थान वाला है और उत्तरवैक्रिय भी हुंडक संस्थान वाला होता है। इसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी से लेकर अधःसप्तम पृथ्वी तक के नैरयिकों के दोनों प्रकार के वैक्रिय शरीर हुंडक संस्थान वाले होते हैं।

तिरिक्खजोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरे णं भंते! किं संठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! णाणा संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर किस संस्थान का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर अनेक संस्थानों वाला कहा गया है।

एवं जाव जलयर थलयर खहयराण वि। थलयराण वि चउप्पय परिसप्पाण वि, परिसप्पाण वि उरपरिसप्प भुयपरिसप्पाण वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - समुच्चय तिर्यंच पंचेन्द्रियों की तरह जलचर, स्थलचर और खेचरों के वैक्रिय शरीरों का संस्थान भी नाना प्रकार का कहा गया है तथा स्थलचरों में चतुष्पद और परिसर्पों का और परिसर्पों में उर:परिसर्प और भुजपरिसर्पों के वैक्रिय शरीर का संस्थान भी नाना प्रकार का समझना चाहिए।

एवं मणुस्स पंचिंदिय वेउव्वियसरीरे वि।

भावार्थ - तिर्यंच पंचेन्द्रियों की तरह मनुष्य पंचेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर भी नाना संस्थानों वाला कहा गया है।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों को जन्म से वैक्रिय शरीर नहीं मिलता किन्तु तपस्या आदि के प्रभाव से जो वैक्रिय शरीर होता है वह नाना संस्थानों वाला होता है।

असुरकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्वियसरीरे णं भंते! किंसंठाणसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! असुरकुमाराणं देवाणं दुविहे सरीरे पण्णत्ते। तंजहा - भवधारणिज्जे य उत्तरवेउव्विए य। तत्थ णं जे से भवधारणिज्जे से णं समचउरंस संठाणसंठिए पण्णत्ते, तत्थ णं जे से उत्तरवेउव्विए से णं णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर किस संस्थान का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार देवों का वैक्रिय शरीर दो प्रकार का कहा गया है - भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय। उनमें से जो भवधारणीय शरीर है, वह समचतुरस्र संस्थान वाला होता है तथा जो उत्तरवैक्रिय शरीर है, वह अनेक प्रकार के संस्थान वाला होता है।

एवं जाव थणियकुमार देव पंचिंदिय वेउव्वियसरीरे।

भावार्थ - इसी प्रकार नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार पर्यन्त के भी वैक्रिय शरीरों का संस्थान समझ लेना चाहिए।

एवं वाणमंतराण वि, णवरं ओहिया वाणमंतरा पुच्छिज्जंति।

भावार्थ - इसी प्रकार वाणव्यन्तर देवों के वैक्रिय शरीर का संस्थान भी असुरकुमारादि की भांति भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय की अपेक्षा से क्रमशः समचतुरस्र तथा नाना संस्थान वाला कहना चाहिए। विशेषता यह है कि यहाँ प्रश्न इनके औधिक (समुच्चय) वाणव्यन्तर देवों के वैक्रिय शरीर के संस्थान के सम्बन्ध में होना चाहिए।

एवं जोइसियाण वि ओहियाणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार औधिक (समुच्चय) ज्योतिषी देवों के वैक्रिय शरीर के संस्थान के सम्बन्ध में समझना चाहिए।

एवं सोहम्मे जाव अच्चुयदेवसरीरे।

भावार्थ - इसी प्रकार सौधर्म से लेकर अच्युत कल्प के कल्पोपपन्न वैमानिकों के भवधारणीय और उत्तर वैक्रिय शरीर के संस्थानों का कथन करना चाहिए।

गेवेज्जग कप्पातीत वेमाणिय देव पंचिंदिय वेउव्वियसरीरे णं भंते! किंसठिए पण्णत्ते?

गोयमा! गेवेज्जगदेवाणं एगे भवधारणिज्जे सरीरे, से णं समचउरंस संठाणसंठिए पण्णत्ते, एवं अणुत्तरोववाइयाण वि॥ ५७३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रियों का वैक्रिय शरीर किस संस्थान का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! ग्रैवेयक देवों के एक मात्र भवधारणीय वैक्रिय शरीर ही होता है और वह समचतुरस्र संस्थान वाला होता है।

इसी प्रकार पांच अनुत्तरौपपातिक वैमानिक देवों के भी भवधारणीय वैक्रिय शरीर ही होता है और वह समचतुरस्र संस्थान वाला होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वैक्रिय शरीरों के संस्थान का निरूपण किया गया है। भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म से अच्युत पर्यन्त बारह प्रकार के कल्पोपपन्न वैमानिक देवों का भवधारणीय शरीर भव स्वभाव से तथाप्रकार के शुभ नाम कर्म के उदय से समचतुरस्र संस्थान वाला होता है और उत्तरवैक्रिय इच्छानुसार होने से नाना संस्थान वाला होता है।

ग्रैवेयक और अनुत्तरौपपातिक देवों को प्रयोजन नहीं होने के कारण उत्तर वैक्रिय शरीर नहीं होता है, क्योंकि उनमें गमनागमन या परिचारणा नहीं होती है। इन कल्पातीत देवों में केवल भवधारणीय शरीर ही होता है जो समचतुरस्र संस्थान वाला होता है।

वेउव्विय सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसयसहस्सं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी है?

उत्तर - हे गौतम! वैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट कुछ अधिक सातिरेक एक लाख योजन की कही गई है। जघन्य से उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी बड़ी होने की संभावना है।

विवेचन - वैक्रिय शरीर के संस्थान का वर्णन करने के बाद सूत्रकार ने प्रस्तुत सूत्र में वैक्रिय शरीर की अवगाहना कही है। वैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग की नैरयिक आदि भवधारणीय अपर्याप्तावस्था में और वायुकाय की पर्याप्तावस्था में होती है। उत्कृष्ट अवगाहना कुछ अधिक एक लाख योजन प्रमाण उत्तर वैक्रिय देवों और मनुष्यों में होती है।

वाउक्काइय एगिंदिय वेउव्विय सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं वि अंगुलस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वायुकायिक एकेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य भी अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग की कही गई है।

विवेचन - एकेन्द्रिय वायुकायिक जीवों के अलावा अन्य जीवों में वैक्रिय लब्धि असंभव है। उनकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की है क्योंकि इतने प्रमाण का वैक्रिय शरीर करने की ही उनकी शक्ति है। जघन्य से उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी बड़ी होने की संभावना है।

णेरइय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं पंचधणुसयाइं। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागं, उक्कोसेणं धणुसहस्सं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना दो प्रकार की कही गई है यथा - भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया। उनमें से जो उनकी भवधारणीया-अवगाहना है, वह जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग की है और उत्कृष्ट पांचसौ धनुष की है तथा उत्तरवैक्रिया-अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट एक हजार धनुष की है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का निरूपण किया गया है। नैरयिकों की भवधारणीय जन्म प्राप्त अवगाहना उत्कृष्ट ५०० धनुष प्रमाण और उत्तरवैक्रिय अवगाहना हजार धनुष प्रमाण सातवीं नरक की अपेक्षा समझनी चाहिए। इसके अलावा इतनी भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय शरीर की अवगाहना असंभव है। अब सूत्रकार प्रत्येक नरक पृथ्वी की अलग अलग अवगाहना का निरूपण करते हैं जो इस प्रकार है -

रयणप्पभा पुढवि णेरइयाणं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त धणूइं तिण्णि रयणीओ छच्च अंगुलाइं। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागं उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्डाइज्जाओ रयणीओ।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की शरीर की अवगाहना दो प्रकार की कही गई है, यथा - भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया। उनमें से भवधारणीया-शरीर की अवगाहना जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग है और उत्कृष्ट से सात धनुष, तीन रत्नि (तीन हाथ) और छह अंगुल की है। उनकी उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष ढाई रत्नि की है।

सक्करप्पभाए पुच्छा?

गोयमा! जाव तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं पण्णरस धणूइं अड्डाइज्जाओ रयणीओ। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागं, उक्कोसेणं एक्कतीसं धणूइं एक्का य रयणी।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! इसी प्रकार की पृच्छा शर्कराप्रभा के नैरयिकों की शरीर की अवगाहना के विषय में करनी चाहिए।

उत्तर - हे गौतम! यावत् दो प्रकार की अवगाहना कही गई है, उनमें से भवधारणीया अवगाहना जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष, ढाई रत्नि की है तथा उत्तरवैक्रिया अवगाहना जघन्य से अंगुल के संख्यातवें भाग है और उत्कृष्ट इकतीस धनुष एक रत्नि की है।

वालुयप्पभाए भवधारणिज्जा एक्कतीसं धणूइं एक्का रयणी, उत्तरवेउव्विया बावट्ठिं धणूइं दो रयणीओ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - बालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की भवधारणीया अवगाहना इकतीस धनुष एक रत्नि की है और उत्तरवैक्रिया अवगाहना बासठ धनुष दो हाथ की है।

पंकप्पभाए भवधारणिज्जा बावट्ठिं धणूइं दो रयणीओ, उत्तरवेउव्विया पणवीसं धणुसयं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की भवधारणीया अवगाहना बासठ धनुष दो हाथ की है और उत्तरवैक्रिया अवगाहना एक सौ पच्चीस धनुष की है।

धूमप्पभाए भवधारणिज्जा पणवीसं धणुसयं, उत्तरवेउव्विया अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं।

भावार्थ - धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की भवधारणीया अवगाहना एक सौ पच्चीस धनुष की है और उत्तरवैक्रिया अवगाहना अढाई सौ धनुष की है।

तमाए भवधारणिज्जा अड्ढाइज्जाइं धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया पंच धणुसयाइं।

भावार्थ - तम:प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की भवधारणीया अवगाहना अढाई सौ धनुष की है और उत्तरवैक्रिया अवगाहना पांच सौ धनुष की है।

अहेसत्तमाए भवधारणिज्जा पंच धणुसयाइं, उत्तरवेउव्विया धणुसहस्सं, एयं उक्कोसेणं।

भावार्थ - अध:सप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की भवधारणीया अवगाहना पांच सौ धनुष की और उत्तरवैक्रिया अवगाहना एक हजार धनुष की है। यह समस्त नरकपृथ्वियों के नैरयिकों के भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना कही गई है।

जहण्णेणं भवधारणिज्जा अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उत्तरवेउव्विया अंगुलस्स संखिज्जइभागं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन सबकी जघन्य भवधारणीया अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग है और उत्तरवैक्रिया अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग है।

विवेचन - पहली नारकी से सातवीं नारकी तक भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट पहली नारकी की ७॥। (पोने आठ) धनुष ६ अंगुल की होती है। दूसरी नारकी की १५॥ धनुष १२ अंगुल, तीसरी नारकी की ३१। धनुष, चौथी नारकी की ६२॥ धनुष, पांचवीं नारकी की १२५ धनुष, छठी नारकी की २५० धनुष और सातवीं नारकी की ५०० धनुष की होती है। उत्तरवैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग उत्कृष्ट अपनी अपनी अवगाहना से दुगुनी। जैसे सातवीं नारकी की भवधारणीय शरीर की अवगाहना ५०० धनुष की और उत्तरवैक्रिय करे तो १००० धनुष की होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्ख जोणिय पंचिंदिय वेउव्विय सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयपुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंचयोनिक-पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य से अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट शतयोजन पृथक्त्व (अनेक सौ योजन) की होती है।

मणुस्स पंचिंदिय वेउव्वियसरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागं, उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसयसहस्सं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! मनुष्य-पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य से अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक लाख योजन की कही गई है।

विवेचन - तिर्यंच पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना शतयोजन पृथक्त्व (बहुलता से दो सो से नौ सौ योजन) होती है क्योंकि इससे अधिक वैक्रिय करने की उनकी शक्ति नहीं होती है। मनुष्यों में कुछ अधिक लाख योजन प्रमाण वैक्रिय शरीर होता है क्योंकि विष्णुकुमार मुनि द्वारा ऐसा वैक्रिय शरीर बनाने का उल्लेख ग्रंथों में मिलता है। तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों की जघन्य शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण (प्रारंभ काल में) होती है किन्तु असंख्यातवें भाग प्रमाण नहीं, क्योंकि वे इस प्रकार का प्रयत्न नहीं कर सकते हैं।

असुरकुमार भवणवासि देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! असुरकुमाराणं देवाणं दुविहा सरीरोगाहणा पण्णत्ता। तंजहा - भवधारणिज्जा य उत्तरवेउव्विया य।

तत्थ णं जा सा भवधारणिज्जा सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं सत्त रयणीओ। तत्थ णं जा सा उत्तरवेउव्विया सा जहण्णेणं अंगुलस्स संखिज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसयसहस्सं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार भवनवासी देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार देवों की दो प्रकार की शरीर की अवगाहना कही गई है, यथा - भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया। उनमें से भवधारणीया शरीर की अवगाहना जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट सात हाथ की है। उनकी उत्तरवैक्रिया अवगाहना जघन्य से अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट एक लाख योजन की है।

एवं जाव थणियकुमाराणं।

भावार्थ - इसी प्रकार नागकुमार देवों से लेकर स्तनितकुमार देवों तक की भवधारणीया और उत्तरवैक्रिया शरीर की अवगाहना जघन्यतः और उत्कृष्टतः समझ लेनी चाहिए।

एवं ओहियाणं वाणमंतराणं।

भावार्थ - इसी प्रकार पूर्ववत् औघिक (समुच्चय) वाणव्यन्तर देवों की दोनों प्रकार की जघन्य, उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

एवं जोइसियाणं वि।

भावार्थ - इसी तरह ज्योतिषी देवों की दोनों प्रकार की जघन्य, उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना भी जान लेनी चाहिए।

सोहम्मी साणग देवाणं एवं चेव, उत्तरवेउव्विया जाव अच्चुओ कप्पो, णवरं सणंकुमारे भवधारणिज्जा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं छ रयणीओ। एवं माहिंदे वि, बंभलोयलंतगेसु पंच रयणीओ, महासुक्कसहस्सारेसु चत्तारि रयणीओ, आणय-पाणय-आरणच्चुएसु तिण्णि रयणीओ।

भावार्थ - सौधर्म और ईशान कल्प के देवों की यावत् अच्युतकल्प के देवों तक की भवधारणीया शरीर की अवगाहना भी इन्हीं के समान समझनी चाहिए, उत्तरवैक्रिया-शरीर की अवगाहना भी पूर्ववत् समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि सनत्कुमारकल्प के देवों की भवधारणीया शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट छह हाथ की है, इतनी ही माहेन्द्रकल्प के देवों की शरीर की अवगाहना होती है। ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प के देवों की शरीर की अवगाहना पांच हाथ तथा महाशुक्र और सहस्रार कल्प के देवों की शरीर की अवगाहना चार हाथ की एवं आनत, प्राणत, आरण और अच्युतकल्प के देवों की शरीर की अवगाहना तीन हाथ की होती है।

गेविज्जग कप्पातीत वेमाणिय देव पंचिंदिय वेउव्विय सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! गेवेज्जग देवाणं एगा भवधारणिज्जा सरीरोगाहणा पण्णत्ता। सा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं दो रयणीओ।

Jain Education International　For Personal & Private Use Only　www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रियों के वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ग्रैवेयक देवों की एक मात्र भवधारणीया शरीर की अवगाहना होती है। वह जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट दो हाथ की है।

एवं अणुत्तरोववाइ य देवाण वि, णवरं एक्का रयणी॥ ५७४॥

भावार्थ -इसी प्रकार अनुत्तरौपपातिक देवों की भी भवधारणीया-शरीर की अवगाहना जघन्य इतनी ही समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि इनकी उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना एक हाथ की होती है।

विवेचन - असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपति वाणव्यंतर, ज्योतिषी तथा सौधर्म एवं ईशान कल्प के देवों की जघन्य भवधारणीय वैक्रिय शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है जो उत्पत्ति के समय समझनी चाहिये तथा उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ की होती है। उत्तरवैक्रिय की जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट लाख योजन की होती है। भवनपति से लेकर अच्युत कल्प तक के देव ही उत्तरवैक्रिय करते हैं इसके ऊपर के देवों में उत्तरवैक्रिय संभव नहीं है। सनत्कुमार देवों के भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट छह हाथ की होती है। माहेन्द्र कल्प के देवों की अवगाहना भी इतनी होती है।

टीका में देवों की स्थिति के अनुसार उत्कृष्ट अवगाहना में क्रमशः हीन अवगाहना होना बताया गया है। किन्तु आगम पाठों को देखते हुए इस प्रकार से अवगाहना में फरक पड़ना उचित नहीं लगता है। आगमकार तो प्रत्येक देवलोक में अपनी अपनी जघन्य से लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक अपने अपने देवलोक प्रायोग्य उत्कृष्ट अवगाहना हो जाना बताते हैं अर्थात् सभी देव अन्तर्मुहूर्त्त में पर्याप्त हो जाते हैं। फिर पर्याप्त होने के अंतर्मुहूर्त्त तक में अपने अपने देवलोक के जितनी उत्कृष्ट अवगाहना बना लेते हैं। अतः टीकाकार के अनुसार स्थिति के पीछे अवगाहना कम होना उचित नहीं लगता है।

आहारग सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! एगागारे पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आहारक शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! वह एक ही प्रकार का कहा गया है।

जइ एगागारे पण्णत्ते किं मणूस आहारग सरीरे, अमणूस आहारग सरीरे?

गोयमा! मणूस आहारग सरीरे, णो अमणूस आहारग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि आहारक शरीर एक ही प्रकार का कहा गया है तो वह आहारक शरीर मनुष्य के होता है अथवा अमनुष्य (मनुष्य के सिवाय) के होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य के आहारक शरीर होता है, किन्तु अमनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है।

जइ मणूस आहारग सरीरे किं सम्मुच्छिम मणूस आहारग सरीरे, गब्भवक्कंतिय मणूस-आहारग सरीरे?

गोयमा! णो सम्मुच्छिम मणूस आहारग सरीरे, गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के होता है, या गर्भज मनुष्य के होता है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम-मनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता, अपितु गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है।

जइ गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे किं कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, अकम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, अंतरदीवग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे?

गोयमा! कम्मभूमग गब्भवक्कंतियमणूस आहारग सरीरे, णो अकम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, णो अंतरदीवग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है तो क्या कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है, अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है अथवा अन्तरद्वीपज मनुष्य के आहारक शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है, किन्तु न तो अकर्म भूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है और न ही अन्तरद्वीपक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है।

जइ कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे किं संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, असंखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे?

गोयमा! संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, णो असंखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है, तो क्या संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के होता है या असंख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के होता है?

उत्तर - हे गौतम! संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर होता है, किन्तु असंख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के आहारक शरीर नहीं होता है।

जइ संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे किं पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, अपज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे?

गोयमा! पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, णो अपज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो क्या पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के होता है अथवा अपर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के होता है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है किन्तु अपर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर नहीं होता है।

जइ पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे किं सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, मिच्छद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, सम्मामिच्छद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे?

गोयमा! सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, णो मिच्छद्दिट्ठी पज्जत्त०, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो क्या सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आहारक शरीर होता है, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात बर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है, अथवा सम्यग् मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्य के होता है?

उत्तर - हे गौतम! सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है किन्तु न तो मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है और न ही सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है।

जइ सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे किं संजय सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, असंजयसम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, संजयासंजय सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे?

गोयमा! संजयसम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारगसरीरे, णो असंजय सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग, गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, णो संजयासंजय सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग आहारग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो क्या संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है, या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है?

उत्तर - हे गौतम! संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है किन्तु न तो असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है और न ही संयतासंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है।

जइ संजय सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे किं पमत्त संजय सम्मद्दिट्ठी० संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, अपमत्त संजय सम्मद्दिट्ठी० संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पमत्त संजय सम्मद्दिट्ठी पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, णो अपमत्त संजय सम्मद्दिट्ठी० कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि संयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो क्या प्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है अथवा अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है?

उत्तर - हे गौतम! प्रमत्त संयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है, अप्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के नहीं होता है।

जइ पमत्त संजय सम्मद्दिट्ठी० संखिज्ज वासाउय कम्मभूमग० मणूस आहारग सरीरे किं इड्डिपत्त पमत्त संजय सम्मद्दिट्ठी० कम्मभूमग संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे, अणिड्डिपत्तपमत्त संजय० कम्मभूमग संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय० आहारग सरीरे?

गोयमा! इड्डिपत्त पमत्त संजयसम्मद्दिट्ठी० संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे णो अणिड्डिपत्त पमत्त संजय सम्मद्दिट्ठी० संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणूस आहारग सरीरे।

कठिन शब्दार्थ - इड्डिपत्त - ऋद्धिप्राप्त-जिन्हें आमर्ष औषधि आदि लब्धियाँ प्राप्त हो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है तो क्या ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है अथवा अनृद्धिप्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क-कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के होता है?

उत्तर - हे गौतम! ऋद्धिप्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यों के आहारक शरीर होता है किन्तु अनृद्धि प्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्षायुष्क गर्भज मनुष्य के नहीं होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आहारक शरीर के स्वामी (अधिकारी) का वर्णन किया गया है। कर्मभूमि के गर्भज सम्यग्-दृष्टि ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत मनुष्य को ही आहारक शरीर होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आहारग सरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! समचउरंस संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आहारक शरीर किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! आहारक शरीर समचतुरस्र संस्थान वाला कहा गया है।

आहारग सरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं देसूणा रयणी, उक्कोसेणं पडिपुण्णा रयणी॥ ५७५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आहारक शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! आहारक शरीर की अवगाहना जघन्य देशोन (कुछ कम) एक हाथ की तथा उत्कृष्ट पूर्ण एक हाथ की होती है।

विवेचन - आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना कुछ कम एक हाथ की होती है क्योंकि सभी चौदह पूर्व धारियों के द्वारा बनाए हुए आहारक शरीर की समान अवगाहना नहीं होती है, छोटी बड़ी होती है। वह छोटा बड़ापन देशोन (मुण्ड) हाथ से एक हाथ तक होता है। इस प्रकार आहारक शरीर बनाने वाले त्रैकालिक सभी जीवों (चौदह पूर्व धारियों) के आहारक शरीर की कुछ हीनाधिकता को बताने की दृष्टि से यहाँ पर आगमकारों ने आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना देशोन हाथ और उत्कृष्ट अवगाहना एक हाथ की बताई है।

तेयग सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - एगिंदिय तेयग सरीरे जाव पंचिंदिय तेयग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तैजस शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! तैजस शरीर पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - एकेन्द्रिय तैजस शरीर यावत् पंचेन्द्रिय तैजस शरीर।

एगिंदिय तेयग सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - पुढविकाइय० जाव वणस्सइकाइय एगिंदिय तेयग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय तैजस शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय तैजस शरीर पांच प्रकार का कहा गया है। यथा - पृथ्वीकायिक तैजस शरीर यावत् वनस्पतिकायिक तैजस शरीर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं जहा ओरालिय सरीरस्स भेदो भणिओ तहा तेयगस्स वि जाव चउरिंदियाणं।

भावार्थ - इसी प्रकार जैसे औदारिक शरीर के भेद कहे हैं, उसी प्रकार तैजस शरीर के भी भेद चतुरिन्द्रिय तक के कहने चाहिए।

पंचिंदिय तेयग सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा - णेरइय-तेयग सरीरे जाव देव तेयग सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तैजस शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तैजस शरीर चार प्रकार का कहा गया है, यथा - नैरयिक तैजस शरीर यावत् देव तैजस शरीर।

णेरइयाणं दुगओ भेदो भाणियव्वो जहा वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - जैसे नैरयिकों के वैक्रिय शरीर के पर्याप्तक और अपर्याप्तक ये दो भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहाँ नैरयिकों के तैजस शरीर के भी भेद कहने चाहिए।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं मणूसाण य जहा ओरालिय सरीरे भेदो भणिओ तहा भाणियव्वो।

भावार्थ - जैसे पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों के औदारिक शरीर के भेदों का कथन किया है, उसी प्रकार यहाँ भी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों के तैजस शरीर के भेदों का कथन करना चाहिए।

देवाणं जहा वेउव्विय सरीर भेदो भणिओ तहा भाणियव्वो जाव सव्वट्ठसिद्ध देवत्ति।

भावार्थ - जैसे चारों प्रकार के देवों के वैक्रिय शरीर के भेद कहे गए हैं, वैसे ही यहाँ भी यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों तक के तैजस शरीर के भेदों का कथन करना चाहिए।

तेयग सरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तैजस शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! तैजस शरीर का संस्थान नाना संस्थान वाला कहा गया है।

एगिंदिय तेयग सरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एकेन्द्रिय तैजस शरीर किस संस्थान वाला होता है?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय तैजस शरीर नाना प्रकार के संस्थान वाला होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुढविकाइय एगिंदिय तेयगसरीरे णं भंते! किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! मसूरचंद संठाणसंठिए पण्णत्ते।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तैजस शरीर किस संस्थान वाला कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय तैजस शरीर मसूरचन्द्र (मसूर की दाल) के आकार का कहा गया है।

एवं ओरालिय संठाणाणुसारेण भाणियव्वं जाव चउरिंदियाण वि।

भावार्थ - इसी प्रकार अन्य एकेन्द्रियों से लेकर यावत् चउरिन्द्रियों के तैजसशरीर संस्थान का कथन इनके औदारिक शरीर संस्थानों के अनुसार करना चाहिए।

णेरइयाणं भंते! तेयग सरीरे किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! जहा वेउव्विय सरीरे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों का तैजस शरीर किस संस्थान का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे वैक्रिय शरीर के संस्थान का कथन किया है उसी प्रकार इनके तैजस शरीर के संस्थान का कथन करना चाहिए।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं मणूसाणं जहा एएसिं चेव ओरालियत्ति।

भावार्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों और मनुष्यों के तैजस शरीर के संस्थान का कथन उसी प्रकार करना चाहिए, जिस प्रकार इनके औदारिक शरीरगत संस्थानों का कथन किया गया है।

देवाणं भंते! तेयग सरीरे किंसंठिए पण्णत्ते?

गोयमा! जहा वेउव्वियस्स जाव अणुत्तरोववाइय त्ति॥ ५७६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देवों के तैजस शरीर का संस्थान किस प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे असुरकुमार से लेकर यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों तक के वैक्रिय शरीर के संस्थान का कथन किया गया है, उसी प्रकार इनके तैजस शरीर के संस्थान का कथन करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के तैजस शरीर का संस्थान कहा गया है। तैजस शरीर जीव के प्रदेशों के अनुसार होता है अतएव जिस भव में जिस जीव के औदारिक या वैक्रिय शरीर के अनुसार आत्म प्रदेशों का जैसा आकार होता है वैसा ही उन जीवों के तैजस शरीर का आकार होता है।

जीवस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं लोगंताओ लोगंते।

कठिन शब्दार्थ - सरीरप्पमाणमेत्ता - शरीर प्रमाण मात्र, **विक्खंभ** - विष्कम्भ-उदर आदि का विस्तार, **बाहल्लेणं** - बाहल्य-छाती और पीठ भाग की मोटाई।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत (समुद्घात किये हुए) जीव के तैजस शरीर की अवगाहना कितनी होती है?

उत्तर - हे गौतम! विष्कम्भ (विस्तार) और बाहल्य (मोटाई) से शरीर प्रमाण मात्र तैजस शरीर की अवगाहना होती है। लम्बाई की अपेक्षा तैजस शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की होती है और उत्कृष्ट अवगाहना सब तरह लोकान्त से लोकान्त तक होती है।

एगिंदियस्स णं भंते! मारणांतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेया सरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! एवं चेव, जाव पुढवि० आउ० तेउ० वाउ० वणस्सइकाइयस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत एकेन्द्रिय के तैजस शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! समुच्चय जीव के समान मारणान्तिक समुद्घात से समवहत एकेन्द्रिय के तैजस शरीर की अवगाहना भी विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण और लम्बाई की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना पृथ्वी, अप्, तेजो, वायु, वनस्पतिकायिक तक पूर्ववत् समझनी चाहिए।

विवेचन - मारणान्तिक समुद्घात को प्राप्त जीव के तैजस शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना लोकान्त से लोकान्त तक की कही गई है। लोकान्त से लोकान्त तक अर्थात् अधोलोक के चरमान्त से ऊर्ध्वलोक के चरमान्त तक, अथवा ऊर्ध्वलोक के चरमान्त से अधोलोक के चरमान्त तक। यह तैजसशरीरीय उत्कृष्ट अवगाहना सूक्ष्म या बादर एकेन्द्रिय के तैजसशरीर की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योंकि सूक्ष्म और बादर एकेन्द्रिय ही यथायोग्य समस्त लोक में रहते हैं। अन्य जीव नहीं। इसलिए एकेन्द्रिय के सिवाय अन्य किसी जीव की इतनी अवगाहना नहीं हो सकती। प्रस्तुत सूत्र में तैजस शरीरीय अवगाहना मृत्यु के समय जीव को मरकर जिस गति या योनि में जाना होता है, वहाँ तक की लक्ष्य में रख कर बताई गई है। अतएव जब कोई एकेन्द्रिय जीव (सूक्ष्म या बादर) मृत्यु के समय अधोलोक के अन्तिम छोर में स्थित हो और ऊर्ध्वलोक के अन्तिम छोर में उत्पन्न होने वाला हो, अथवा वह मरणसमय में ऊर्ध्वलोक के अन्तिम छोर में स्थित हो और अधोलोक के अन्तिम छोर में उत्पन्न होने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला हो और जब वह मारणान्तिक समुद्घात करता है, तब उसकी उत्कृष्ट अवगाह ना लोकान्त से लोकान्त तक होती है।

बेइंदियस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभ-बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं तिरियलोगाओ लोगंते।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत बेइन्द्रिय के तैजस शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मारणांतिक समुद्घात से समवहत बेइन्द्रिय के तैजस शरीर की अवगाहना विष्कम्भ (विस्तार) एवं बाहल्य अर्थात् मोटाई की अपेक्षा से शरीरप्रमाण मात्र होती है। तथा लम्बाई की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट तिर्यक् लोक से ऊर्ध्वलोकान्त या अधोलोकान्त तक अवगाहना समझनी चाहिए।

एवं जाव चउरिंदियस्स।

भावार्थ - इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय तक के जीवों के तैजस शरीर की अवगाहना समझ लेना चाहिए।

विवेचन - मारणान्तिक समुद्घात से समवहत विकलेन्द्रिय जीव की तैजस शरीर की विष्कम्भ बाहल्य की अपेक्षा अवगाहना शरीर प्रमाण और लम्बाई की अपेक्षा जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की उत्कृष्ट तिर्यक् लोक से लोकान्त तक होती है। तिर्यक् लोक से लोकान्त अर्थात् तिर्यंक् लोक से अधोलोकान्त तक अथवा ऊर्ध्वलोकान्त तक। आशय यह है कि जब तिर्यक् लोक में स्थित कोई बेइन्द्रिय आदि जीव ऊर्ध्व लोकान्त या अधोलोकान्त में एकेन्द्रिय के रूप में उत्पन्न होने वाला हो और मारणान्तिक समुद्घात करे उस समय तैजस शरीर की पूर्वोक्तानुसार अवगाहना होती है।

बेइन्द्रिय आदि जीव ऊर्ध्व लोक में मेरु पर्वत आदि की बावडियों में एवं अधोलोक के समुद्र आदि के भाग में तथा महापाताल कलशों के दो तिहाई भाग तक में भी होते हैं। ऊंचे लोक के मेरु पर्वत आदि के कुछ अंश में ही होने से तथा तिरछे लोक के समुद्र के भांग से अधोलोक का समुद्र का भाग एवं पाताल कलशें सम्बन्धित होने से उन सब का तिर्यक् लोक में ही समावेश कर दिया संभव है।

णेरइयस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं साइरेगं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोयणसहस्सं, उक्कोसेणं अहे जाव अहेसत्तमा पुढवी, तिरियं जाव सयंभूरमणे समुद्दे, उड्ढं जाव पंडगवणे पुक्खरिणीओ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत नैरयिक के तैजस शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मारणांतिक समुद्घात से समवहत नैरयिक के तैजस शरीर की अवगाहना विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाणमात्र तथा आयाम (लम्बाई) की अपेक्षा से जघन्य सातिरेक (कुछ अधिक) एक हजार योजन की और उत्कृष्ट नीचे की ओर अधःसप्तमनरकपृथ्वी तक, तिरछी यावत् स्वयम्भूरमण समुद्र तक और ऊपर पण्डक वन में स्थित पुष्करिणी (कमल युक्त बावड़ी) तक की अवगाहना होती है।

विवेचन - मारणांतिक समुद्घात से समवहत नैरयिक के तैजस शरीर की अवगाहना लम्बाई की अपेक्षा कुछ अधिक एक हजार योजन की कही गई है जो इस प्रकार समझनी चाहिये - वलयामुख आदि चार महापाताल कलश एक लाख योजन ऊंडे (गहरे) हैं। उनकी ठीकरी एक हजार योजन मोटी है। उन पाताल कलशों के नीचे का तीसरा भाग वायु से और ऊपर का तीसरा भाग पानी से पूरा भरा हुआ है तथा मध्य का तीसरा भाग कहीं वायु से और कहीं जल से भरा हुआ है। जब कोई सीमन्तक आदि इन्द्रक नरकावासों में विद्यमान पाताल कलश का निकटवर्ती नैरयिक अपनी आयु का क्षय होने से वहाँ से निकल कर पाताल कलश की एक हजार योजन मोटी दीवार का भेदन करके पाताल कलश के दूसरे त्रिभाग में मत्स्य रूप में उत्पन्न होता है तब मारणांतिक समुद्घात करते नैरयिक की कुछ अधिक हजार योजन प्रमाण तैजस शरीर की जघन्य अवगाहना होती है। उत्कृष्ट अवगाहना नीचे सातवीं नरक पृथ्वी तक तथा तिरछी स्वयंभूरमण समुद्र तक तथा ऊँची पंडक वन की पुष्करिणी तक होती है। तात्पर्य यह है कि सातवीं नरक पृथ्वी से लेकर तिरछा स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त और ऊपर पण्डकवन भी पुष्करिणी तक की अवगाहना तभी पाई जाती है जब सातवीं नरक पृथ्वी का नैरयिक स्वयंभूरमण समुद्र के अंत में या पण्डकवन की पुष्करिणी में मत्स्य रूप में उत्पन्न होता है तब यह उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेया सरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! जहा बेइंदिय सरीरस्स।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिकसमुद्घात से समवहत पंचेन्द्रिय तिर्यंच के तैजस शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जैसे बेइन्द्रिय के तैजस शरीर की अवगाहना कही है, उसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक की अवगाहना समझनी चाहिए।

विवेचन - मारणांतिक समुद्घात से समवहत तिर्यंच पंचेन्द्रिय के तैजस शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना तिरछे लोक से लोकान्त तक की होती है। यह बेइन्द्रिय आदि की तरह समझनी चाहिए क्योंकि एकेन्द्रियों में तिर्यंच पंचेन्द्रिय की उत्पत्ति संभव है।

मणुस्सस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! समयखेत्ताओ लोगंतो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत मनुष्य के तैजसशरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य के तैजसशरीर की उत्कृष्ट अवगाहना समय क्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र) से लोकान्त (ऊर्ध्वलोक या अधोलोक के अन्त) तक की होती है।

विवेचन - मनुष्य के तैजस शरीर की अवगाहना समय क्षेत्र से लोकान्त तक की कही गई है। मनुष्य का जन्म या संहरण समय क्षेत्र से अन्यत्र संभव नहीं है अतः इससे अधिक तैजस शरीर की अवगाहना नहीं हो सकती। इसे समय क्षेत्र इसलिए कहते हैं कि ढाई द्वीप प्रमाण क्षेत्र ही ऐसा है जहाँ सूर्य आदि के गमन से समय का व्यवहार होता है। समयक्षेत्र से लेकर ऊर्ध्व और अधोलोकान्त प्रमाण मनुष्य के तैजस शरीर की अवगाहना होती है क्योंकि समय क्षेत्र मनुष्यों के उत्पत्ति का स्वस्थान होने से वहाँ से सभी तरफ लोकान्त तक एकेन्द्रिय आदि में उत्पन्न होते समय इतनी अवगाहना हो सकती है। मनुष्य की भी एकेन्द्रिय आदि में उत्पत्ति संभव है।

असुरकुमारस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेयासरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभ बाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव तच्चाइ पुढवीए हिट्ठिल्ले चरमंते, तिरियं जाव सयंभुरमण समुद्दस्स बाहिरिल्ले वेइयंते, उड्ढं जाव ईसिप्पब्भारा पुढवी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत असुरकुमार के तैजस शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर प्रमाण मात्र शरीर के बराबर तथा आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट नीचे की ओर तीसरी नरक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृथ्वी के अधस्तनचरमान्त तक, तिरछी स्वयम्भूरमण समुद्र की बाहरी वेदिका तक एवं ऊपर ईषत्प्राग्भारपृथ्वी तक असुरकुमार के तैजस शरीर की अवगाहना होती है।

एवं जाव थणियकुमार तेयग सरीरस्स।

भावार्थ - असुरकुमार के तैजस शरीर की अवगाहना के समान नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक की तैजस शरीर की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

वाणमंतर जोइसिय सोहम्मीसाणगा य एवं चेव।

भावार्थ - वाणव्यन्तर, ज्योतिषी एवं सौधर्म ईशान कल्प के देवों की तैजस शरीर की अवगाहना भी इसी प्रकार (असुरकुमार के समान) समझनी चाहिए।

विवेचन - भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक के देवों की लम्बाई की अपेक्षा तैजस शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना नीचे तीसरी नरक पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक, तिरछी स्वयं भूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका के अन्त तक तथा ऊर्ध्वलोक में ईषत्प्राग्भाग पृथ्वी तक होती है। असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपति वाणव्यंतर, ज्योतिषी, सौधर्म और ईशान देवलोक के देव एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं। जब वे अपने आभरण रूप अंगद-बाजुबन्ध आदि में या कुंडल आदि में या पद्म राग आदि मणियों में मूर्च्छित होकर उसी के अध्यवसाय-परिणाम वाले होकर वे उन आभूषणों में पृथ्वीकायिक के रूप में उत्पन्न होते हैं तब जघन्य से अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण तैजस शरीर की अवगाहना होती है।

जब भवनपति आदि देव तीसरी नरक पृथ्वी के नीचे के चरमान्त तक किसी प्रयोजन से जाते हैं और किसी कारण से आयुष्य का क्षय हो जाने से मर कर तिरछे स्वयंभूरमण समुद्र की बाह्यवेदिका के अंत में अथवा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अन्तभाग में पृथ्वीकायिक के रूप में उत्पन्न होते हैं उस समय उनके तैजस शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

सणंकुमार देवस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेया सरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा० ?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं अहे जाव महापायालाणं दोच्चे तिभागे, तिरियं जाव सयंभुरमणे समुद्दे, उड्ढं जाव अच्चुओ कप्पो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत सनत्कुमार देव तैजस शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! विष्कम्भ एवं बाहल्य की अपेक्षा से शरीर-प्रमाण मात्र होती है और आयाम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की तथा उत्कृष्ट नीचे महापाताल कलश के द्वितीय त्रिभाग तक की, तिरछी स्वयम्भूरणसमुद्र तक की और ऊपर अच्युतकल्प तक की इसकी तैजस शरीर की अवगाहना होती है।

एवं जाव सहस्सारदेवस्स।

भावार्थ - सनत्कुमारदेव की तैजस शरीर की अवगाहना के समान माहेन्द्रकल्प से लेकर सहस्रारकल्प के देवों तक की तैजस शरीर की आवगाहना समझ लेनी चाहिए।

विवेचन - सनत्कुमार से लेकर सहस्रार कल्प तक के देवों की लम्बाई की अपेक्षा तैजस शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की उत्कृष्ट नीचे महापाताल कलश के दूसरे त्रिभाग तक की, तिरछी स्वयंभूरमण समुद्र तक की और ऊपर अच्युत कल्प तक की कही गयी है। इनकी जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना इस प्रकार समझनी चाहिये-सनत्कुमार आदि ये देव अपने भव स्वभाव से एकेन्द्रियों में या विकलेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं अतः मेरु पर्वत की पुष्करिणी आदि में स्नान करते समय अपने भवायुष्य का क्षय होने पर वहीं अपने निकटवर्ती प्रदेश में मत्स्य रूप में उत्पन्न होते हैं वहाँ अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण तैजस शरीर की अवगाहना होती है।

यदि कोई सनत्कुमार आदि देव दूसरे देव के नेश्राय से अच्युत देवलोक में चला जाए और वहीं उसका आयुष्य क्षय हो जाय तो वह काल करके तिरछे स्वयंभूरमण समुद्र के अंत में अथवा नीचे पाताल कलशों के दूसरे त्रिभाग में मत्स्य आदि के रूप में उत्पन्न होता है तब तैजस शरीर की उत्कृष्ट शरीर की अवगाहना होती है।

आणयदेवस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेया सरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेणं जाव अहोलोइयगामा, तिरियं जाव मणूसखेत्तं, उड्ढं जाव अच्चुओ कप्पो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत आनत कल्प के देव के तैजस शरीर की अवगाहना कितनी बड़ी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! इसकी तैजस शरीर की अवगाहना विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीर के प्रमाण के बराबर होती है और आयाम की अपेक्षा से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट नीचे की ओर अधोलौकिक ग्राम तक की, तिरछी मनुष्यक्षेत्र तक की और ऊपर अच्युतकल्प तक की होती है।

एवं जाव आरणदेवस्स।

भावार्थ - इसी प्रकार प्राणत और आरण तक की तैजस शरीर की अवगाहना समझ लेनी चाहिए।

विवेचन - मारणांतिक समुद्घात से समवहत आनत-प्राणत और आरण कल्प के देवों की लम्बाई की अपेक्षा तैजस शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की उत्कृष्ट नीचे अधोलौकिक ग्राम तक तिरछी मनुष्य क्षेत्र तक और अच्युत देवलोक तक होती है जो इस प्रकार समझनी चाहिये-यदि कोई आनत आदि देव पूर्वभव संबंधी मनुष्य स्त्री को अन्य मनुष्य द्वारा भोगी हुई अवधिज्ञान से जान कर प्राणियों के विचित्र चरित्र, कर्म की विचित्र गति और कामवृत्ति से मलिन होकर उससे आलिंगन करता है और अत्यंत मूर्च्छित होकर अपने भवायुष्य के क्षय से काल करके उस स्त्री के ही गर्भ में मनुष्य के बीज रूप में उत्पन्न होता है। मनुष्य बीज जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक रहता है अतः बारह मुहूर्त्त के अंदर भोगी हुई स्त्री से आलिंगन करके मृत्यु प्राप्त कर वही मनुष्य रूप में उत्पन्न होता है तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना होती है।

जब कोई आनत आदि देव किसी अन्य देव की निश्रा-अवलंबन से अच्युत देवलोक में जाता है और वहां काल करके अधोलौकिक ग्राम या मनुष्य क्षेत्र के पर्यन्त भाग में मनुष्य रूप से उत्पन्न होता है तब उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

अच्चुयदेवस्स एवं चेव, णवरं उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं।

भावार्थ - अच्युतदेव की तैजस शरीर की अवगाहना भी इन्हीं के समान होती है। विशेष इतना ही है कि ऊपर उत्कृष्ट तैजस शरीर की अवगाहना अपने-अपने विमानों तक की होती है।

विवेचन - अच्युत देव की भी जघन्य और उत्कृष्ट से तैजस शरीर की अवगाहना इसी प्रकार की होती है किन्तु सूत्र पाठ में '**उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं**' कहा है क्योंकि अच्युत देव भी कदाचित् ऊपर अपने विमान पर्यंत तक जाता है और वहाँ जाकर काल भी कर देता है अतः कहा है कि ऊर्ध्व-ऊपर अपने विमान तक उत्कृष्ट अवगाहना होती है।

गेविज्जगदेवस्स णं भंते! मारणंतिय समुग्घाएणं समोहयस्स तेया सरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता?

गोयमा! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं, आयामेणं जहण्णेणं विज्जाहरसेढीओ, उक्कोसेणं जाव अहोलोइयगामा, तिरियं जाव मणूसखेत्ते, उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - विजाहर सेढीओ - विद्याधर की श्रेणियों की, **अहोलोइयगामा** - अधोलौकिकग्राम।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत ग्रैवेयकदेव के तैजस शरीर की अवगाहना कितनी कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मारणान्तिक समुद्घात से समवहत ग्रैवेयक देव के तैजस शरीर की अवगाहना विष्कम्भ और बाहल्य की अपेक्षा से शरीरप्रमाणमात्र होती है तथा आयाम की अपेक्षा से जघन्य विद्याधर श्रेणियों तक की और उत्कृष्ट नीचे की ओर अधोलौकिक ग्राम तक की, तिरछी मनुष्य क्षेत्र तक की और ऊपर अपने विमानों तक की होती है।

अणुत्तरोववाइयस्स वि एवं चेव।

भावार्थ - अनुत्तरौपपातिक देव की तैजस शरीर की अवगाहना भी ग्रैवेयक देव की तैजस शरीर की अवगाहना के समान समझनी चाहिए।

विवेचन - ग्रैवेयक और अनुत्तर देव तीर्थंकरों को वंदना आदि भी वहीं रह कर करते हैं अतः उनके आगमन का यहाँ असंभव होने से अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना घटित नहीं होती है परन्तु जब वैताढ्य पर्वत से रही हुई विद्याधरों की श्रेणियों में उत्पन्न होते हैं तब अपने स्थान से लेकर नीचे विद्याधर की श्रेणी तक जघन्य तैजस शरीर की अवगाहना होती है। इससे अधिक जघन्य अवगाहना संभव नहीं है। उत्कृष्ट अधोलौकिक ग्राम तक होती है क्योंकि इससे नीचे उत्पत्ति संभव नहीं है। तिरछी मनुष्य क्षेत्र तक कहा है इससे आगे तिरछा उत्पन्न होना संभव नहीं है क्योंकि विद्याधर और विद्याधर स्त्रियाँ नन्दीश्वर द्वीप तक जाती है, संभोग भी करती है फिर भी मनुष्य क्षेत्र के बाहर मनुष्यों में गर्भ रूप से उत्पन्न नहीं होती है अतः तिरछी मनुष्य क्षेत्र तक की ही कही है।

कम्मग सरीरे णं भंते! कइविहे पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे पण्णत्ते। तंजहा - एगिंदिय कम्मग सरीरे जाव पंचिंदिय कम्मग सरीरे य। एवं जहेव तेयगसरीरस्स भेओ संठाणं ओगाहणा य भणिया तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं जाव अणुत्तरोववाइय त्ति॥ ५७७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कार्मण शरीर कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! कार्मण शरीर पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार है - एकेन्द्रिय कार्मण शरीर यावत् पंचेन्द्रिय कार्मण शरीर। इस प्रकार जैसे तैजस शरीर के भेद, संस्थान और अवगाहना का निरूपण किया गया है, उसी प्रकार से सम्पूर्ण कथन एकेन्द्रिय कार्मण शरीर से लेकर अनुत्तरौपपातिक देव पंचेन्द्रिय कार्मण शरीर तक करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - कार्मण शरीर तैजस शरीर के साथ नियत सहचारी है। दोनों का अविनाभावी संबंध है। कार्मण शरीर भी तैजस शरीर की तरह जीव प्रदेशों के अनुसार संस्थान वाला है इसलिए जैसे तैजस शरीर के भेद, संस्थान और अवगाहना के विषय में कहा गया है वैसे ही कार्मण शरीर के भेद, संस्थान और अवगाहना के विषय में समझ लेना चाहिए।

४. पुद्गल-चय द्वार

ओरालियसरीरस्स णं भंते! कइदिसिं पोग्गला चिज्जंति?

गोयमा! णिव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउद्दिसिं, सिय पंचदिसिं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! औदारिक शरीर के लिए कितनी दिशाओं से आकर पुद्गलों का चय होता है?

उत्तर - हे गौतम! निर्व्याघात की अपेक्षा से छह दिशाओं से, व्याघात की अपेक्षा से कदाचित् तीन दिशाओं से, कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से औदारिक शरीर के पुद्गलों का चय होता है।

विवेचन - पुद्गलों के एकत्रित होने को चय कहते हैं। निर्व्याघात-व्याघात के अभाव में छह दिशाओं से आये पुद्गलों का चय होता है। तात्पर्य यह है कि त्रस नाड़ी के मध्य भाग में या बाहरी भाग में रहे हुए औदारिक शरीर वाले की एक भी दिशा अलोक से प्रतिबंध वाली नहीं ऐसे निर्व्याघात स्थल में रहे हुए औदारिक शरीर वाले के छह दिशाओं से, पुद्गलों का आगमन होता है। व्याघात-अलोक से प्रतिबंध होने पर कदाचित् तीन दिशाओं से कदाचित् चार दिशाओं से और कदाचित् पांच दिशाओं से आये हुए पुद्गलों का चय होता है, जो इस प्रकार समझना चाहिये - कोई औदारिक शरीर वाला सूक्ष्म जीव जो लोक के सबसे ऊपर के प्रतर में आग्नेय कोण रूप लोकान्त में स्थित हो, जिसके ऊपर लोकाकाश न हो, पूर्व तथा दक्षिण दिशा में भी लोक न हो वह जीव अधोदिशा, पश्चिम दिशा और उत्तरदिशा, इन तीन दिशाओं से पुद्गलों का चय करेगा, क्योंकि शेष तीन दिशाएं अलोक से व्याप्त होती है। जब वही जीव पश्चिम दिशा में रहा हुआ हो तब उसके लिए पूर्व दिशा अधिक हो जाती है इस कारण चार दिशाओं से पुद्गलों का आगमन होगा। जब वह जीव अधोदिशा में द्वितीय आदि किसी प्रतर में पश्चिम दिशा का आश्रय लेकर रहा हुआ हो तब ऊर्ध्वदिशा भी अधिक होती है, केवल दक्षिण दिशा ही अलोक से प्रतिबंध वाली होती है अतः पांच दिशाओं से पुद्गलों का चय-आगमन होता है।

वेउव्विय सरीरस्स णं भंते! कइदिसिं पोग्गला चिज्जंति?

गोयमा! णियमा छद्दिसिं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! वैक्रिय शरीर के लिए कितनी दिशाओं से पुद्गलों का चय होता है?

उत्तर - हे गौतम! वैक्रिय शरीर के लिए नियम से छह दिशाओं से पुद्गलों का चय होता है।

एवं आहारग सरीरस्स वि।

भावार्थ - इसी प्रकार वैक्रिय शरीर के समान आहारक शरीर के पुद्गलों का चय भी नियम से छह दिशाओं से होता है।

विवेचन - वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर त्रस नाड़ी के मध्य में ही संभव है अन्यत्र नहीं अतः दोनों शरीरों के पुद्गलों का चय छहों दिशाओं से होता है।

तेयाकम्मगाणं जहा ओरालिय सरीरस्स।

भावार्थ - तैजस और कार्मण शरीर के पुद्गलों का चय औदारिक शरीर के पुद्गलों के चय के समान समझना चाहिए।

विवेचन - तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं इसलिए जिस प्रकार औदारिक शरीर के विषय में व्याघात के सिवाय छह दिशाओं से और व्याघात की अपेक्षा तीन, चार और पांच दिशाओं से पुद्गलों का चय होता है, उसी प्रकार तैजस और कार्मण शरीर के विषय में भी समझना चाहिये।

ओरालिय सरीरस्स णं भंते! कइदिसिं पोग्गला उवचिज्जंति?

गोयमा! एवं चेव, जाव कम्मग सरीरस्स।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! औदारिक शरीर के पुद्गलों का उपचय कितनी दिशाओं से होता है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे चय के विषय में कहा है, इसी प्रकार उपचय के विषय में भी औदारिक शरीर से लेकर कार्मण शरीर तक कहना चाहिए।

एवं उवचिज्जंति, अवचिज्जंति॥ ५७८॥

भावार्थ - औदारिक आदि पांचों शरीरों के पुद्गलों का जिस प्रकार उपचय होता है, उसी प्रकार उनका अपचय भी होता है।

विवेचन - बहुत अधिक चय होना उपचय एवं पुद्गलों का ह्रास होना अपचय कहलाता है। जैसा चय के विषय में कहा है वैसा ही उपचय और अपचय के विषय में भी समझना चाहिये।

५. शरीर संयोग द्वार

जस्स णं भंते! ओरालिय सरीरं तस्स वेउव्विय सरीरं, जस्स वेउव्विय सरीरं तस्स ओरालिय सरीरं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जस्स ओरालिय सरीरं तस्स वेउव्विय सरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि, जस्स वेउव्विय सरीरं तस्स ओरालिय सरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिस जीव के औदारिक शरीर होता है क्या उसके वैक्रिय शरीर भी होता है? और जिसके वैक्रिय शरीर होता है, क्या उसके औदारिक शरीर भी होता है?

उत्तर - हे गौतम! जिसके औदारिक शरीर होता है, उसके वैक्रिय शरीर कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं होता है और जिसके वैक्रिय शरीर होता है, उसके औदारिक शरीर कदाचित् होता है तथा कदाचित् नहीं होता है।

विवेचन - जिसके औदारिक शरीर होता है उसके वैक्रिय शरीर विकल्प (भजना) से होता है क्योंकि वैक्रिय लब्धि सम्पन्न कोई औदारिक शरीरी जीव यदि वैक्रिय शरीर बनाता है तो उसके वैक्रिय शरीर होता है। जो जीव वैक्रिय लब्धि संपन्न नहीं है अथवा वैक्रिय लब्धि युक्त होकर भी वैक्रिय शरीर नहीं बनाता, उसके वैक्रिय शरीर नहीं होता। देव और नैरयिक वैक्रिय शरीरधारी होते हैं उनके औदारिक शरीर नहीं होता किन्तु जो तिर्यंच या मनुष्य वैक्रिय शरीर वाले होते हैं उनके औदारिक शरीर होता है।

जस्स णं भंते! ओरालिय सरीरं तस्स आहारग सरीरं, जस्स आहारगसरीरं तस्स ओरालिय सरीरं?

गोयमा! जस्स ओरालिय सरीरं तस्स आहारग सरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि, जस्स पुण आहारग सरीरं तस्स ओरालिय सरीरं णियमा अत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिसके औदारिक शरीर होता है, क्या उसके आहारक शरीर होता है? तथा जिसके आहारक शरीर होता है उसके क्या औदारिक शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! जिसके औदारिक शरीर होता है, उसके आहारक शरीर कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है। किन्तु जिस जीव के आहारक शरीर होता है, उसके नियम से औदारिक शरीर होता है।

विवेचन - जिसके औदारिक शरीर होता है उसके आहारक शरीर होता भी है, नहीं भी होता। जो चौदह पूर्वधारी आहारक लब्धि संपन्न मुनि हैं उनके आहारक शरीर होता है, अन्य के नहीं। जिसके आहारक शरीर होता है उसके औदारिक शरीर अवश्य होता है क्योंकि औदारिक शरीर के बिना आहारक लब्धि नहीं होती है।

जस्स णं भंते! ओरालिय सरीरं तस्स तेयग सरीरं, जस्स तेयग सरीरं तस्स ओरालिय सरीरं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जस्स ओरालिय सरीरं तस्स तेयग सरीरं णियमा अत्थि, जस्स पुण तेयग सरीरं तस्स ओरालिय सरीरं सिय अत्थि सिय णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिसके औदारिक शरीर होता है, क्या उसके तैजस शरीर होता है? तथा जिसके तैजस शरीर होता है, क्या उसके औदारिक शरीर होता है?

उत्तर - हे गौतम! जिसके औदारिक शरीर होता है, उसके नियम से तैजस शरीर होता है, और जिसके तैजस शरीर होता है, उसके औदारिक शरीर कदाचित् होता है, कदाचित् नहीं भी होता है।

एवं कम्मग सरीरं पि।

भावार्थ - औदारिक शरीर के साथ तैजस शरीर के संयोग के समान, औदारिक शरीर के साथ कार्मण शरीर का संयोग भी समझ लेना चाहिए।

विवेचन - जिसके औदारिक शरीर होता है उसके तैजस और कार्मण शरीर अवश्य होता है किन्तु जिस जीव के तैजस और कार्मण शरीर होते हैं उनके औदारिक शरीर होता भी है और नहीं भी होता है क्योंकि देवों और नैरयिकों के तैजस और कार्मण शरीर तो होते हैं किन्तु उनके औदारिक शरीर नहीं होता है। जबकि तिर्यंचों और मनुष्यों के औदारिक शरीर होता है।

जस्स णं भंते! वेउव्वियसरीरं तस्स आहारगसरीरं जस्स आहारगसरीरं तस्स वेउव्वियसरीरं?

गोयमा! जस्स वेउव्वियसरीरं तस्स आहारगसरीरं णत्थि, जस्स वि आहारगसरीरं तस्स वि वेउव्वियसरीरं णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिसके वैक्रिय शरीर होता है, क्या उसके आहारक शरीर होता है? तथा जिसके आहारक शरीर होता है, उसके क्या वैक्रिय शरीर भी होता है?

उत्तर - हे गौतम! जिस जीव के वैक्रिय शरीर होता है, उसके आहारक शरीर नहीं होता तथा जिसके आहारक शरीर होता है, उसके वैक्रिय शरीर नहीं होता है।

विवेचन - जिसके वैक्रिय शरीर होता है उसके आहारक शरीर नहीं होता और जिसके आहारक शरीर होता है उसके वैक्रिय शरीर नहीं होता, क्योंकि एक समय में दोनों शरीर असंभव है।

यहाँ पर आहारक शरीर के साथ वैक्रिय शरीर एवं वैक्रिय शरीर के साथ आहारक शरीर नहीं होना बताया है। वह वैक्रिय एवं आहारक शरीर बनाने की अपेक्षा समझना चाहिए। भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ६-७ में आहारक शरीर वालों के नियमा पांच शरीर होना बताया है। वहाँ पर वैक्रिय लब्धि की अपेक्षा से समझना चाहिए अर्थात् सभी आहारक शरीर वालों के नियम से वैक्रिय लब्धि होती ही है। दोनों स्थानों के आगम पाठों की अलग-अलग अपेक्षा होने से परस्पर विरोध नहीं समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेयाकम्माइं जहा ओरालिए समं तहेव आहारगसरीरेण वि समं तेयाकम्मगाइं चारेयव्वाणि।

भावार्थ - जैसे औदारिक शरीर के साथ तैजस एवं कार्मण शरीर के संयोग का कथन किया है, उसी प्रकार आहारक शरीर के साथ भी तैजस कार्मण शरीर के संयोग का कथन करना चाहिए।

जस्स णं भंते! तेयगसरीरं तस्स कम्मगसरीरं, जस्स कम्मगसरीरं तस्स तेयगसरीरं?

गोयमा! जस्स तेयगसरीरं तस्स कम्मगसरीरं णियमा अत्थि, जस्स वि कम्मगसरीरं तस्स वि तेयगसरीरं णियमा अत्थि॥ ५७९ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिसके तैजस शरीर होता है, क्या उसके कार्मण शरीर होता है? तथा जिसके कार्मण शरीर होता है, क्या उसके तैजस शरीर भी होता है?

उत्तर - हे गौतम! जिसके तैजस शरीर होता है, उसके कार्मण शरीर अवश्य ही नियम से होता है और जिसके कार्मण शरीर होता है, उसके तैजस शरीर अवश्य होता है।

विवेचन - तैजस और कार्मण शरीर परस्पर नियत सहचारी होने से जिसके तैजस शरीर होता है उसके कार्मण शरीर अवश्य होता है और जिसके कार्मण शरीर होता है उसके तैजस शरीर अवश्य होता है।

६. द्रव्य प्रदेश अल्पबहुत्व द्वार

एएसि णं भंते! ओरालिय वेउव्विय आहारग तेयग कम्मग सरीराणं दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा आहारगसरीरा दव्वट्ठयाए, वेउव्वियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखिज्जगुणा, ओरालियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखिज्जगुणा, तेयाकम्मगसरीरा दोवि तुल्ला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा।

पएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा आहारगसरीरा पएसट्ठयाए, वेउव्वियसरीरा पएसट्ठयाए असंखिज्जगुणा, ओरालियसरीरा पएसट्ठयाए असंखिज्जगुणा, तेयगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा, कम्मगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दव्वट्ठपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवा आहारगसरीरा दव्वट्ठयाए, वेउव्वियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखिज्जगुणा, ओरालियसरीरा दव्वट्ठयाए असंखिज्जगुणा ओरालियसरीरेहिंतो दव्वट्ठयाएहिंतो आहारगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा, वेउव्वियसरीरा पएसट्ठयाए असंखिज्जगुणा, ओरालियसरीरा पएसट्ठयाए असंखिज्जगुणा, तेयाकम्मा दोवि तुल्ला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, तेयगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा, कम्मगसरीरा पएसट्ठयाए अणंतगुणा॥ ५८०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण इन पांच शरीरों में से, द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से, कौन, किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! **द्रव्य की अपेक्षा से** - सबसे अल्प आहारक शरीर हैं। उनसे वैक्रिय शरीर, द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं। उनसे औदारिक शरीर द्रव्य की अपेक्षा से, असंख्यात गुणा हैं। तैजस और कार्मण शरीर दोनों तुल्य-बराबर हैं, किन्तु औदारिक शरीर से द्रव्य की अपेक्षा से अनन्त गुणा है।

प्रदेशों की अपेक्षा से - सबसे कम प्रदेशों की अपेक्षा से आहारक शरीर हैं। उनसे प्रदेशों की अपेक्षा से वैक्रिय शरीर असंख्यात गुणा हैं। उनसे प्रदेशों की अपेक्षा से औदारिक शरीर असंख्यात गुणा हैं। उनसे तैजस शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्त गुणा हैं। उनसे कार्मण शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्त गुणा हैं।

द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से - द्रव्य की अपेक्षा से, आहारक शरीर सबसे अल्प हैं - उनसे वैक्रिय शरीर द्रव्यों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं। उनसे औदारिक शरीर द्रव्य की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं। औदारिक शरीरों से द्रव्य की अपेक्षा से आहारक शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्त गुणा हैं। उनसे वैक्रिय शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं उनसे औदारिक शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यात गुणा हैं। तैजस और कार्मण, दोनों शरीर द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य बराबर-बराबर हैं तथा पूर्वोक्त बोल से द्रव्य की अपेक्षा से अनन्त गुणा हैं। उनसे तैजस शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्त गुणा हैं। उनसे कार्मण शरीर प्रदेशों की अपेक्षा से अनन्त गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य प्रदेश शामिल की अपेक्षा पांचों शरीरों के अल्पबहुत्व का कथन किया गया है, जो इस प्रकार है -

१. द्रव्य की अपेक्षा - सबसे थोड़े आहारक शरीर द्रव्यार्थ रूप है यानी आहारक शरीर-शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मात्र द्रव्य की संख्या से थोड़े हैं क्योंकि वे उत्कृष्ट भी सहस्र पृथक्त्व (दो हजार से नौ हजार तक) ही होते हैं। **'उक्कोसेणं उ जुगवं पुहुत्तमेत्तं सहस्साणं'** - एक समय में उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते हैं ऐसा शास्त्र वचन भी है। उनसे द्रव्य की अपेक्षा वैक्रिय शरीर असंख्यात गुणा हैं क्योंकि सभी नैरयिकों, सभी देवों, कितनेक तिर्यंच पंचेन्द्रियों, मनुष्यों और बादर वायुकायिकों के भी वैक्रिय शरीर होते हैं। वैक्रिय शरीर की अपेक्षा औदारिक शरीर द्रव्यार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं। क्योंकि पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों को औदारिक शरीर होता है। उनसे भी तैजस और कार्मण शरीर द्रव्य की अपेक्षा अनन्त गुणा हैं क्योंकि अनन्तानन्त सूक्ष्म और बादर जीवों के ये दोनों शरीर होते हैं। स्वस्थान की अपेक्षा तैजस और कार्मण शरीर परस्पर तुल्य है क्योंकि दोनों सहचारी हैं एक के अभाव में दूसरे का भी अभाव होता है। आहारक शरीर वाले उत्कृष्ट संख्याता (सहस्र पृथक्त्व) जितने ही होते हैं। वैक्रिय शरीर वाले असंख्याता श्रेणियों जितने होते हैं। औदारिक शरीर वाले असंख्यात लोक के आकाश प्रदेश प्रमाण होते हैं। तैजस कार्मण शरीर वाले अनन्त लोक के आकाश प्रदेश प्रमाण होते हैं।

२. प्रदेश की अपेक्षा - सबसे थोड़े आहारक शरीर के प्रदेश होते हैं यद्यपि वैक्रिय शरीर योग्य वर्गणाओं से आहारक शरीर वर्गणा परमाणुओं की अपेक्षा अनंतगुणी है तथापि थोड़ी वर्गणा से ही आहारक शरीर होता है क्योंकि वह हस्त प्रमाण है जबकि बहुत वैक्रिय शरीर वर्गणाओं से वैक्रिय शरीर होता है क्योंकि वह उत्कृष्ट लाख योजन प्रमाण है। संख्या से भी आहारक शरीर सबसे थोड़े हैं क्योंकि वे सहस्र पृथक्त्व प्रमाण ही होते हैं जबकि वैक्रिय शरीर असंख्यात श्रेणि गत आकाश प्रदेशों के बराबर होते हैं। इसलिए आहारक शरीरों से प्रदेश की अपेक्षा वैक्रिय शरीर असंख्यात गुणा होते हैं। उनसे भी औदारिक शरीर प्रदेश की अपेक्षा असंख्यात गुणा हैं क्योंकि वे असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण होने से उनके प्रदेश बहुत होते हैं। उनसे भी तैजस शरीर के प्रदेश अनन्त गुणा हैं क्योंकि द्रव्यार्थ रूप से औदारिक शरीरों से वे अनन्त गुणा हैं। उनसे भी कार्मण शरीर प्रदेश की अपेक्षा अनन्त गुणा हैं क्योंकि तैजस वर्गणाओं से कार्मणवर्गणाएँ परमाणुओं की अपेक्षा अनन्तगुणी हैं।

यद्यपि आहारक शरीर के प्रदेश सूक्ष्म व बहुत परमाणुओं से निष्पन्न होने के कारण एक जीव के औदारिक शरीर के प्रदेशों की अपेक्षा तो अधिक होते हैं, परन्तु यहाँ पूरे लोक के औदारिक शरीरों के प्रदेशों का कथन होने से आहारक शरीर के प्रदेश सबसे कम बताये हैं। आहारक शरीर की अपेक्षा वैक्रिय शरीर के द्रव्य अधिक होते हैं तथा उससे भी औदारिक शरीर के द्रव्य अधिक होते हैं। अतः इनके प्रदेश भी अधिक होते हैं तथा अवगाहना आगे-आगे बड़ी होने से ज्यादा वर्गणाएं ग्रहण होने से प्रदेश भी असंख्यातगुणा ज्यादा हो जाते हैं। तैजस शरीर तक के तो अट्ठस्पर्शी-अनन्त प्रदेशी स्कन्ध होने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से वे बहुत अधिक होने से तथा अत्यधिक सूक्ष्म होने से उनके प्रदेश अनन्त गुणा अधिक हो जाते हैं। कार्मण वर्गणाएं तैजस वर्गणाओं की अपेक्षा परमाणुओं की दृष्टि से अनन्त गुणी होती है।

३. द्रव्य और प्रदेश शामिल की अपेक्षा - सबसे थोड़े द्रव्य की अपेक्षा आहारक शरीर है, उनसे वैक्रिय शरीर द्रव्यार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं, उनसे भी औदारिक शरीर द्रव्यार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं। यहाँ भी पूर्वोक्त युक्ति से समझना चाहिये। द्रव्यार्थ रूप से औदारिक शरीर की अपेक्षा आहारक शरीर प्रदेशार्थ से अनन्त गुणा हैं क्योंकि औदारिक शरीर सब मिल कर भी असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण है और आहारक शरीर योग्य एक-एक वर्गणा में अभव्यों से अनंत गुणा परमाणु होते हैं। उनसे वैक्रिय शरीर प्रदेशार्थ रूप से असंख्यात गुणा हैं। उनसे औदारिक शरीर प्रदेश की अपेक्षा असंख्यात गुणा हैं। इस विषय में युक्ति पूर्ववत् है। उनसे भी तैजस कार्मण शरीर द्रव्य की अपेक्षा अनन्त गुणा हैं क्योंकि वे बहुत बड़ी अनन्त संख्या से युक्त हैं। उनसे भी तैजस शरीर प्रदेशार्थ रूप से अनन्त गुणा हैं क्योंकि अनन्त परमाणु रूप ऐसी अनन्त वर्गणाओं से एक-एक तैजस शरीर बनने योग्य है। उनसे भी कार्मण शरीर प्रदेश की अपेक्षा अनन्त गुणा हैं। इसका कारण पूर्वानुसार समझ लेना चाहिये। इस प्रकार पांच शरीरों की द्रव्य, प्रदेश और उभय की अपेक्षा अल्पबहुत्व का कथन किया गया है।

औदारिक शरीर के द्रव्यार्थ से आहारक शरीर प्रदेशार्थ से अनन्तगुणा बताये गये हैं। क्योंकि औदारिक शरीर सब मिलकर भी असंख्यात लोकाकाश प्रदेशों के बराबर हैं जब कि प्रत्येक आहारक शरीर योग्य वर्गणा में अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भाग जितने प्रदेश होते हैं। अतः अनन्तगुणा हो जाते हैं। तैजस कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के होने से द्रव्यार्थ से ये दोनों शरीर परस्पर तुल्य हैं। परन्तु प्रदेश तो कार्मण शरीर के अनन्त गुणे अधिक हैं। क्योंकि यह सूक्ष्म शरीर होने से तथा इसके पुद्गल चतुःस्पर्शी होने से पुद्गल भी अधिक ग्रहण करते हैं। अतः प्रदेश अनन्त गुणा हो जाते हैं।

७. शरीर की अवगाहना का अल्पबहुत्व द्वार

एएसि णं भंते! ओरालिय वेउव्विय आहारग तेयग कम्मग सरीराणं जहण्णियाए ओगाहणाए उक्कोसियाए ओगाहणाए जहण्णुक्कोसियाए ओगाहणाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा, तेयाकम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला जहण्णिया ओगाहणा विसेसाहिया, वेउव्वियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखिज्जगुणा, आहारगसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखिज्जगुणा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसियाए ओगाहणाए-सव्वत्थोवा आहारगसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा, ओरालियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा संखिज्जगुणा, वेउव्वियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा संखिज्जगुणा तेयाकम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला उक्कोसिया ओगाहणा असंखिज्जगुणा। जहण्णुक्कोसियाए ओगाहणाए-सव्वत्थोवा ओरालियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा, तेयाकम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला। जहण्णिया ओगाहणा विसेसाहिया, वेउव्वियसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखिज्जगुणा आहारगसरीरस्स जहण्णिया ओगाहणा असंखिज्जगुणा, आहारगसरीरस्स जहण्णियाहिंतो ओगाहणाहिंतो तस्स चेव उक्कोसिया ओगाहणा विसेसाहिया, ओरालियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा संखिज्जगुणा, वेउव्वियसरीरस्स उक्कोसिया ओगाहणा संखिज्जगुणा, तेयाकम्मगाणं दोण्ह वि तुल्ला उक्कोसिया ओगाहणा असंखिज्जगुणा॥ ५८१ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण इन पांच शरीरों में से, जघन्य अवगाहना, उत्कृष्ट अवगाहना एवं जघन्योत्कृष्ट अवगाहना की दृष्टि से, कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना है। तैजस और कार्मण, दोनों शरीरों की अवगाहना परस्पर तुल्य है किन्तु औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना से विशेषाधिक है। उससे वैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी है। उससे आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यात गुणी है।

उत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा - सबसे कम आहारक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना होती है। उससे औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी है। उसकी अपेक्षा वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी है। तैजस और कार्मण दोनों की उत्कृष्ट अवगाहना परस्पर तुल्य है, किन्तु वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना से असंख्यातगुणी है।

जघन्योत्कृष्ट अवगाहना की अपेक्षा - सबसे कम औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना है। तैजस और कार्मण दोनों शरीरों की जघन्य अवगाहना एक समान है, किन्तु औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना की अपेक्षा विशेषाधिक हैं। उससे वैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी हैं। उससे आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यात गुणी हैं। आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना से उसी की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक हैं। उससे औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणी हैं। उससे वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी हैं। तैजस और कार्मण दोनों शरीरों की उत्कृष्ट अवगाहना समान है, परन्तु वह वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना से असंख्यात गुणी हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पांचों शरीरों की अवगाहनाओं का अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार है - औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना सबसे कम है क्योंकि वह अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। उससे तैजस और कार्मण दोनों की जघन्य अवगाहना परस्पर तुल्य और औदारिक की जघन्य अवगाहना से विशेषाधिक है क्योंकि मारणान्तिक समुद्घात से युक्त प्राणी के पूर्व के शरीर से जो बाहर निकला हुआ तैजस शरीर है उसकी लंबाई मोटाई और चौड़ाई से अवगाहना का विचार किया जाता है। ऐसी स्थिति में जिस प्रदेश में वे जीव उत्पन्न होंगे वह प्रदेश औदारिक शरीर की अवगाहना जितने अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण व्याप्त होता है और उसके बीच का भाग जो बहुत थोड़ा है वह भी तैजस शरीर से व्याप्त होता है अतः औदारिक शरीर की जघन्य अवगाहना से तैजस और कार्मण दोनों शरीर की जघन्य अवगाहना विशेषाधिक होती है। उनसे भी वैक्रिय शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी हैं क्योंकि अंगुल के असंख्यातवें भाग के असंख्यात भेद हैं। उनसे आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना असंख्यात गुणी हैं क्योंकि वह कुछ कम एक हाथ प्रमाण है।

उत्कृष्ट अवगाहना के विचार में सबसे थोड़ी आहारक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना है क्योंकि वह एक हाथ प्रमाण है उससे भी औदारिक शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणी हैं क्योंकि वह कुछ अधिक हजार योजन प्रमाण है। उससे वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यातगुणी हैं क्योंकि वह कुछ अधिक लाख योजन प्रमाण है। उससे तैजस और कार्मण दोनों शरीरों की उत्कृष्ट अवगाहना परस्पर तुल्य और वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना से असंख्यातगुणी होती है क्योंकि वह चौदह राजू लोक प्रमाण है।

जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के विचार में आहारक शरीर की जघन्य अवगाहना की अपेक्षा उसकी उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक समझनी चाहिये क्योंकि वे भी अंश से अधिक है। शेष सभी स्पष्ट है और पूर्वोक्त युक्ति अनुसार है।

॥ पण्णवणाए भगवईए एगवीसइमं ओगाहणासंठाणपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का इक्कीसवां अवगाहना संस्थान पद समाप्त ॥

॥ भाग-३ समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य
१.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४.	अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९.	आयारो	८-००
१०.	सूयगडो	६-००
११.	उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	१०-००
१२.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३.	णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य
१४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१६-१८.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १,२,३	४५-००
१९.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२०.	दशवैकालिक सूत्र	१५-००
२१.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ४	१०-००
२५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
२६.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२८.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	१०-००
२९-३१.	तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३२.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३३.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३४-३६.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	६०-००
३७.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३८.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
३९.	आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४०.	नवतत्वों का स्वरूप	१५-००
४१.	अगार-धर्म	१०-००
४२.	Saarth Saamaayik Sootra	अप्राप्य
४३.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००
४४.	तेतली-पुत्र	५०-००
४५.	शिविर व्याख्यान	१२-००
४६.	जैन स्वाध्याय माला	२०-००
४७.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
४८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१८-००
४९.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५०.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००
५१.	जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा	१५-००
५२.	बड़ी साधु वंदना	१५-००
५३.	तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५४.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५५.	आनुपूर्वी	१-००
५६.	सुखविपाक सूत्र	२-००
५७.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५८.	जैन स्तुति	८-००
५९.	सिद्ध स्तुति	८-००
६०.	संसार तरणिका	१०-००
६१.	आलोचना पंचक	२-००
६२.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६३.	भवनाशिनी भावना	२-००
६४.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६५.	सामायिक सूत्र	१-००
६६.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६७.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६८.	जैन सिद्धांत परिचय	अप्राप्य
६९.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७०.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७१.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७२.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७३.	तीर्थंकरों का लेखा	अप्राप्य
७४.	जीव-धड़ा	२-००
७५.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७६.	लघुदण्डक	३-००
७७.	महादण्डक	१-००
७८.	तेतीस बोल	२-००
७९.	गुणस्थान स्वरूप	३-००
८०.	गति-आगति	१-००
८१.	कर्म-प्रकृति	१-००
८२.	समिति-गुप्ति	२-००
८३.	समकित के ६७ बोल	२-००
८४.	पच्चीस बोल	३-००
८५.	नव-तत्त्व	८-००
८६.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
८७.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८८.	विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
८९.	धर्म का प्राण यतना	२-००
९०.	सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
९१.	मंगल प्रभातिका	१.२५
९२.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	५-००
९३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ५	२०-००
९४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ६	२०-००
९५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ७	२०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं.	नाम आगम	मूल्य
१.	आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२.	सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३.	स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४.	समवायांग सूत्र	४०-००
५.	भगवती सूत्र भाग १-७	४००-००
६.	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७.	उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८.	अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९.	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०.	प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११.	विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१.	उववाइय सुत्त	२५-००
२.	राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३.	जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४.	प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५.	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७.	चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२.	निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका-पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १-२	८०-००
२.	दशवैकालिक सूत्र	३०-००
३.	नंदी सूत्र	२५-००
४.	अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३.	त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४.	निशीथ सूत्र	५०-००
१.	आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं

जो उवमिज्जइ सययं, तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org